हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति-चित्रण

का

आलोचनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी को पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

1993
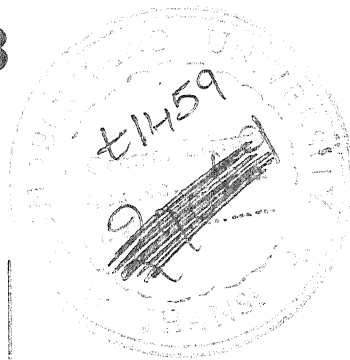
निर्देशक-
डॉ० ज्ञानप्रकाश तिवारी
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

शोधार्थी-
निशा पाण्डेय

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय बांदा (उ०प्र०)

डॉ० ज्ञान प्रकाश तिवारी
प्रवक्ता - हिन्दी विभाग
पं०जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय,
बाँदा (उ०प्र०)
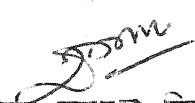
दिनांक 29-11-93

प्र मा ण - प त्र

प्रमाणित किया जाता है कि -

(1) कु० निशा पाण्डेय ने मेरे निर्देशन में "हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति-चित्रण का आलोचनात्मक अध्ययन"- विषय पर शोध - कार्य किया है ।

(2) इन्होंने मेरे यहाँ निर्धारित अवधि तक उपस्थिति दी है ।

(3) इनका शोध-कार्य मौलिक है ।

मै समझता हूँ कि यह शोध-प्रबन्ध अब इस स्थिति में है कि इसे पी-एच०डी० उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है ।

(ज्ञान प्रकाश तिवारी)
निर्देशक ।

प्रा क्क थ न

प्रकृति के अन्तर्गत वे वस्तुएँ आती है जिन्हें मानव ने अपने हाथों से सँभाला नहीं है, जो स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती हैं। प्रकृति का भिन्न-भिन्न रूपों में सिंहावलोकन और उसके चित्रण के लिए प्रत्येक कवि स्वतन्त्र होता है, इसीलिए विभिन्न कवियों का प्रकृति के प्रति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रहा है।

छायावादी कवि प्रकृति से ही सब कुछ कहना चाहता है, सुनना चाहता है, उसी में रम जाना चाहता है और उसी के माधुर्य पर न्योछावर हो जाना चाहता है। वह प्रकृति को छोड़कर जीवितनहीं रह सकता ; पर प्रगतिवादी कवियों ने मात्र प्रकृति से ही सम्बन्ध स्थापित नहीं किया, उन्होंने माटी की सोंधी गंध, हलचलाते किसानों, श्रमिकों एवं मध्यमवर्गीय पारिवारिक परिवेश की विसंगतियों में भी सौन्दर्य का अन्वेषण किया है। उनके यहाँ प्रकृति मानव-जीवन के हर्ष-विषाद के साथ जुड़कर अंकित हुई है।

प्रगतिवादी कवियों एवं उनकी रचनाओं पर अब तक अनेक शोध-प्रबन्ध लिखे जाचुके हैं किन्तु उनमें से अधिकांश का क्षेत्र प्रगतिवादी काव्य में मार्क्सवादी चेतना की खोज अथवा सामाजिक यथार्थ का निरूपण करना रहा है। मैंने इस शोध प्रबन्ध में प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति-चित्रण के विभिन्न रूपों को मौलिक ढंग से खोजने का प्रयास किया है।

सुविधा की दृष्टि से इस शोध प्रबन्ध को नौ अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य का सामान्य परिचय दिया गया है। प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि

क्या है ? प्रगतिवाद का उद्भव और विकास कैसे हुआ ? प्रगतिवाद का मूल प्रतिपाद्य क्या है ? तथा आलोच्य कवियों एवं उनकी रचनाओं की सामान्य चर्चा की गई है ।

द्वितीय अध्याय में प्रकृति के सुकुमार कवि पंत की प्रगतिवादी रचनाओं यथा - युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में प्रकृति के विभिन्न रूपों को खोजने का प्रयास किया गया है ।

तृतीय अध्याय में ओज और पौरूष के कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की रचनाओं में प्रकृति के विभिन्न रूपों का अध्ययन है ।

चतुर्थ अध्याय में 'केदारनाथ अग्रवाल' की युग की गंगा, नींद के बादल, तथा फूल नहीं रंग बोलते हैं - आदि रचनाओं में प्रकृति के विभिन्न रूपों को खोजा गया है ।

पंचम अध्याय में 'शिवमंगल सिंह सुमन' की रचनाओं में प्रकृति के कोमल और कठोर रूपों का विश्लेषण किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की कृतियों में प्रकृति के विभिन्न रूपों की विवेचना की गई है ।

सप्तम अध्याय में नागार्जुन की कविताओं में प्रकृति-चित्रण के विभिन्न रूप दर्शाये गये हैं ।

अष्टम अध्याय में रामविलास शर्मा, नरेन्द्र शर्मा तथा शैलेन्द्र आदि प्रगतिशील कवियों के काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों का अध्ययन किया गया है ।

नवम अध्याय में शोध प्रबन्ध का उपसंहार करते हुए अध्ययन अनुशीलन से प्राप्त निष्कर्षों का प्रतिपादन है तथा संक्षेप में प्रगतिवादी

प्रकृति - चित्रण की मुख्य विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है ।

यह शोध - प्रबन्ध सुधी विद्वान स्व0 डॉ0कृष्णदत्त अवस्थी की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन का फल है । मैंने प्रथमत: उन्हीं के निर्देशन में अपनाकार्य आरम्भ किया था ; किन्तु गतवर्ष काल के क्रूर हाथों ने उन्हें हमसे छीन लिया । मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ और उनकी आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ ।

अन्तत: परमादरणीय डॉ0 ज्ञान प्रकाश तिवारी के निर्देशन में यह शोध - प्रबन्ध पूरा हुआ है । उन्होंने न केवल मार्ग-निर्देशन किया है,बल्कि गहरी रूचि लेकर इसे पूर्ण करने में मेरी भरपूर सहायता भी की है । इस शोध प्रबन्ध में जो कुछ भी अच्छा बन पड़ा है, वह सब उनके ही आशीर्वाद का फल है ।

इस अवसर पर मैं अपने स्व0 पिताश्री सूर्यनाथ पाण्डेय का भी स्मरण करना चाहूँगी, जिन्होंने मेरे इस कार्य को प्रारम्भ कराया था और जिनकी हार्दिक इच्छा थी कि मै यह शोध कार्य करूँ, पर दुर्भाग्यवश वे मेरे इस कार्य को पूर्ण होता हुआ न देख सके । उनकी स्मृतियों ने समय-समय पर मुझे सान्त्वना दे-देकर मेरा उत्साह वर्धन किया है ।

मै उन लेखकों और आलोचकों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनके ग्रन्थों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में प्रभाव ग्रहण करके मैंने अपने शोध - प्रबन्ध का कलेवर तैयार किया है ।

मेरा विश्वास है कि इस शोध - प्रबन्ध से प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति - चित्रण के विविध रूपों पर तो विस्तृत प्रकाश पड़ेगा ही, साथ ही समसामयिक हिन्दी कविता में प्रकृति की सार्थकता और प्रासंगिकता के अनेक जटिल प्रश्न सुलझाने में भी इससे मदद मिलेगी ।

बाँदा
दिनांक २८.११.९३

निशा पाण्डेय
(निशा पाण्डेय)

अ नु क्र म

प्र थ म - अ ध्या य

हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य का सामान्य परिचय

(क) प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि :

हिन्दी साहित्य में "प्रगतिवाद" का आविर्भाव कोई आकस्मिक घटना नहीं है । इसके जन्म और विकास के पीछे तत्कालीन परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है । अत: सर्वप्रथम उन परिस्थितियों पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा, जिनके कारण हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी दौर आया ।

राजनीतिक परिस्थितियाँ :

सन् 1957 के विद्रोह के निर्मम दमन के पश्चात् देश में एक अत्यन्त निराशापूर्ण और भयावह वातावरण का निर्माण हो गया था । जनता अँग्रेजी शासन के नृशंस अत्याचारों से आतंकित थी, किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक न रही । सन्-1876 में भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के उद्देश्य से आनन्दमोहन बोस, द्वारिकानाथ गंगोली आदि के प्रयत्न से भारतीय संघ की स्थापना हुई और इसके पश्चात् ही सन् 1885ई0 के दिसम्बर माह में बम्बई में कॉंग्रेस का जन्म हुआ ।[1] तिलक के प्रवेश करने से कॉंग्रेस के स्वरूप में विस्तार आ गया और स्वाधीनता प्राप्ति उसका प्रमुख उद्देश्य बन गया । सन्-1905 में बंगभंग के कानून ने भारतवासियों की स्वाधीनता-भावना को और भी तीव्रतर कर दिया, लेकिन उसके पश्चात् कुछ वर्षों तक निष्क्रियता छायी रही । सन् 1919 में रौलट एक्ट पास करके विदेशी सरकार ने भारतीयों को अत्यधिक निराश कर दिया । जलियाँ वाला बाग का

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य=: डॉ0 कृष्णलाल हंस, पृ0 78.

हत्याकाण्ड उस समय की सर्वाधिक दु:खद घटना है ।[1]

सन्-1920ई0 में गाँधी जी ने काँग्रेस का नेतृत्व संभाला और विदेशी सत्ता को समाप्त करने के लिए असहयोग आन्दोलन प्रारंभ किया ।[2]

"असहयोग आन्दोलन इसी प्रयत्न का राजनीतिक मूर्त रूप था, उसे सिर्फ राजनीतिक दल तक सीमित नहीं समझना चाहिए । यह सम्पूर्ण देश का, आत्मस्वभाव समझने का प्रयत्न था और अपनी गल्तियों को सुधारकर संसार की समृद्ध जातियों की प्रतिद्वन्द्विता में अग्रसर होने का संकल्प था ।"[3] इस असहयोग आन्दोलन के द्वारा विदेशी वस्तुओं को त्याग देने का संकल्प किया गया । यह युग मूलत: समझौतों का युग था, किन्तु इसी समय रूस की लाल-क्रान्ति का प्रभाव भी धीरे-धीरे फैल रहा था, फलत: भारत में साम्यवादी तथा समाजवादी दलों का उदभव हुआ । सन्-1931 में करांची में होने वाला काँग्रेस का अधिवेशन प्रथम बार काँग्रेस के मंच से समाजवादी स्वरों को मुखरित करता है, इसमें कहा गया है कि-"काँग्रेस जिस प्रकार के स्वराज्य की कल्पना करती है, उसका जनता के लिए क्या अर्थ होगा, उसे वह ठीक-ठीक जान जाये,इसलिए आवश्यकता है कि काँग्रेस अपनी स्थिति स्पष्ट कर दे ।"[4]

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र: पृ0 25.
2. भारत एक खोज : जवाहरलाल नेहरू, पृ0 368.
3. हिन्दी साहित्य : डॉ0हजारी प्रसाद द्विवेदी,पृ0 450.
4. काँग्रेस का इतिहास:भाग-1-डॉ0पट्टाभि सीतारमैया,पृ0-468-69.

सन्-1935ई० तक आते-आते कॉंग्रेस में "समाजवादी विचारधारा" पूर्णरूपेण समाहित हो गयी । पं० जवाहरलाल नेहरू ने सन्-1936 के लखनऊ में होने वाले कॉंग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष पद से स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि-"चाहे समाजवादी सरकार की स्थापना सुदूर भविष्य की ही बात क्यों न हो और हममें से बहुत लोग उसे चाहे अपने जीवन में न देख सकें, किन्तु वर्तमान स्थिति में समाजवाद ही वह प्रकाश है, जो हमारे पथ को आलोकित करता है ।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सन्-1936 के पूर्व के वर्ष - संघर्ष और निराशा के वर्ष थे । सम्पूर्ण देश के वातावरण में एक ओर समाजवादी उत्साह, दूसरी ओर परिस्थितियों की विफलता के कारण उद्भूत कटुता तथा खिन्नता व्याप्त थी । भारत की इस राजनीतिक स्थिति का हमारे जीवन और साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । इसी स्थिति ने हमारे साहित्य की पूर्वधारा को मोड़कर "प्रगतिवाद" को जन्म दिया था और "प्रगतिवादी साहित्य" का सृजन अनिवार्य सा हो गया था ।

सामाजिक परिस्थितियाँ :

मुस्लिम शासनकाल में ही भारत की सामाजिक स्थिति बड़ी भयावह हो गयी थी । अँग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात भी इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । भारतीय समाज अनेक मत-

---

1. कॉंग्रेस का इतिहास : भाग-1, डॉ० पट्टाभि सीतारमैया, पृष्ठ 469.

मतान्तरों में विभाजित था । उसमें कुप्रथाओं ने प्रवेश कर लिया था और वह एक विजित राष्ट्र के समाज की तरह निराश और संकटपूर्ण जीवन-यापन कर रहा था । धर्म परिवर्तन का जो भय उसे मुस्लिम शासनकाल में था, वह भी अब एक नवीन रूप में उसके समक्ष उपस्थित हो गया था । राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारक का आविर्भाव इसके पूर्व हो चुका था । वे भारतीय समाज में प्रचलित बाल-विवाह, सती-प्रथा जैसी कुप्रथाओं को दूर करना चाहते थे, किन्तु वे इस कार्य में शासन की सहायता आवश्यक मानते थे । विविध मत-मतान्तरों के कारण देश में एकता का अभाव था । राजा राममोहन राय ने धार्मिक मतभेद को दूरकर देश को एकता के सूत्र में आबद्धकरने के उददेश्य से ही "ब्रह्म समाज" की स्थापना की थी । सन्-1833 में उनकी मृत्यु के पश्चात् केशवचन्द सेन ने ब्रह्म समाज का नेतृत्व ग्रहण किया । उनके प्रयत्न से इस समाज का प्रभाव बंगाल की सीमा को लाँघकर उत्तर पंजाब तथा पश्चिम में महाराष्ट्र तक व्याप्त हो गया । उन्हीं के प्रयत्न से अँग्रेजी शासन ने सन्-1842 में बाल विवाह रोकने के लिए कानून बनाया तथा विधवा विवाह भी कानून-सम्मत घोषित हो गया ।

सन्-1867 में महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई थी, जिसके द्वारा महाराष्ट्र प्रदेश में समाज सुधार का महत्वपूर्ण कार्य हुआ । इस काल के सुषुप्त भारतीय समाज को जागृति का सन्देश देने वाले महापुरूषों में "स्वामी दयानन्द सरस्वती","रामकृष्ण

परमहंस" और "स्वामी विवेकानन्द" का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने "आर्य समाज" की स्थापना कर उसके द्वारा हिन्दू समाज में प्रचलित कुप्रथाओं, धर्म के नाम पर प्रचलित अन्ध विश्वासों तथा पाखण्डों को निर्मूल करने में अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी । उस काल में स्वामी दयानन्द ने "हिन्दू-धर्म" और "हिन्दू-संस्कृति" की पुनर्स्थापना का जो कार्य किया, वह भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है ।[1]

स्वामी दयानन्द द्वारा प्रारम्भ किया गया आन्दोलन वास्तव में एक महान् सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्तिकारी आन्दोलन था । यह आन्दोलन स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् एक दीर्घावधि तक भारतीय जन-मानस को प्रभावित करता रहा । उन्होंने बाल-विवाह, बहु-विवाह, विधवा विवाह निषेध , पर्दा प्रथा, अस्पृश्यता आदि का घोर विरोध किया और स्त्री शिक्षा पर बल दिया । इस प्रकार उन्होंने जनता को जो नवीन सामाजिक व्यवस्था प्रदान की,उससे तत्कालीन सामाजिक स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन होने लगा ।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने समस्त भारतीय धर्मों का समन्वय करने और सामाजिक सुधार में महत्वपूर्ण योगदान किया । उनके द्वारा स्थापित "रामकृष्ण मिशन" आज भी भारत के अनेक नगरों में क्रियाशील है ।

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ0कृष्णलाल हंस - पृ0 8।.

बीसवीं शती में जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता का विकास होता रहा, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन गतिशील बनता गया, वहाँ दूसरी ओर सामाजिक सुधार विषयक आन्दोलन भी न्यूनाधिक रूप में होते ही रहे । अँग्रेजी शिक्षा के प्रसार एवं वैज्ञानिक आविष्कारों, रेल-मार्ग विस्तार आदि से हमें व्यापक दृष्टि प्राप्त हुई और एक सीमा तक जातिभेद की भावना कम हो गई । सन्-1906 में "डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन" की स्थापना हुई, जिसके द्वारा भारतीय दलित समाज के उत्थान के अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुए । इसके पश्चात् "इण्डियन सोशल कान्फ्रेंस" के द्वारा भी दलित वर्ग उत्थान, स्त्री शिक्षा, बाल-विवाह-निषेध, जातिभेद उन्मूलन आदि की दिशा में अनेक कार्य हुए । सन्-1917 में "माण्टेग्यू मिशन" से भारतीय महिलाओं के प्रतिनिधि मण्डल द्वारा की जाने वाली भारतीय व्यवस्थापक सभाओं में अपने प्रतिनिधि की माँग भी भारतीय सामाजिक जागृति का प्रमाण है ।

बंगाल में 'चितरंजन सेवा सदन' तथा महाराष्ट्र में 'सेवा सदन' नामक संस्थाएँ भी महिला-जागृति का महत्वपूर्ण कार्य करती रहीं । आर्य समाज का प्रभाव भारतेन्दु काल की तरह द्विवेदी काल पर भी अक्षुण्ण रहा । महात्मा गाँधी द्वारा संचालित भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन केवल राजनीतिक ही नहीं था, उसमें सामाजिक उत्थान के तत्व भी समन्वित थे । विशेषकर उनकी देश-व्यापी हरिजनोद्धार यात्रा ने इस देश की सामाजिक स्थिति को बहुत प्रभावित किया था ।[1]

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य =:डॉ0कृष्णलाल हंस,पृ0 82-83.

20वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही धर्म एवं बाह्याचार का यह स्वरूप काफी कुछ बदल गया था, किन्तु बद्धमूल संस्कार से विमुक्ति पूर्णतया संभव नहीं हो सकी ; फिरभी आलोच्य युग तक आते-आते इतनी समझ तो विकसित हो ही चुकी थी कि धर्म अब मनुष्य की नियति का निर्णायक नहीं हो सकता, इसलिए मनुष्य को स्वयं अपनी नियति का निर्धारण करना चाहिए ।

आर्थिक परिस्थितियाँ :

अंग्रेज शासक, व्यापारी और उद्योगपति एक साथ ही थे । अंग्रेजों ने हमारे देश की आर्थिक उन्नति में एक व्यवधान उपस्थित कर दिया । उनकी नीति सदैव शोषण की थी ।[1] अंग्रेजों के आने के पूर्व हमारे देश में कुटीर उद्योगों का प्रचलन था । कॉंग्रेस ने उन्हें समाप्त कर देश की आर्थिक व्यवस्था को और भी शोचनीय बना दिया । कुटीर उद्योग - धन्धों केस्थान पर नवीन ढंग पर औद्योगिक व्यवस्था का निर्माण किया गया । अकाल, टैक्स और मँहगाई आदि आर्थिक समस्याओं की झलक भारतेन्दु युगीन साहित्य में प्राप्त होती है । इस समय कृषक वर्ग पर शोषण और दमन का चक्र चलता रहा । मालगुजारी और टैक्सों की अत्यधिक माँग ने कृषक वर्ग की दशा को और भी शोचनीय बना दिया । समाजवादी सिद्धान्तों से प्रेरणा लेकर इसी समय "अखिल भारतीय किसान सभा का जन्म हुआ । मजदूरों और किसानों ने अपने अधिकारों के लिए अपने अधिकारों के लिए जमकर संघर्ष किया । मजदूरों की अनेक ऐतिहा-

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० 27

हासिक हड़तालें इस युग में हुई । द्वितीय विश्व युद्ध की संभावना के कारण मँहगाई चरम स्थिति तक पहुँच गई । बेकारी में वृद्धि हुई, फलत: मध्य वर्ग भी बुरी तरह पीड़ित हुआ । किसानों की जागृति की दृष्टि, से यह समय बड़ा महत्वपूर्ण है । उन्होंने केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए ही नहीं, आर्थिक स्वाधीनता तथा एक समाजवादी भारत के निर्माण के लिए सघन प्रयत्न किए । राष्ट्रीय आन्दोलन आर्थिक भूमि पर गतिशील हुआ ।[1]

ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले कृषकों की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय थी । वे एक ओर जमींदारों और मालगुजारों की सामन्तवादी सत्ता के शिकार हो रहे थे और दूसरी ओर पूँजीवादी साहूकारों के ऋणभार से उनकी कमर टूट रही थी । शासन की दोषपूर्ण नीति, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और सम्पत्ति के असमान वितरण ने देश की आर्थिक स्थिति जर्जर बना दी थी । देश स्पष्टत: तीन वर्गों में विभाजित हो गया था । प्रथम वर्ग वह था, जिनमें देश के उद्योगपति पूँजीपति, जमींदार और मालगुजार थे । द्वितीय वर्ग मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों का था, जिसके अन्तर्गत सामान्य शिक्षित शासकीय कर्मचारी, कम लाभ के सामान्य उद्योग धन्धों में लगे व्यक्ति, छोटे व्यापारी, कारीगर आदि तथा तृतीय वर्ग में मुख्य रूप से कृषकों और श्रमिकों का स्थान था । मध्यम तथा निम्न वर्गीय व्यक्ति ही साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, और सामन्तवाद के शिकार थे । ये जी रहे थे, पर जिन्दगी का स्वाद खोकर । इस स्थिति में इन दोनों वर्गों में असन्तोष और

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र - पृ0 26.

क्षोभ स्वाभाविक था । सन्-1921 में महात्मा गाँधी ने अपने असहयोग आन्दोलन के साथ "विदेशी वस्तु बहिष्कार" और "स्वदेशी प्रचार" का जो आन्दोलन चलाया था, उसका लक्ष्य भी भारतीय उद्योग-धन्धों को पुनर्जीवित कर इन दोनों वर्गों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना ही था । मध्यम श्रेणी के व्यक्ति तो जीवन के अभाव की स्थिति में भी विशेष कुछ न कर सके, किन्तु तृतीय वर्ग की जनता में असन्तोष की अग्नि धीरे-धीरे चलती रही, जो अनेक बार आन्दोलनों के रूप में भड़कती दिखाई दी ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सन् 1936 के पूर्व किसानों के रोटी और जमीन के लिए किए जाने वाले संघर्ष को राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष से जोड़ा और जमीरदारी प्रथा तथा किसानों पर कर्ज के बोझ को समाप्त करने तथा भूमिहीन किसानों को सरकारी जमीनें दिए जाने की माँगे सामने रखीं । पहली बार भारत के किसानों ने कार्यक्रम में भाग लेकर मजदूर किसान एकता की परम्परा कायम की ।[2]

वैचारिक परिस्थितियाँ :

प्रगति की मार्क्सवादी धारणा ही प्रगतिवाद की वैचारिक पृष्ठभूमि है ।[3] आज यह धारणा कि मनुष्य ने धीरे-धीरे प्रगति की है और वह भविष्य में भी करता रहेगा, इतनी लोक प्रचलित और सार्वभौम है कि ऐसे अधिकांश लोगों के लिए जो विचारों की स्वतंत्रता

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ0 कृष्णलाल हंस - पृ0 84.
2. हिन्दी की प्रगतिशील कविता: डॉ0रणजीत - पृ0 129.
3. वही, पृ0 31.

और परिवेश निरपेक्षता में विश्वास करते हैं और हर महत्वपूर्ण विचार को शाश्वत और अनादि मानने के आदी हैं, यह सूचना आश्चर्यजनक हो सकती है कि प्रगति की यह सामान्य सी धारणा भी वस्तुत: आधुनिक युग की ही उत्पत्ति है । यह ठीक है कि कई प्राचीन और मध्यकालीन दार्शनिकों ने इस तथ्य को कि मनुष्य ने अपनी आदिम अवस्थाओं से क्रमिक अनुसंधानों और आविष्कारों के सहारे प्रगति की है, और इस संभावना को कि भविष्य में भी वह अपने ज्ञान की राशि में और परिवर्तन कर सकता है, स्वीकृति दी है, पर प्रगति की सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित और मानव इतिहास के वास्तविक आधार पर स्थापित वैज्ञानिक धारणा बहुत बाद की उद्भावना है । सिर्फ यह धारणा कि अतीत में हमने विकास किया है, प्रगति की अधूरी धारणा है । प्रगति की धारणा पूर्ण तभी कही जा सकती है, जब वह इसके साथ ही यह विश्वास भी जगाए कि भविष्य में भी मनुष्य का असीमित विकास निश्चित है ।[1]

विचार हवा में पैदा नहीं होते । निश्चित सामाजिक परिवेश ही निश्चित विचारों के जन्म की पृष्ठभूमि तैयार करता है । इसलिए प्रगति की निश्चित धारणा भी मानव विकास की एक निश्चित मंजिल पर जाकर ही साकार हुई है, यद्यपि इसे रूपाकार देने वाले तत्व युगों से एकत्र और पूँजीभूत होते रहे हैं ।[2]

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रदर्शन से बहुत पहले ही भारत में सांस्कृतिक नवजागरण का आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था । भारत

---

1. द आइडिया आफ प्रोग्रेस : जे0बी0बरी, पृ0 6-7.
2. हिन्दी की प्रगतिशील कविता : डॉ0रणजीत - पृ0 11.

में नवजागरण का यह आन्दोलन सबसे पहले बंगाल में हुआ, क्योंकि पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति एवं शिक्षा का प्रसार सबसे पहले बंगाल में हुआ।[1]

गाँधीजी के क्रियाकलाप सांस्कृतिक नवजागरण और समाजसुधार तक ही सीमित नहीं थे, एक पूरे युग तक उन्होंने भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता के आन्दोलन का नेतृत्व किया। भारतीय समाज के विभिन्न अंगों और पूरी भारतीय संस्कृति को आधुनिक युग में और किसी एक व्यक्ति ने इतना अधिक प्रभावित नहीं किया, जितना महात्मा गाँधी ने किया। इन लोगों ने सांस्कृतिक नवजागरण में विकसित होते हुए मानववाद को और भी सुदृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित किया। चाहे वह मानववाद मूलतः अब भी अध्यात्मवाद ही था, पर आगे आने वाले वैज्ञानिक मानववादी आन्दोलन को इसमें एक दृढ़ पृष्ठभूमि दी।[2] रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इकबाल नवजागरण के नेता थे, दोनों में भारत की संस्कृति और राष्ट्रीयता का एक रूप मिलता है।[3]

इस प्रकार भारत में प्रगतिवाद के जन्म के समय जहाँ एक ओर राजनीतिक स्वतंत्रता और आर्थिक समानता का आन्दोलन दिनोंदिन प्रबल हो रहा था, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक नवजागरण की धारा भी अधिकाधिक बलवती होती जा रही थी।

साहित्यिक गतिविधियाँ :

भारतीय जनता के इस सर्वांगीण मुक्ति आन्दोलन

---

1. हिन्दी की प्रगतिशील कविता : डॉ० रणजीत, पृ० 129.
2. वही, पृष्ठ 132.
3. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर, पृ० 605.

का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर, जिसे हम आधुनिक युग कहते हैं, उसके प्रारम्भ से ही पड़ना शुरू हो गया था । वस्तुस्थिति तो यह है कि इन प्रभावों से आए हुए परिवर्तनों के कारण ही, हिन्दी साहित्य के इस काल को मध्ययुग से अलग करके "आधुनिक युग" कहा जाता है । अभी तक हमारा साहित्य समाज-सापेक्ष नहीं था, सामाजिक जीवन में विषमता बढ़ती ही जा रही थी किन्तु हमारा साहित्य एक पृथक दिशा की ओर अग्रसर हो रहा था । वह उस चित्रण और भावना से रिक्त था, जो मानव समाज को उसकी वास्तविक स्थिति से परिचित करा नवोत्थान का सन्देश दे सके । इस स्थिति में भारतेन्दु का उदय हिन्दी-साहित्य-जगत के लिए एक वरदानही कहा जा सकता है । आधुनिक युग के प्रारम्भ से ही हमारे साहित्य में ऐसे तत्व एकत्र होने लगे थे, जिन्होंने मिलकर परिपक्व परिस्थितियों में प्रगतिशील आन्दोलन का रूप धारण किया ।

(अ) भारतेन्दु युग :

आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ"भारतेन्दु युग" से होता है । भारतेन्दु युग हिन्दी साहित्य का प्रवेश द्वार है। इस युग का साहित्य एक हद तक युग सन्धि का साहित्य है ।[1] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सच्चे अर्थों में युग-द्रष्टा और युग-स्रष्टा थे । उन्होंने अपने युग में जो कुछ देखा, उससे वे बड़े खिन्न हुए । उन्होंने ऐसे साहित्य का निर्माण आवश्यक समझा, जो यथार्थ से पूर्ण और मानवता कासंदेशवाहक हो, जो तत्कालीन भारतीय समाज को उसकी अपनी स्थिति से

---

1. हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा:प्रो0प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ0-13

अवगत करा सके और उसमें जीवन और जागृति का संचार कर सके । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वाभिमानी और स्पष्ट वक्ता थे ।[1] इस युग का साहित्य अपनी प्राचीन परम्पराओं और मान्यताओं के साथ नवीन राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना को लेकर अग्रसर हुआ । भारतेन्द्र युग में अनेक गद्य-रूपों पत्रकारिता, उपन्यास, कहानी, निबन्ध और नाटकों का प्रारम्भ और यथेष्ट रूप से विकास हुआ । उनमें हमारी सभ्यता और संस्कृति के साथ जीवन की अनेक समस्याओं को वाणी मिली है । इस युग के कवियों में बद्री नारायण चौधरी, (प्रेमधन) प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, जगमोहन सिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।[2]

'यथार्थ' और 'लोकमंगल' की परम्परा का प्रादुर्भाव इसी युग से होता है । भारतेन्दु ने प्रमुखतः नाटकों की रचना की है और इसी क्षेत्र में उनकी यथार्थवादिता के दर्शन भी होते हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' अपने युग के प्रतिनिधि कवि और हिन्दी प्रान्त की तत्कालीन नव-चेतना और जागृति के आलोकमय प्रतीक हैं । उनकी रचनाओं में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के नवीन भारत का स्वर स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित है ।[3] भारतेन्दु युग के यथार्थवादी नाटकों में स्वयं उनका 'भारत दुर्दशा' बद्रीनारायण चौधरी का "भारत सौभाग्य" दुर्गादत्त का 'वर्तमान दशा' और गोपालदास गहमरी का 'देश - दशा' अम्बिकादत्त

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ0कृष्णलाल हंस, पृ0 85.
2. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 18.
3. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ0 12.

का "गोसंकट" आदि कुछ उल्लेखनीय नाटक हैं ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने युग के अनुरूप अनेक समस्याओं को अपने काव्य में प्रतिबिम्बित किया । भारतेन्दु की कविता में देश-भक्ति और राजनीति का अपूर्वयोग है । यथा -

"अंग्रेज राज सुखे साज सजे सब भारी,
पै धन विदेश चलि जात यहै अति रव्वारी ॥ "[1]

इसी तथ्य का विवेचन करते हुए डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त लिखते हैं -"भारतेन्दु के काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की खोजकरने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यधपि उन्होंने उस प्रवृत्ति को मुख्य रूप से नाटकों में स्थान दिया है, तथापि उनकी कविताएँ इससे रहित नहीं हैं । "विजयिनी विजय वैजयन्ती", भारत वीरत्व" आदि उनकी कविताओं में युगीन प्रवृत्तियों के अनुरूप राजभक्ति के माध्यम से राष्ट्रीयता का सफल प्रतिपादन किया गया है ।"[2]

भारतेन्दु जी ने राष्ट्रीय वेदना के साथ ही जीवन के यथार्थ रूप का भी चित्रण आरम्भ किया था । भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी राष्ट्रीय विचारों का सफल प्रतिपादन किया । बद्री नारायण चौधरी "भारत वन्दना" में लिखते हैं -

"जय-जय भारत भूमि भवानी,
जाकी सुयश पताका जग के दस हूँ दिसि फहरानी,
सब सुख सामग्री पूरित श्रतु सबल समाज सोहानी ।"

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० 18.
2. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त, डॉ०सुरेशचन्द्र गुप्त, पृ०-150.

इस युग के कवियों ने तत्कालीन सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं, आर्थिक संकटों का मार्मिक चित्रण अपनी लेखनी से किया है । बद्रीनारायण चौधरी अकाल के सम्बन्ध में लिखते हैं -

"भागो-भागो अब काल पड़ा है भारी,
भारत में घेरी घटा विघन की कारी ।-[1]

तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में श्री बद्रीनारायण चौधरी युग की आवश्यकता की ओर साहित्यकारों का ध्यान दिलाते हुए कहते हैं -"आज समय दूसरा है, देश की दुर्दशा ने सबकी मुटाई झाड़ दी है, अक्ल ठिकाने आ गई है, अब वे बातें नही जँचती, इसी से आज की आवश्यकता को आजकल के लेखकों और ग्रन्थकारों को पूरी करना चाहिए । वे ही इसके उत्तरदाता हैं, उन्हें अब साहित्य के शून्य स्थान को भरना चाहिए और वे लोग इसके लिए सचेष्ट भी हो रहे हैं ।[2]

इस आधार पर हम उस युग की सामाजिक चेतना का स्पष्ट अनुमान लगा सकते हैं । इसके अतिरिक्त इस युग के काव्य में विधवाओं की दयनीय दशा, धार्मिक अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों,सामाजिक कुप्रथाओं का निवारण एवं देशप्रेम का चित्रण हुआ है । इस प्रकार यह युग यथार्थ की परम्परा के निकट है । इस विवरण से तत्कालीन भारतीय समाज का स्पष्ट चित्र हमारे सामने आ जाता है और उस स्थिति में कवियों के कर्तव्य निर्वाह की लगन भी प्रमाणित हो जाती है । स्पष्ट है कि भारतेन्दु कालीन काव्य पूर्णत: समाज सापेक्ष काव्य रहा है ।

(ब) द्विवेदी युग :

भारतेन्दु युग के काव्य की समाज सापेक्षता द्विवेदी

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० 19.
2. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त:डॉ०सुरेशचन्द्रगुप्त,पृ०-59.

युग में अक्षुण्ण बनी रही । भारतेन्दु युग में अँग्रेजी शासन की नीति के कारण जन-सामान्य के जीवन में जो विश्रृंखलताएँ आ रही थीं और शासन के प्रति जो क्षोभ और असन्तोष प्रादुर्भूत हो रहा था, उसमें द्विवेदी युग में वृद्धि हुई । इसके अतिरिक्त इस युग में जिस राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्ति का आविर्भाव हुआ, उसने भी इस युग के साहित्य को बहुत प्रभावित किया । इस क्रान्ति ने जनमानस से अँग्रेजी राज्य का आतंक कम कर उसमें आत्मविश्वास और आत्मगौरव की भावना जाग्रत की । उसे संघर्ष की ओर प्रेरित किया और उसे अपने देश की स्वतंत्रता के लिए जूझने की शक्ति प्रदान की । इसी प्रभाव के फलस्वरूप हमें इस काल के कवियों के काव्य में देशभक्ति के स्वर भारतेन्दु युग से अधिक मुखर दिखाई देते हैं । इस काल के कवि निष्पक्ष और उदात्त राष्ट्रीयता का सन्देश देने में भी समर्थ हुए । इस युग के हिन्दी काव्य में मातृभूमि-अनुराग, देशाभिमान, सांस्कृतिक उत्थान की तड़प, समाज-सेवा,अस्पृश्यों के प्रति सहानुभूति, रूढ़ि-विरोध, मानवतावादी दृष्टिकोण, त्याग-भावना, बलिदान-भावना, स्वातन्त्र्य-कामना,क्रान्ति का आह्वान आदि गाँधी जी की विचारधारा और उनके द्वारा संचालित आन्दोलन का ही प्रभाव था । बाबू मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय, नाथूराम शंकर शर्मा, स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी,कामता प्रसाद गुरू, रामचरित उपाध्याय, देवी प्रसाद पूर्ण, श्रीधर पाठक,रामनरेश त्रिपाठी, माधव शुक्ल सनेही आदि इस काल के प्रमुख कवि हैं । इन सभी कवियों के काव्य में युग दर्शन ही नहीं, गाँधी जी के प्रभावस्वरूपराष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओं की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति विद्यमान है ।[1]

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य:डॉ0कृष्णलाल हंस,पृ0 81.

स्वामी दयानन्द के आर्य समाज, राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज तथा अरविन्द और विवेकानन्द के सिद्धान्तों का द्विवेदी युग पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा ।[1] द्विवेदी युग का काव्य जहाँ एक ओर सांस्कृतिक सम्पर्क, संघर्ष और संस्कार की कथा रहा है, वहीं इन कवियों की सहानुभूति, सच्चाई और स्वतन्त्र तथा उदार व्यक्तित्व का संकेत दे रहा है।"[2]

मैथिलीशरण गुप्त को द्विवेदी युगीन कविता का प्रतिनिधि कवि माना जाता है । उनकी नाना कृतियों में उनके राष्ट्रीय स्वर स्पष्टत: सुने जा सकते हैं ।

इस युग के कवि केवल दु:खों को व्यक्त कर संतुष्ट न हुए, प्रत्युत पीड़ित जनता के प्रति सहानुभूति प्रकट की । नारी के ऊपर सभी कवियों की दृष्टि सहानुभूतिपूर्ण है । गुप्त जी ने विशेष रूप से अपने काव्य में प्रकट किया है ।

गुप्त जी ने शासन और पूँजीपतियों की खुशामद को अपने जीवन का ध्येय मानने वालों पर व्यंग्य करते हुए लिखा था -

"भरते हैं निज पेट, अन्य के घर को भर के,
घर पर हैं, पर बने हुए हम, पर के घर के,
जाति हमारी दु:खी न हो, यदि हाथ पसारे,
पक्षपात का पड़क लगे तो माथ हमारे ।"[3]

आचार्य द्विवेदी जी हिन्दू समाज में प्रचलित "दहेजप्रथा"

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 20.
2. आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक श्रोत : डॉ0केसरीनारायण शुक्ल, पृ0 167.
3. सरस्वती पत्रिका : जनवरी, 1918 - पृ0 46.

पर तीखा व्यंग्य करते हुए वे अपनी "ठहरौनी" रचना में कहते हैं -

"बे बयाही चाहे मर जावें, चाहे करें वंश बदनाम
मर जावें परवाह नहीं हमें सिर्फ रुपये से काम
पाँच का न व्यवहार हमारा, लेंगे हम तो एक हजार
चारु चमक वाले चाँदी के, वही अखंड मण्डलाकार ।"[1]

गुप्त और हरिऔध के राम और कृष्ण समाजसुधारक के रूप में हमारे सम्मुख आए हैं । यशोधरा में अप्रत्यक्ष रूप से इस युग के नारी के अधिकारों की माँग की गई है । प्रेमचन्द्र का आविर्भाव इसी युग में हुआ । उन्होंने अपनी कहानियों के अतिरिक्त उपन्यासों में भी यथार्थ की परम्परा का निर्वाह किया ।

यह युग सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से भी एक उथल-पुथल का युग था । इस युग का काव्य भारतेन्दु युग के आगे बढ़ा और इसमें पूर्वापेक्षा अधिक उत्कृष्टता भी आई। इस काल में जिस इतिवृत्तात्मक काव्य की रचना विपुल परिमाण में हुई उसमें कहीं-कहीं रीतिकालीन सामन्ती के भग्नावशेष भले ही दृष्टिगोचर हों, पर वे निश्चय ही समाजवादी भावनाओं से अनुप्राणित हैं । उसमें जहाँ दीनदुर्बलों, शोषितों और पतितों के प्रति मानवीय दृष्टि है, वहाँ उनमें उत्थान का संदेश, सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह, देश की स्वाधीनता के लिए तड़प और भारतीय जीवन के नवनिर्माण की आकुलता है ।[2]

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ० कृष्णलाल हंस, पृ० 91.
2. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ० कृष्णलाल हंस, पृ० 95.

द्विवेदी युग का अन्त होते-होते कवियों का एक ऐसा दल सामने आया, जो प्राचीन रूढ़ियों के स्थान में नवीन संस्कृति और नवीन सामाजिक मान्यताओं की स्थापना करने को व्यग्र था । ये सभी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त तरूण थे । ये नवयुवक आमूल परिवर्तन करने के पक्ष में थे । तरूण कवियों ने रीतिकालीन दरबारी संस्कृति, द्विवेदीकालीन स्थूल नैतिकता और इतिवृत्तात्मक रूढ़िबद्ध काव्य एवं तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियों के प्रति विद्रोह की भावना लेकर अंग्रेजी काव्य के प्रकाश में काव्य की रचना आरम्भ कर दी ।[1]

दूसरी ओर प्रसाद और निराला जैसे कुछ बंगला साहित्य की आध्यात्मिकता और दर्शन से भी प्रभावित हुए । उन्होंने भारतीय दर्शन का भी अध्ययन किया । परिणामस्वरूप हिन्दी में उस काव्य रूप के दर्शन होने लगे, जो एक ओर अंग्रेजी काव्य से और दूसरी ओर भारतीय दार्शनिकता से प्रभावित था । देश में निराशा और विषाद का एक अजीब वातावरण बना हुआ था । एक ओर देश की स्वतंत्रता के लिए महात्मा गाँधी के नेतृत्व में आन्दोलन चल रहा था और दूसरी ओर स्वतंत्रता का ही लक्ष्य ले क्रान्तिकारी दल भी सक्रिय था । कवि इन स्थितियों से भी अप्रभावित न रह सकते थे । फलतः कवियों का एक दल जहाँ नई शैली, नए विषय, नए उपादान और नए प्रतीकों को लेकर हर्ष, उल्लास, प्रेम, आशा और प्रफुल्लता से पूर्ण काव्य का नव विधान कर रहे थे, वहाँ कुछ कवि स्वतंत्रता की आकुलता, क्रान्ति की भावना और विद्रोह के स्वर लेकर काव्य रचना कर रहे थे ।[2]

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ0कृष्णलाल हंस, पृ0 95.
2. वही, पृ0 96.

इस प्रकार द्विवेदी युग के उत्तरार्ध में काव्य के चार रूप दिखाई दे रहे थे, एक रूप था, जिसे परम्पराबद्ध इतिवृत्तात्मक काव्य कहा जा सकता है। पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी, हरिऔध, रत्नाकर, नाथूराम शंकर शर्मा, पूर्ण नवरत्न, मैथिलीशरण गुप्त, गोकुलचंद शर्मा, गोपालशरण सिंह आदि इसी प्रकार के काव्य की रचना में संलग्न थे।

द्वितीय प्रकार का काव्य वह था, जिसका रूप अंग्रेजी के ढंग पर नई शैली, नई कल्पना, नए प्रतीक औरनवीन शब्दावली के द्वारा सँवारा गया है और जिसमें जीवन के हास-विलास, प्रेम और प्रमोद की अभिव्यक्ति हुई है।

तृतीय प्रकार का काव्य वह है, जिसमें निराशा और वेदना की अभिव्यक्ति विषण्ण स्वरों में हुई है। इस निराशा और और वेदना की अभिव्यक्ति कहीं व्यक्तिगत जीवन की निराशा और कठोरता को लेकर और कहीं भारतीय दर्शन के मायावाद को लेकर हुई है। इसी वैयक्तिकता के विकास ने आगे चलकर दार्शनिकता से समन्वित होकर "रहस्यवादी काव्य धारा" को और आनन्द तत्वों से समन्वित होकर "हालावादी" काव्य धारा को जन्म दिया था।[1]

चतुर्थ काव्य रूप वह है, जिसमें विदेशी शासन के प्रति विद्रोह, क्रान्ति की भावना, भारतीय स्वतंत्रता की उत्कृष्ट अभिलाषा और जागृति के स्वर गुंजरित हैं। पं0 माखनलाल चतुर्वेदी, एक भारतीय

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ0कृष्णलाल हंस, पृ0 96.

आत्मा, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर, सुभद्राकुमारी चौहान इस काव्य रूप के प्रमुख कवि हैं । काव्य के अन्तिम तीन रूपों के साथ ही हिन्दी काव्य साहित्य में नवयुगारंभ होता है ।[1]

(स) छायावादी युग :

इस युग के कवियों में भी राष्ट्रीयता की भावना को ग्रहण कर देश प्रेम सम्बन्धी मधुर गीतों की सृष्टि की । प्रसाद के "अरुण यह मधुमय देश हमारा" तथा निराला के "जागो फिर एक बार" और "भारति जय विजय करे" आदि गीत इन कवियों की राष्ट्रीय मनोवृत्ति के परिचायक हैं । छायावादी युग में प्रेम था, श्रृंगार था, नवीन कल्पनाएँ थीं और वैयक्तिकता की प्रधानता थी, किन्तु उसे सर्वथा सामाजिकता से रिक्त और जनजीवन से दूर नहीं कहा जा सकता । युग जीवन की विषमताओं, विफलताओं और निराशा ने छायावादी कवियों को व्यक्तिवादी बना दिया था । उनमें वास्तविक जन-जीवन से पलायन की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी थी, फिरभी वे पूर्णरूपेण समाज निरपेक्ष और देश के सामान्य जन-जीवन से सर्वथा विरत नहीं रहे । उनकी कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं, जिनमें उनकी सामाजिकता और जन-जीवनकी अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है । प्रसाद के स्कंदगुप्त और चन्द्रगुप्त नाटक के अनेक गीत उनकी प्रखर राष्ट्र-वादिता के प्रमाण हैं । उनके छायावादी महाकाव्य "कामायनी" में भी राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों के स्पष्ट दर्शन किए

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ०कृष्णलाल हंस, पृ० 97.

किए जा सकते हैं । सारस्वत प्रदेश की राष्ट्रस्वामिनी और मनु के ही संघर्ष कहा जा सकता है । इसी प्रकार सारस्वत प्रदेश की जनता की मनु के विरूद्ध संघर्ष घोषणा वास्तव में भारतीय जनता की ही अँग्रेजी शासन के विरूद्ध संघर्ष घोषणा है ।

असहयोग आन्दोलन की असफलता के पश्चात् देश में एक निराशा और निष्क्रियता दिखाई देने लगी थी । इससे छायावादी कवियों में वैयक्तिकता और अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का समावेश अवश्य हो गया था, किन्तु केवल इस परिस्थितिजन्य अस्थायी स्थिति के कारण ही छाया वादी काव्य तिरस्कृत नहीं हो सकता और उसके कवि समाज निरपेक्ष एवं जन-जीवन से उदासीन नहीं कहे जा सकते हैं ।[1] छायावादी कवियों ने सामाजिक रचनाओं में दलित वर्ग के प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की, तो साथ ही साथ सामाजिक ढाँचा बदलने के लिए "विप्लव" और क्रान्ति की माँग की । रहस्यवादी कवियों में उन्होंने आनन्द और प्रकाश में इष्ट-देव की कल्पना की, लेकिन अपने जीवन की दारूण व्यथा को भी वे भुला न सके ।[2]

छायावाद के उत्तरकाल में बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा आदि ने जिस प्रेम काव्य की रचना की, उसमें श्रृंगार का अत्यन्त स्थूल और सतही रूप प्रस्तुत हुआ है । ऐसा जान पड़ता है, मानों इस काल के कवि पूर्ण स्वच्छन्द और प्रेम के मनमौजी दीवाने हैं । वे प्रेम के स्थूल और मांसल चित्र उपस्थित करने में ही अपने कवि कर्म की सफलता समझ

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य: डॉ०कृष्णलाल हंस, पृ० 97.
2. निराला : पृ० 68.

बैठे हैं । उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है -

"अब तुम्हें डर, लाज इससे लग रही है,
आँख केवल प्यार की अब जग रही है ।"[1]

छायावादी युग के उत्तरकाल में हमें काव्य के छः रूप दिखाई देते हैं - श्रृंगार काव्य, निराशावादी काव्य, मानवतावादी काव्य, राष्ट्रीय काव्य, यथार्थवादी और वर्ग संघर्ष की भावनायुक्त काव्य ।

छायावादी काव्य श्रृंगार की मनोरम लौकिक भूमि को लेकर आरंभ हुआ था । उसमें प्रेम की वैयक्तिक अभिव्यक्तियों की ही प्रधानता थी । छायावाद के अन्तर्गत हमें जो "श्रृंगार चित्रण" मिलता है, वह एक मर्यादा से आबद्ध है । पंत जी की ग्रन्थि में हमें श्रृंगार कहीं-कहीं अधिक मुखर दिखाई देता है, इस धारा के अधिकांश कवियों ने सूक्ष्म और परिष्कृत श्रृंगार की ही स्थापना की है ।[2]

छायावादी काव्य ज्यों-ज्यों दार्शनिकता की ओर अग्रसर होता गया, उसमें जीवन की नश्वरता और निराशा की अभिव्यक्ति बढ़ती गई । डॉ० नगेन्द्र के अनुसार, "हिन्दी की छायावादी काव्यधारा भावनात्मक व्यक्तिवाद, निराशा, वेदना एवं अतृप्त प्रेम को लेकर प्रकृति के मानवीकरण के साथ सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति करती हुई प्रवाहित हुई है ।"[3] इस कथन के अनुसार भावनात्मक व्यक्तिवाद,

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ०कृष्णलाल हंस, पृ० 98.
2. वही, पृ० 100.
3. वही, पृ० 100.

निराशा, वेदना, अतृप्त को निरूपण और प्रकृति का मानवीकरण छायावाद के प्रमुख आधार स्तम्भ हैं । निराशा की अभिव्यंजना पंत के काव्य में मिलती है, परन्तु निराशा और वेदना की सर्वाधिक अभिव्यक्ति हमें महादेवी जी के काव्य में मिलती है । प्रसाद, निराला, भगवतीचरण वर्मा, अचंल, नरेन्द्र शर्मा आदि के काव्य में भी इसे देखा जा सकता है।

छायावादी काव्य केवल कल्पना और सौन्दर्य का ही काल नहीं रहा, उसमें "मानवता" का भी स्थान है, छायावादी काव्य का मानव ईश्वर के अनेक कल्पित गुणों से पूर्ण और अपराजेय है । पंत की ग्रन्थि, निराला की "राम की शक्ति पूजा", तुलसीदास, प्रसाद जी की कामायनी, तथा महादेवी वर्मा की "दीपशिखा" में मानवता की प्रतिष्ठा एक उच्च भाव भूमि पर की गई है ।[1]

छायावादी काव्य का सम्पूर्ण काल राष्ट्रीयगतिविधियों का काल रहा है । राष्ट्रीय आन्दोलन ने इसी काल में उग्र से उग्रतर रूप धारण किया था । अतः इस काल में राष्ट्रीय काव्य का प्रणयन स्वाभाविक था ।

यथार्थवादी काव्य का शुभारंभ "भारतेन्दु युग" से हो जाता है, जिसका विकास हमें द्विवेदी युग के अनेक कवियों की रचनाओं में दिखाई देता है । डॉ० रांगेय राघव के अनुसार,"छायावाद में यथार्थ प्रत्यक्ष रूप से नहीं था, किन्तु उसने चेतना को झकझोर दिया औरव्यापकता की ओर व्यक्ति को आकर्षित किया ।"[2] इसी झकझोर ने छायावाद

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ०कृष्णलाल हंस, पृ० 10।
2. काव्य में यथार्थ और प्रगति, पृ० 160.

के उत्तरकाल में अनेक कवियों को यथार्थवादी काव्य रचना के लिए प्रेरित किया था । यथार्थवादी काव्य का यह रूप पंत, निराला, नवीन, दिनकर आदि कवियों की रचना में देखा जा सकता है ।[1]

सन् 1934 तक आते-आते इस काल का काव्य वर्ग-संघर्ष की भावना से प्रभावित होने लगा । देश में श्रमिकों का पूंजीपतियों से संघर्ष आरम्भ हो गया था और प्रबुद्ध वर्ग पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव और अत्याचारों को देखकर चिन्ता अनुभव करने लगा था । इस वर्ष की महात्मा गांधी की भारत व्यापी हरिजन - उद्धार - यात्रा तथा स्थान स्थान पर होने वाले श्रमिकों के संघर्षों का प्रबुद्ध जन-मानस पर प्रभाव पड़ता जा रहा था और इस प्रकार देश में एक जनवादी वातावरण का निर्माण हो रहा था । फलस्वरूप पंत, निराला, दिनकर, नवीन तथा अन्य राष्ट्रवादी औरयथार्थ वादी कवियों ने वर्ग-संघर्ष की भावना से पूर्ण काव्य का सृजन आरम्भ किया, जो प्रगतिवादी काव्य का मूल स्वर था।[2]

किसी युग की समाप्ति एवं नए युग के आगमन की भूमिका वस्तुत: निश्चित अवधि के पूर्व की पड़ चुकी होती है जो शनै: - शनै: व्यापक होते हुए एक निश्चित समय में उपयुक्त अवसर प्राप्त कर पुराने के अन्त और नवीन आगमन की घोषणा कर देती है ।[3] "हिन्दी में छायावादी काव्यधारा की समाप्ति का प्रमुख कारण उसकी अतिशय

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ0कृष्णलाल हंस,पृ0 102.
2. वही, पृ0 102-103.
3. नया हिन्दी काव्य : डॉ0 शिवकुमार मिश्र- पृ0 1.

कल्पना प्रियता और एकान्त वैयक्तिक पीठिका थी । हिन्दी की छायावादी कवियित्री महादेवी वर्मा के शब्दों में, "वह व्यष्टिगत सत्य को समष्टिगत परीक्षा में अनुतीर्ण रहा था । अतः काव्यक्षेत्र में प्रतिक्रिया का आगमन अनिवार्य ही था ।

(ख) प्रगतिवाद का उदभव और विकास :

कोई भी युग न अनायास आरम्भ होता है और न अनायास समाप्त ही होता है । युग के परिवर्तन के साथ नई भावनाओं का उदय होता है और ये भावनायें अपने विकास के साथ नयी पृष्ठभूमि तैयार करती हैं, जिस पर हमें नवयुग की इमारत अपनी सम्पूर्ण साज - सज्जा के साथ दिखाई देती है । यद्यपि इस इमारत की नींव बदलती हुई भावनाओं के साथ ही पड़ने लगती है । नए युग के आरम्भ के पूर्व की स्थिति में प्राचीन और नवीन का सम्मिलित रूप होता है । यह वह स्थिति होती है, जिसमें हमें प्राचीनता समाप्त होती और नवीनता के अंकुर जमते दिखाई देते हैं । इस प्रकार धीरे-धीरे प्राचीन युग का अवसान औरनवीन युग का आविर्भाव होता है । नवीन आकाश से टपकी कोई वस्तु नहीं होती, उसका जन्म प्राचीनता के गर्भ से ही होता है, किन्तु प्राचीनता नवीन की प्रसव पीड़ा से प्राण त्याग कर देती है औरनवीनता का शिशु हमें किलकारी मारता दृष्टिगोचर होने लगता है । प्रगतिवादी काव्य की भी यही स्थिति रही है । प्रगतिवादी काव्य धारा छायावादी काव्य की हत्या करके हिन्दी के काव्य सिंहासन पर आसीन नहीं हुई । छायावादी काव्य-धारा का पूर्ण विकास हो चुका था, वह बूढ़ी हो गई थी । अतः उसकी जीवन-लीला समाप्त

होनी स्वाभाविक थी । उसने जीवन के अन्तिम चरण में ही प्रगतिवादी काव्य-भावनाओं को जन्म दे दिया था । दूसरे शब्दों में, उसके समाप्ति-काल के पूर्व ही प्रगतिवादी काव्य-धारा पूर्ण उसके गर्भ में आ गई थी और एक गर्भस्थ शिशु की तरह विकसित हो रही थी जिसने गर्भकाल पूर्ण होने पर उचित और अनुकूल स्थिति में जन्म ग्रहण किया । पंत और निराला ने सोहर गीत गाकर इसके जन्म की सूचना दी, प्रगतिशील लेखक संघ ने इसका नामकरण संस्कार बड़ी धूमधाम से किया और नागार्जुन, केदार, नरेन्द्र, सुमन, त्रिलोचन रांगेय राघव, रामविलास शर्मा आदि इस नवजात शिशु के पालन-पोषण में प्रवृत्त हो गए । मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण, शमशेर बहादुर आदि ने उससे हाथ मिलाया और एक प्रभावशाली शक्ति सम्पन्न मित्र के रूप में उसका महत्व स्वीकार किया ।[1]

हिन्दी के अधिकांश विद्वानों और समीक्षकों ने "प्रगतिवाद" के तिथि निर्धारण के सम्बन्ध में सन्-1936 के वर्ष को ही स्वीकारा है । सन्-1936 ही वह वर्ष है जिसमें भारत में "प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना हुई और प्रेमचन्द्र के सभापतित्व में उसका प्रथम अधिवेशन हुआ । यह सबसे अधिक सबल और तर्कपूर्ण प्रमाण है, जो इस स्थापना की पुष्टि करता है । इस वर्ष से नवीन पत्र-पत्रिकाओं का जन्म हुआ, जिसमें "हंस" और "जागरण" विशेष लोकप्रिय रहे हैं ।[2]

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य:डॉ0कृष्णलाल हंस,पृ0 352-353.
2. वही, पृ0 23.

इस नवीन युग में साहित्य में नवीन प्रवृत्ति और शैली का भी जन्म हुआ । यह युग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उथल-पुथल और संघर्ष का युग है । साहित्य में एक ओर तो वैयक्तिक और अन्तर्मुखी प्रवृत्तियाँ पलायन, निराशा, पराजय आदि भावनाओं को जन्म दे रही थीं । तथा दूसरी ओर सामाजिक विषमता भी पराकाष्ठा पर पहुँच रही थी । इस स्थिति के फलस्वरूप ही इन सबके उन्मूलन को लक्ष्य करते हुए एक नवीन युग की स्थापना हुई । युग की आवश्यकताओं-आकांक्षाओं को जानने वाले एक नवीन समुदाय का साहित्य के बीच आविर्भाव हुआ, जिसने अपने आपको प्रगतिवादी कहा और जिसकी रचना प्रगतिशील कही गई ।[1] जैसाकि आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने कहा है- "सन्-1935 के आसपास हिन्दी साहित्य के रचनात्मक क्षेत्र में जो निराशा और सामाजिक अनुत्तरदायित्व की एक लहर आई थी, जिसने रचना और समीक्षा के क्षेत्रों में भी अपना अनिष्टकारी प्रभाव दिखाया था, उसी की प्रतिक्रियास्वरूप साहित्य के सामाजिक आदर्श का आग्रह करती हुई नई समीक्षा पद्धति हिन्दी क्षेत्र में आई ।"[2]

सन् 1936 के प्रारम्भ से ही इस नवीन युग की "प्रथम किरणों" के दर्शन होते हैं । यह नया युग साहित्य तथा समाज दोनों क्षेत्रों में ही अपना अभिव्यक्ति करता है और अपने मूल्यों और प्रतिमानों की एक नवीन और वैज्ञानिक ढंग से प्रतिस्थापना करता है । साहित्य

---

1. हिन्दी काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत:डॉ0केसरी नारायणशुक्ल, पृ0 199.
2. नया साहित्य - नए प्रश्न : आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी,पृ0 21.

साहित्य में इसे "प्रगतिवाद" की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। और समाज में नवीन समाजवादी विचारधारा का यथार्थ की भूमिका पर प्रसार करता है। सन्-1936 में लखनऊ में होने वाले कॉंग्रेस अधिवेशन से यह समाजवादी प्रभाव स्पष्ट हो उठता है।[1] सन्-1936 में प्रेमचन्द जी भी 'प्रगतिशील लेखक संघ' के सभापति के रूप में एक नवीन प्रकार के साहित्य की घोषणा करते हैं। उन्होंने साहित्य का सम्बन्ध जीवन की वास्तविकता और सत्यता से जोड़ा। सभापति के पद से भाषण देते हुए उन्होंने कहा- परन्तु मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि जो कुछ लिख दिया, वह सब का सब साहित्य है। साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुन्दर हो और जिसमें दिल दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्णरूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की जाती हैं। साहित्य में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन सच्चाइयों का दर्पण हो।[2]

भारतीय समाज और जनजीवन में तो उपर्युक्त परिस्थितियाँ विद्यमान थीं हो, इसी समय योरोपीय समाज भी विषम परिस्थितियों से आक्रान्त था। यूरोप के जागरूक लेखकों ने अपने यहाँ साहित्य को प्रशस्त पथ पर ले जाने के लिए "प्रगतिशील लेखक संघ" नामक संस्था को जन्म दिया, जिसका प्रथम अधिवेशन सन्-1935 में प्रसिद्ध

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० 33.
2. साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचन्द्र, पृ० 2.

उपन्यासकार "ए0एम0फास्टर" की अध्यक्षता में हुआ । इस अधिवेशन से प्रेरणा पाकर लन्दन में रहने वाले कतिपय भारतीय लेखकों डॉ0 के0एस0 भट्ट, डॉ0 जे0सी0घोष, डॉ0 एस0एस0जहीर, डॉ0 एम0सिन्हा आदि ने 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' को जन्म दिया । इस अधिवेशन का जो घोषणा-पत्र भारत भेजा गया, उसमें कहा गया कि इस सभा का उद्देश्य अपने साहित्य और कलाओं को पुजारियों, पंडितों और अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकालकर जनता के निकटतम संसर्ग में लाना है, उनमें जीवन और वास्तविकता की सृष्टि करना है, जिससे अपने भविष्य को उज्वल बना सकें ।[1]

कुछ विद्वानों ने "प्रगतिवाद" के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं जिनमें बाबू गुलाबराय, धर्मवीर भारती, विश्वंभर नाथ मानव तथा मन्मथनाथ गुप्त के विचार निम्न हैं -

बाबू गुलाबराय के अनुसार, "'प्रगतिवाद' वर्गहीन समाज का समर्थक है । वह एक प्रकार से मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप कहा जा सकता है ।"[2]

डॉ0धर्मवीर भारती के अनुसार,-"रूढ़ अर्थों में 'प्रगतिवाद' साहित्य की उस दिशा विशेष को कहते हैं, जो मार्क्सवादी जीवन दर्शन के अनुसार साहित्य के लिए निर्देशित की गई है ।"[3]

श्री विश्वंभरनाथ मानव का कथन है कि-" प्रगतिवादी युग के सम्बन्ध में इस धोखे में नहीं रहना चाहिए कि इसमें केवल साम्यवादी विचारधारा

---

1. हंस - जनवरी 1936 :सम्पादक-प्रेमचन्द्र, अंक-4, पृ0 118.
2. साहित्य संदेश : जनवरी/फरवरी, 1954.
3. प्रगतिवाद : एक समीक्षा, पृ0-6.

का प्रचार करने वाले ही कवि होंगे ।"[1]

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है,-" 'प्रगतिवाद' की विशेषता यह है कि मनुष्य को अपना कच्चा माल मानने पर भी वह भावुकतामय मानवतावाद में बहकर वर्ग-संघर्ष के प्रति अंधा नहीं है, केवल इतना ही नहीं, वह इस संघर्ष में क्रान्तिकारी कार्य को ओर भी हाथ बढ़ाता है ।"[2]

'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना सन्-1935 में लन्दन में हुई थी । सन्-1936 में दूसरे वर्ष लखनऊ में इसका प्रथम अधिवेशन "प्रेमचन्द" की अध्यक्षता में हुआ । उत्तरी भारत के लेखकों में पंत, यशपाल, रशीद, जहाँ, फैज अहमद, फैज सज्जादजहीर और दक्षिण भारत के लेखकों में रामकृष्ण राव, बंगाल के लेखकों में श्री सुरेशचन्द्र गोस्वामी आदि ने इस सम्मेलन में भाग लिया । गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने प्रथम अधिवेशन की चेष्टा को आशीर्वाद दिया । प्रेमचन्द ने अपने भाषण में साहित्य के उपयोगितावादी मूल्यों को विस्तार से प्रतिपादित किया ।[3]

सन् 1938 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' का 'द्वितीय अधिवेशन' कलकत्ता के आशुतोष मेमोरियल हाल में हुआ । इस अधिवेशन के सभापति 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' थे, परन्तु अस्वस्थता के कारण वे इस अधिवेशन में उपस्थित न हो सके । केवल उनके सन्देश को पढ़कर सुना

---

1. साहित्य संदेश : जनवरी/फरवरी-1954, पृ0 257.
2. प्रगतिवाद की रूपरेखा, पृ0 2.
3. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्रा, पृ0 35.

दिया गया । इस अधिवेशन के घोषणा-पत्र में कट्टरपंथी, रूढ़िवादिता, अध्यात्म तथा कोरी आदर्शवादिता का विरोध करते हुए साहित्य तथा जनता के बीच निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने का आग्रह किया गया जिससे वह एक नए विश्व के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सके ।[1]

'प्रगतिशील लेखक संघ' का तृतीय अधिवेशन दिल्ली में मई 1942 में हुआ । यह सम्मेलन अखिल भारतीय फासिस्ट विरोधी लेखक सम्मेलन के साथ जुड़ा था ।[2] इस अधिवेशन में कहा गया कि- हमारा कर्तव्य है कि हम देश में एकता पैदा करें और जातियों के बीच खाई को पूरें, जिससे तत्कालीन राष्ट्रीय और हमारे सौ फीसदी बचाव का रास्ता साफ होगा । हम हिन्दुस्तान के महान और बहुमूल्य, सांस्कृतिक उत्तराधिकार के प्रहरी हैं । फैशिस्ट लुटेरों से उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है ।[3]

'प्रगतिशील लेखक संघ' का चतुर्थ अधिवेशन बम्बई में सन् 1943 में श्री डाँगे की अध्यक्षता में हुआ था । इस अधिवेशन के घोषणा-पत्र में देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों से परिचित कराया गया और कहा गया कि हमारा देश एक गम्भीर संकट से आतंकित है । इस गंभीर संकट के काल में हिन्दुस्तान के प्रगतिशील लेखकों का कर्तव्य है कि राष्ट्र के मनोबल को सुदृढ़ बनायें । इस अधिवेशन में केवल सिद्धान्तों और कर्तव्यों का मौखिक आग्रह ही नहीं किया,

---

1. प्रगतिवाद : शिवदान सिंह चौहान, पृ0 336.
2. श्री प्रकाशचन्द्र : गुप्त से प्राप्त सूचना के आधार पर
3. प्रगतिवाद : श्री शिवदान सिंह चौहान - फैसिस्ट आक्रमण के खिलाफ भारतीय लेखकों का घोषणा-पत्र, पृ0 340.

अपितु रचनात्मक कार्यों के लिए 'प्रगतिशील लेखक संघ' के लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया गया ।[1]

'प्रगतिशील लेखक संघ का पंचम अधिवेशन' बम्बई के पास सबर्ब में हुआ था, क्योंकि बम्बई नगर में इस पर रोक लगा दी गई थी । यह अधिवेशन सन्-1950 के लगभग हुआ । इसके निर्देशक डॉ० रामविलास शर्मा थे । इस अधिवेशन के सभापति मंडल के सदस्य श्री अन्नामउ थे जो मजदूर कवि हैं । इस सम्मेलन में एक नया घोषणा-पत्र तैयार हुआ था ।[2]

'प्रगतिशील लेखक संघ' का छठवाँ अधिवेशन दिल्ली में सन्-1953 में हुआ, यहाँ श्री कृष्णचन्द्र नए मंत्री निर्वाचित हुए । इस अधिवेशन के द्वारा यह निश्चय किया गया कि संघ को व्यापक स्वरूप प्रदान किया जाये । इसके पश्चात् 'प्रगतिशील लेखक संघ' का कोई भी अधिवेशन नहीं हुआ । उसकी संगठनशक्ति एक प्रकार से समाप्त हो गई थी और उसमें निर्जीवता आ गई थी ।[3]

'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' के अतिरिक्त इसी स्तर पर 'अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक सम्मेलन' भी हुए। इन सम्मेलनों ने भी 'प्रगतिवादी साहित्य' को समृद्ध और विस्तृत रूपरेखा प्रदान की ।[4]

---

1. प्रगतिवाद : प्रगतिशील लेखक संघ के चतुर्थ अधिवेशन का घोषणा-पत्र शिवदान सिंह चौहान, पृ० 344.
2. श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त से प्राप्त सूचना के आधार पर.
3. वही,
4. प्रगतिशील साहित्य और राष्ट्रीय नवनिर्माण : हंस - अक्टूबर, 1947, अंक-1, लेखक : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन.

अखिल भारतीय स्तर के अतिरिक्त प्रान्तीय स्तर पर भी प्रगतिशील सम्मेलनों एवं संस्थाओं का निर्माण हुआ, इन सम्मेलनों में उत्तर प्रदेश में प्रगतिशील लेखकों की संस्था सर्वप्रमुख थी। इस सम्बन्ध में उनके तीन सम्मेलन हुए।[1] उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त बंगाल में भी सन्-1936 में बहुत से स्थानों में प्रगतिशील लेखक संघ शाखाओं की बैठक हुई।[2]

'प्रगतिवाद' के जन्म एवं विकास में सुमित्रानन्दन पंत, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा दिनकर, रामेश्वर शुक्ल अंचल, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, नरेन्द्र शर्मा बालकृष्ण शर्मा नवीन, भगवतीचरण वर्मा, गिरिजा कुमार माथुर आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, विशेष सहयोग प्रदान किया है। इन्हीं कवियों के सहयोग से प्रगतिवाद अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सका है।

(ग) प्रगतिवाद का मूल प्रतिपाद्य :

सन्-1936 से 1943 तक प्रगतिवाद का उत्कर्ष माना जाता है। इस अवधि के हिन्दी काव्य पर "कार्ल मार्क्स" की विचार-धारा का प्रमुख प्रभाव रहा। साहित्य में निम्न और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति अभिव्यक्त हुई। इस अवधि में समाजवादी विचारधारा के विकास के साथ - साथ पूँजीवाद भी बढ़ रहा था, जिससे वर्ग-संघर्ष ने जोर पकड़ा। स्वाधीनता आन्दोलन तथा राजनीतिक अन्यायों के विरोध हेतु अपनाए गए सत्याग्रह और हड़तालों से कृषक मजदूर और शोषित वर्ग में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आ रही थी। वे संगठित होकर संघर्ष करने के लिए तत्पर थे।

---

1. श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त से प्राप्त सूचना के आधार पर,
2. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० 40.

इन परिस्थितियों ने यथार्थवादी चिंतकों की विचार-धारा को मानवतावादी प्रवाह दिया । इसी कारण इस कालके साहित्य में आदर्शवाद और कल्पना-प्रवणता के स्थान पर यथार्थवाद और बौद्धिकता का प्राधान्य है । 'प्रगतिवाद' का प्रमुख उद्देश्य जनता के अभावों और दरिद्रता को दूर करना है ।[1] इसीलिए प्रगतिवाद में यथार्थ और बौद्धिकता कल्पना और आदर्शवाद पर हावी रहे । 'प्रगतिवाद' कल्पना की उड़ान को यथार्थ की भूमि पर ले आया । प्रगतिवादी कवि पूंजी-वादी संस्कृति के विरोध और जनवादी संस्कृति के निर्माण की कामना लेकर आगे बढ़े, जिससे श्रमिक-क्रान्ति के भावों को पुष्टता मिली, विश्व-बंधुत्व, नारी समानता और स्वतंत्रता तथा बौद्धिकता की भावना को बल मिला । 'प्रगतिवाद' सौन्दर्य और कला का विरोधी नहीं, अपितु वह पहले अभावों को, जन दारिद्र्य को दूर करना चाहता है, क्योंकि भूखे का समग्र जीवन-दर्शन रोटी में निहित रहता है । फलत: प्रगति-वादियों के साहित्य में 'जनवादी विचारधारा का प्राधान्य' पाया जाता है ।[2]

प्रगतिवादी साहित्य के मुख्यतया निम्नलिखित उद्देश्य थे और वही उसका मूल प्रतिपाद्य भी -

(1) अतीत और वर्तमान समाज-व्यवस्था के प्रति असन्तोष व्यक्त करना।

(2) मार्क्सीय सिद्धान्तों का प्रचार करना एवं उनके प्रतिफलन की आकांक्षा करना ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : श्री शरण रस्तोगी, आलोक कुमार रस्तोगी, पृ0 225.
2. वही, पृ0 226.

(3) रूस और उसकी शासन-व्यवस्था की प्रशंसा करना ।

(4) समाज का यथार्थवादी चित्रण करना ।

(5) राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम की उद्भावना करना ।

(6) सामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना ।

(7) साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूँजीवाद के प्रति विद्रोह करना।

(8) शोषितों के प्रति सहानुभूति और जागरण के प्रयास करना ।

(9) नवीन व्यवस्था का आह्वान करना ।

(10) नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण का निर्माण करना ।

(11) क्रान्ति की भावना उत्पन्न करना ।

(12) सांस्कृतिक समन्वय की भावना प्रदर्शित करना ।

(13) मानवता का व्यापक चित्रण करना ।

(14) विश्व बंधुत्व की स्थापना करना ।

(15) सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग-प्रहार करना ।

(16) प्रेम और स्वस्थ प्रणय-भाव का समर्थन करना ।

(17) प्रकृति चित्रण करना ।

(18) भाषा शैली एवं छन्दों को परम्परागत रूढ़ियों से मुक्ति दिलाकर नवीन शिल्प-विधान को प्रोत्साहित करना ।

हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों की अच्छी खासी संख्या है । यहाँ पर उन सभी का परिचय देना न तो सम्भव है,और न ही समीचीन । इसलिए कुछ विशिष्ट कवियों को ही, जिन्होंने हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद को स्थापित करने में अपनी ठोस भूमिका निभायी है, इस अध्ययन का मुख्य केन्द्र बनाया गया है । इस दृष्टि से

पंत, दिनकर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, अंचल, सुमन, रामविलास शर्मा ,नरेन्द्र, शैलेन्द्र आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । यही इस अध्ययन के आलोच्य कवि हैं । अतः इनके सम्बन्ध में संक्षिप्तजानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है ।

__(घ) आलोच्य कवियों एवं उनकी रचनाओं का सामान्य परिचय :__

__सुमित्रानन्दन पन्त :__ पंत का जन्म सं० 1956 वि० में कौसानी, जिला-अल्मोड़ा में हुआ था । प्रयाग विश्वविद्यालय में समय ही एक राजनैतिक सभा में महात्मा गाँधी की युगवाणी सुनकर आपने पढ़ना छोड़ दिया । आप हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, संस्कृत के विद्वान थे । आपके स्फुट लेख और कविता संग्रहों की भूमिकाएँ आपके गहरे चिंतन और तीक्ष्ण आलोचन की प्रमाण हैं । हिन्दी के प्रमुख विचारकों में आपका स्थान है । पंत जी हिन्दी के युगान्तरकारी कवि हैं ।आपके हिन्दी कविता को नए भाव, नयी भाषा और नए सौन्दर्य-चित्र प्रदान किए हैं । कोमलता और भावार्द्रता आपकी कविता के प्रमुख गुण हैं । आप जैसा प्रतिभाशाली कवि जिस भाषा और साहित्य में उत्पन्न हो जाये, वह धन्य है । माधुर्य आपकी कविता का प्राण है । कल्पना की ऊँची से ऊँची उड़ान भरकर भी कवि के पैर इसी पृथ्वी पर रहते हैं। इसीलिए उनकी कविता में मानवीय संवेदना और सहानुभूति मिलती है । आपका व्यक्तित्व हिन्दी में बड़ा शक्तिवान और प्रेरक रहा है। छायावाद के बाद आने वाली नए कवियों की पूरी की पूरी पीढ़ी पर आपकी भाषा और चित्रण शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है । आपने कितने

ही नए सुरों की धारा हिन्दी में बहाई है, और हिन्दी कविता को नए ढंगों से सँवारा है । कविता और संगीत को इतने निकट लाने का बहुत कुछ श्रेय आधुनिक युग में आपको है ।[1]

पंत जी सौन्दर्य प्रिय और आशावादी कवि थे, जो भावी पीढ़ी को अपनी कोमल-सृजन चेतना के अनुरूप देखना चाहते थे । उन्हें यदि किसी का सौन्दर्य आकर्षित करता था, तो वह प्रकृति का, जिसने उनके हृदय में कोमलता, भावुकता और स्नेह का ऐसा भण्डार भर दिया था कि उनका जीवन सदा के लिए मानव कल्याण के लिए समर्पित हो गया । जीवन की तरह कला की साधना भी उन्हें प्रकृति से मिली थी । इस विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है -

"कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है । कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात, आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था जब कभी मैं आँखे मूँदकर लेटता था, तो वह दृश्यपट चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था । जब मै सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी ये हरित-नील-धूमिल कूर्मांचल की छायांकित पर्वत श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमांचल को धारण

---

1. काव्य संग्रह : द्वितीय भाग, अंचल - पृ0 185.

किए हैं और अपनी ऊँचाई से आकाश की आवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाए हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव सम्मोहन के आश्चर्य में डुबाकर कुछ काल के लिए भुला सकती हैं और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गम्भीर आश्चर्य की भावना पर्वत की ही तरह निश्चित रूप से अवस्थित है।"[1].

पंतादि से अन्त तक सौन्दर्य के कवि रहे हैं। समय-समय पर उनका सौन्दर्य विषयक दृष्टिकोण एवं सौन्दर्य का स्वरूप बदलता रहा है। पंत मानवीय सौन्दर्य के चितरे हैं। उनकी सौन्दर्य चेतना माटी की सोंधी गंध, हलचलाते किसानों, श्रमिकों एवं मध्यमवर्गीय पारिवारिक, परिवेश की विसंगतियों में सौन्दर्य का अन्वेषण करती है।[2]

छायावादी काव्यधारा के प्रणेता के रूप में कविवर पंत का एक विशिष्ट स्थान है। उनका प्रवेश हिन्दी काव्य में छायावादी कवि के रूप में हुआ, लेकिन उनकी काव्य रचनाओं और कला-कृतियों ने भिन्न-भिन्न विचारों और भावभूमियों का स्पर्श किया है और कला एवं विचारों के माध्यम से अपने युग की स्वत: घोषणा की है।[3] कवि की काव्य कृतियाँ उसके विकाससूत्र का परिचय प्रदान कर नए युग की स्वत: घोषणा करती हैं। पंत की काव्य रचना का प्राथमिक चरण

---

1. पंत और कालाकाँकर : कुँ० सुरेश सिंह, पृ० 13.
2. साहित्यिक निबन्ध : वेदप्रकाश अमिताभ : पृ० 420.
3. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० 95.

सौन्दर्यमय भावनाओं का है । सौन्दर्य युग के पश्चात् पंत का काव्य एक नवीन दिशा को लेकर जीवन की वास्तविकताओं, अनुभूतियों और गहनताओं के प्रांगण में जन्म लेता है । पंत की प्रगतिवादी रचनाओं का परिचय इस प्रकार है -

(1) युगान्त : युगान्त' में कवि अपनी कविताओं के एक युग के अन्त होने की घोषणा करता है । 'युगान्त' कवि की आरंभिक भावभूमि के अंत की घोषणा भी करता है और नवीन प्रगतिशील विचारों को भी वाणी प्रदान करता है ।[1] "इस प्रकार युगान्त कवि के काव्य-जीवन का मध्यबिन्दु है । जिसके पहले उसने प्रकृति, सौन्दर्य, प्रेम, उल्लास,आत्मा, जगत आदि की पहेली को भोले शिशु के रूप में सुलझाया है और जिसके पीछे उसने जगत् के यथार्थ संघर्ष की अनुभूति को वाणी दी है ।"[2] 'युगान्त' में कवि वर्तमान जीवन के कई पक्षों को लेकर चला है । देश के वर्तमान स्वरों की मीठी प्रतिध्वनि स्थान-स्थान पर पाते हैं । कवि कहीं परिवर्तन की प्रबल आकांक्षा करता है, कहीं कोकिल को सन्देश प्रदान करता है, कहीं नव वसन्त का आह्वान करता है, और कहीं बापू के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता है । 'युगान्त' में कवि भावनाओं के स्वप्निल संसार को त्यागकर यह करता हुआ सुनाई पड़ता है -

"जगती के जनपथ, कानन में,
तुम गाओ विहग,अनादि गान ।

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 95.

2. सुमित्रानंदन पंत : शचीरानी गुर्टू : कलाकार कवि पंत,डॉ0इन्द्रनाथ मदान - पृ0 118.

चिर शून्य निखिल पीड़ित जग में,
निज अमर स्वरों में भरो प्राण ।"[1]

'युगान्त' में कवि को हम बाह्य संसार के सुख-सौरभ तत्वों से आगे पाते हैं । पंत जी ने स्वयं लिखा है-"युगान्त में मेरा वह विश्वास बाहर की दिशा की ओर सक्रिय हो उठता है और विकास का हृदय क्रान्ति का भी हो जाता है ।....... नवीन सत्य के प्रति मेरे मन का आकर्षण अधिक वास्तविक वन नवीन मानवता के रूप में प्रस्फुटित होने लगता है ।"[2]

'युगान्त' का कवि विगत युग की समाप्ति और नवयुग का उल्लासपूर्वक अभिनन्दन करता है । विगत युग उसे मृत विहंग प्रतीत होता है और वह प्राचीन मान्यताओं एवं विश्वासों की जीर्ण पत्रावली को झर जाने के लिए कहता है -

"द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र
हे त्रस्त,ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण
हिमतापपीत,मधुवातभीत,
तुम वीतराग,जड़पुराचीन ।"[3]

'युगान्त' में नए अवतरण की पुकार है । नवीन आशा की किरणों से कवि 'गा कोकिल बरसा पावक कण' की घोषणा करता है । युगान्त में कवि ने नवीन क्रान्ति का आह्वान किया है । क्रान्ति की

---

1. युगपथ : युगान्त, पृ0 19
2. वही, पृ0 35.
3. वही, पृ0 12.

की वह भावना जो अपने विकसित रूप में प्रगतिवाद के नाम से लोकप्रिय हुई । कवि कोकिल को सम्बोधित करता हुआ कहता है -

"गा कोकिल बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंस जग के जड़ बन्धन
पावक पग धर आए नूतन ।"[1]

कवि मानवता को सुप्तावस्था में नहीं देखना चाहता है, अपितु एक नवीन जागरण का संदेश प्रदान करता है । इस प्रकार 'युगान्त' काव्य में एक प्रकार से छायावादी काव्यधारा से विदा लेने का उपक्रम है, जिसके मूल में कवि की नवीन जीवनदृष्टि है, जो एक सौन्दर्य के कवि को समाज और राष्ट्र की यथार्थताओं से परिचित कराती है ।

(2) युगवाणी : पंत की प्रगतिशील काव्य रचनाओं में 'युगवाणी' एक प्रमुख कृति है । 'युगवाणी' में आकर कवि का मार्क्सवादी प्रभाव गहन हो जाता है, और कवि की दृष्टि मुख्यत: भौतिक समृद्धि की ओर जाती है तथा एक नवीन समाज की रूपरेखा भी वह प्रस्तुत करता है । ऐसे समाज की जो वर्ग-विहीन न हो और जहाँ शोषण आदि न हो । 'युगवाणी' में पंत की प्रेरणा ने अपने कोमल अन्तर्मुखी गीत त्यागकर समाजवादी विचार दर्शन अपनाया । कल्पना के रंगमहल छोड़कर आपके काव्य ने कठोर और शुष्क धरती का वरण किया ।"[2]

---

1. युगपथ : युगान्त, पृ० 12.
2. हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा : प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० 46.

'युगवाणी' की कविताओं में सैद्धान्तिकता के प्रति आग्रह है। वह सिद्धान्तों की सीमाओं को पार नहीं कर सकी है । यही कारण है कि उसमें चिन्ता की प्रवृत्ति प्रमुख हो गई है ।[1]

'युगवाणी में कवि एक नवीन मानवता और संस्कृति का निर्माण करना चाहता है । 'नवसंस्कृति', उद्बोधन' 'पतझर' आदि कविताओं में इसका पूर्णरूप से आह्वान किया गया है । पंत जी के अनुसार इस नवीन संस्कृति में रूढ़ियों, रीतियों की आराधना नहीं होगी, मनुष्य श्रेणी या वर्गों की श्रृंखला में नहीं रहेंगे और न ही उनके श्रम का शोषण होगा । कवि की नवीन मानवता और संस्कृति की यह कल्पना भावनामूलक, होते हुए भी ग्राह्य है । नव संस्कृति की यह कविता पंत की उपरोक्त कल्पनाओं का प्रतीक कही जा सकती है -

"रूद्ध हृदय के द्वार, खोलो फिर इस बार
युक्त निखिल मानवता हो, जीवन सौन्दर्य प्रसार ।"[2]

'युगवाणी' की कला में बुद्धितत्व की प्रधानता है, उसमें भावना तत्व का अभाव सा है । छायावादी कविता जीवन-यथार्थ से रहित होने के कारण भावना प्रधान थी । युगवाणी में आकर नवीन मानव मूल्यों, नवीन जीवन व्याख्याओं एवं दर्शनों की स्थापना कवि ने की है । समाज में नारी को दासता के बन्धन में जकड़ दिया गया है । कवि उसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करना चाहता है -

---

1. हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा: प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ0-46.
2. युगवाणी : पंत , पृ0- 44.

"मुक्त करो नारी को मानव !
चिर वंदिनी नारी को
युग-युग की बर्बर कारा से
जननि, सखी, प्यारी को ।"[1]

कवि पंत ने स्वयं लिखा है -"युगवाणी में यह बात कई प्रकार से व्यक्त की गई है कि भावी जीवन और मानवता की सौन्दर्य कल्पना स्वयं ही अपना आभूषण है ।"[2]

§3§ ग्राम्या : पंत जी के प्रगतिशील काव्य का अन्तिम चरण 'ग्राम्या' है, 'ग्राम्या' में ग्राम्य जीवन के चित्र हैं । इसमें कवि का उद्देश्य ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति का प्रदर्शन मात्र है ।[3]

'ग्राम्या' में संग्रहीत रचनाओं में विभिन्न प्रकार के ग्रामीण जीवन के चित्र एवं जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियाँ मिलती हैं । 'ग्राम्या' में प्रथम प्रकार की वे रचनाएँ हैं जिसमें ग्रामीण जीवन की परम्परा, रीति-रिवाजों, स्त्री-पुरूष, बालक एवं तरूण आदि सभी के चित्रों को कवि ने प्रस्तुत किया है । इसमें कवि की दृष्टि पूर्णरूपेण यथार्थवादी रही है । 'ग्राम्या' में पंत के काव्य का अपेक्षाकृत प्रौढ़ स्वरूप प्राप्त होता है । प्रेमचन्द्र के अतिरिक्त किसी अन्य कलाकार ने भारतीय ग्राम का इतना मार्मिक चित्रण नहीं किया ।[4]

---

1. युगवाणी : पंत, पृ0 84.
2. ग्राम्या : पंत , भूमिका से उद्धृत
3. हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा:श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त,पृ0।46
4. ग्राम्या : पंत, पृ0 14.

ग्राम संस्कृति के विभिन्न चित्र 'ग्राम्या' में प्रस्तुत किए गए हैं । 'ग्राम्या वधू', कठपुतले, वह बुड्ढा ग्रामनारी, गाँव के लड़के आदि कविताओं में ग्रामीण व्यक्तित्व के सजीव चित्र चित्रित हुए हैं । ग्राम नारी का चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है कि -

"स्वाभाविक नारी जन की लज्जा से वेष्ठित,
नित कर्म निष्ठ अंगों की हष्ठ पुष्ठ सुन्दर
श्रम से है जिसके सुधा काम मर्यादित
वह स्वस्थ ग्राम नारी, नर की जीवन सहचर ।"[1]

'ग्राम्या' में ग्रामीण जीवन और संस्कृति के अतिरिक्त धोबियों, चमारों और कहारों के नृत्य पर लिखी हुई कविताएँ हैं । ये कविताएँ ग्राम के लोकनृत्यों पर दृश्य उपस्थित करती हैं । 'ग्राम्या' में भावात्मकता अधिक है, जिसमें लोक-जीवन के तत्वों को संजोया गया है । कुछ कविताएँ ऐसी है जिनमें राष्ट्रीय भावनाओं को अंकित किया गया है । जैसे - भारत माता, बापू महात्मा जी के प्रति अहिंसा एवं राष्ट्र-गान आदि । कवि राष्ट्र के नव निर्माण का स्वप्न देखता है। उसको धरती से प्रेम है । वह कहता है -

"जन भारत हे
भारत हे
स्वर्ग स्तंभवन गौरव मस्तक
उन्नत हिमवत हे, जन भारत हे, जाग्रत भारत हे ।"[2]

---

1. ग्राम्या : पंत, पृ0 20.
2. वही, पृ0 45.

श्री विनय मोहन शर्मा के शब्दों में, "ग्राम्या में सांस्कृतिक समस्या की ओर कवि ने इशारा किया है । इससे कवि की मानसिक उथल-पुथल का भी आभास मिल जाता है ।"[1]

रामधारी सिंह दिनकर

प्रगतिवादी कवियों में रामधारी सिंह दिनकर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । कहीं वे अतीत भारतीय गौरव का चित्र उपस्थित कर भारतीयों के हृदय में आत्म-गौरव की भावना जागृत करने का प्रयत्न करते हैं, कहीं वे शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते और शोषणकर्ताओं के प्रति रोष व्यक्त करते हैं और कहीं देश की दयनीय स्थिति को बदलने के लिए ध्वंसात्मक क्रान्ति का आवाहन करते दिखाई देते हैं ।

बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक गाँव में कविवर "दिनकर" का जन्म एक किसान परिवार में हुआ था । उन्हें दो वर्ष का ही छोड़कर इनके पिताजी स्वर्गवासी हो गए । प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई, पर 1932 में इन्होंने पटना विश्वविद्यालय से बी०ए०ऑनर्स किया । एक हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक के रूप में कार्यारंभ कर दिनकर जी क्रमशः बिहार सरकार के सब रजिस्ट्रार, युद्ध-प्रचार-विभाग के उपनिदेशक पोस्ट-ग्रेजुएट कालेज मुजफ्फरपुर के हिन्दी-विभागाध्यक्ष, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार जैसे सम्मानित पदों तक बढ़ते रहे । इसके अतिरिक्त राज्यसभा

---

1. पंत की बहिर्मुखी साधना : विनयमोहन शर्मा, पृ0 55

के सदस्य, भारत सरकार की अनेक समितियों के सदस्य तथा कई सद्भावना मण्डलों के सदस्य के रूप में "दिनकर जी" ने देश-विदेश में जाकर राष्ट्र की सेवा की है, और परिणामस्वरूप भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' की राष्ट्रीय उपाधि से सम्मानित किया है । इनकी प्रतिभा बहुमुखी है ; इतिहास, दर्शन, संस्कृति तथा आलोचना में समान रूप से गतिशील हैं । इनको प्रसिद्ध काव्यकृति "उर्वशी" के लिए 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया है ।[1]

'दिनकर' जी भारतीय प्रगतिवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से वे किसी दल विशेष का समर्थन स्वीकार नहीं करते । वे भारतीय राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक और विचारक हैं ।[2]

'दिनकर' जी राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी गायक हैं । विशेष रूप से पराधीनता के दिनों में जो भी दमन और अत्याचार हुए, दिनकर के कवि ने उनकी सहज अनुभूति प्राप्त की और अपनी अग्नि-वाणी द्वारा उसके प्रतिकार का प्रयत्न किया, जिन कवियों में हिन्दी कविता को छायावाद की कुहेलिका से बाहर निकालकर उसे प्रसन्न आलोक के देश में पहुँचाया, उसमें तेज भरा और सामयिक प्रश्नों से उलझना सिखाया, उनमें 'दिनकर' का स्थान बहुत ऊँचा है ।[3]

---

1. साहित्य एक परिचय : डॉ0 त्रिभुवन सिंह, पृ0 317.
2. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास: डॉ0 कृष्णलाल हंस, पृ0-548
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ0 कृष्णलाल हंस, पृ0 551.

'दिनकर' के स्वतन्त्र चेता व्यक्तित्व ने मार्क्सवाद की क्रान्ति, युद्ध, हिंसा आदि को अस्वीकार करते हुए गाँधीवादी विचार-धारा के अन्तर्गत जितनी उग्रता समा सकती थी, उन सबका सहर्ष स्वागत किया। 'दिनकर' का कवि हृदय बड़ा ही संवेदनशील है। 'दिनकर' का दृष्टिकोण विशुद्ध मानवतावादी दृष्टिकोण है।[1]

'दिनकर' इतिहास के अंतरंग विद्यार्थी रहे हैं। 'दिनकर के अचेतन मस्तिष्क पर अपने गाँव की हरी-भरी प्रकृति, लहराते हुए धान के खेत, गराई गंगा, सरल पुरूषों और अल्हड़ किशोरियों के दर्शन की किशोरवय में पड़ी हुई छाप कभी मिटी नहीं।

'दिनकर' जी के काव्य में नारी भावना का स्वस्थ विकास उनकी पत्नी का आदर्श चरित्र ही है। वे अपने को मिटाकर इनको बनाती रहीं।[2]

'दिनकर' जी का व्यक्तित्व आत्म-विश्वास, दृढ़ता, साहित्यकार की अनुभूति प्रवणता, दार्शनिक तत्व-चिन्तन तथा ओज से युक्त है। उनके बाह्य व्यक्तित्व में क्षत्रियों का तेज, ब्राम्हण का अहं परशुराम की गर्जना और कालिदास की कलात्मकता है। उनके इसी व्यक्तित्व के कारण निराला जी उन्हें ईरानी कहा करते थे। 'दिनकर' जी मूलत: भाव प्रवण व्यक्ति है। 'दिनकर' जी के व्यक्तित्व में कोमलता और शौर्य का ऐसा समन्वय है कि वे अर्द्धनारीश्वर लगते हैं।[3]

---

1. आधुनिक काव्य : श्री नारायण अग्निहोत्री, पृ0 44.
2. आधुनिक काव्य संग्रह : श्री नारायण अग्निहोत्री, पृ0 423-424.
3. वही, पृ0 426.

'दिनकर' जी की रचनात्मक शक्ति विरोध और संघर्ष में ही उददीप्त होती है । 'दिनकर' जी के व्यक्तित्व के समान ही उनकी वेशभूषा और रहन-सहन भी विशिष्ट है ।

'दिनकर' जी का महान् कवि विषम परिस्थितियों और संघर्षों से होकर उभरा है । सरकारी नौकरी की विवशता और गुलामी को झेलते हुए भी 'दिनकर' जी ने राष्ट्रीयता का जो उदघोष किया, वह अन्यत्र नहीं मिलेगा । उनकी कविता, उनके व्यक्तित्व और परिस्थितियों का ही विकास है । भारत के राष्ट्रीय कवियों में 'दिनकर' जी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है । 'दिनकर' जी हिन्दी के क्रान्तिदर्शी कवि हैं । उनकी कविता हृदय को झकझोर डालती है । उनके काव्य में वर्तमान भारत की दलित आत्मा जाग्रत हो उठी है। 'दिनकर' जी के काव्य में देशव्यापी राष्ट्रीयता और जागरण का स्वर मुखरित हुआ है । उसमें भारत के विगत युग की सुनहली, किन्तु ममतामयी करूण मूर्ति सजीव हो उठी है । 'दिनकर' जी मुख्यत: जनचेतना के गायक हैं । जन भावनाओं को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करना 'दिनकर' जी के काव्य की प्रमुख विशेषता है ।[1] राष्ट्रीय भावधारा को अपने युग के अनुसार चित्रित करने में गुप्त जी के पश्चात् "दिनकर" जी का ही स्थान है । 'दिनकर' जी के स्वभाव में प्रकृति के प्रति एक अबाध आकर्षण है । उनकी भाषा में ओज और क्रान्ति की ज्वाला है । अतीत के चित्रों को अपनी भावनानुसार सजाने में वर्तमान युग का कोई अन्य कवि

---

1. आधुनिक काव्य संग्रह : सं0 श्री नारायण अग्निहोत्री, पृष्ठ-43।

उनकी समता नहीं कर सकता । उनका स्वर जनजागरण का है ।[1]

हिन्दी के सम्बन्ध में 'दिनकर' जी का दृष्टिकोण उदार था । दिनकर जी पौरूष के कवि ही नहीं, बल्कि स्वयं भी पौरूषवान थे । 'दिनकर' जी महान् कवि के साथ-साथ महान् विचारक भी थे और चिंतन के द्वारा वे किसी भी रचना की अतल गहराई तक पहुँचकर सत्य को खोज निकालने में अपना सानी नहीं रखते थे । कवि के रूप में उनका स्थान हमेशा विशिष्ट रहेगा । उनकी कवि मर्मज्ञ और कल्पनाशील प्रतिभा और जिस तरह के प्रभावी वे कवि थे, उसकी तुलना वर्तमान हिन्दी साहित्य के बहुत कम कवियों से की जा सकती है । नव युग के स्वप्नदर्शी कवियों में "दिनकर" का विशिष्ट स्थान है । छायावाद की अस्पष्ट और कल्पना-प्रधान अभिव्यक्ति के स्थान पर उन्होंने यथार्थता की जीवन-भूमि-कविता को प्रदान की है । उनकी कविता में वेग है, और वे कवि के साथ-साथ उच्चकोटि के लेखक और आलोचक भी हैं । 'दिनकर' जी के काव्य की विशेषता यह है कि इन्होंने कला और वास्त-विकता में तालमेल स्थापित किया ।

'दिनकर' जी की कृतियाँ विदेशों में भी सम्मानित हुईं । कविता लिखने की प्रेरणा 'दिनकर' जी को गाँव की रामलीला, रामायण पाठ और नौटंकियों से मिली । बचपन में उनके दरवाजे पर नित्य ही रामायण का पाठ होता था ।[2]

---

1. आधुनिक काव्य संग्रह : सं0 श्रीनारायण अग्निहोत्री, पृ0 432.
2. वही, पृ0 428.

'दिनकर' जी की कविताओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है । प्रथम भाग में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कविताएँ हैं और दूसरे भाग में विश्व-कल्याण की कामना से युक्त कविताएँ हैं ।[1]

'दिनकर' जी के काव्य में न तो मार्क्सवाद का अंध समर्थन है, और न वह गाँधीवाद को समर्पित हैं ।[2]

दिनकर ने महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा लघु काव्यों का प्रणयन किया है । संक्षेप में इनकी रचनाओं का परिचय निम्नवत् है -

(1) प्रणभंग (सन्-1929) : प्रणभंग में बन्धुत्व भाव प्रेरित मानव-प्रेम की व्यंजना अत्यन्त सशक्त रूप में हुई है । राष्ट्र प्रेम से सम्बन्धित कविताओं में भी बन्धुत्व भाव की ही प्रधानता है । प्रणभंग में प्रेम के विभिन्न प्रकारों की व्यंजना सशक्त रूप में हुई है ।[3]

(2) रेणुका (सन्-1960) : रेणुका की समग्र कविताओं को तीन वर्गों में बाँटकर प्रस्तुत किया गया है । प्रथम वर्ग में देशभक्ति, क्रान्ति भावना, अतीत प्रेम आदि के आवरण में अभिव्यक्त मानव-प्रेम से सम्बन्धित कविताओं का स्थान मिला है । द्वितीय वर्ग में दो कवितायें रहस्य तथा प्रकृतिपरक एवं शेष कवितायें प्रणय भाव से सम्बन्धित हैं । तृतीय वर्ग की नियतिवाद प्रेरित नैराश्यपरक कविताओं में भी बन्धुत्व भाव ही प्रमुख है।[4]

---

1. आधुनिक काव्य संग्रह : सं0 श्रीनारायण अग्निहोत्री, पृ0 432.
2. वही, पृ0 241.
3. दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेम चेतना: डॉ0 मधुबाला, पृ0-60
4. वही, पृ0 71.

§3§ हुंकार : हुंकार के नवीनतम संस्करण में कुल 29 कविताएँ हैं और समग्र कविताएँ प्रेम की सामाजिक संवेदना से सम्बद्ध हैं । इसमें द्वन्द्वमूलक, प्रेमपूरक, मूल बलिदानों को प्रतिष्ठित करने वाली, समसामयिक घटनाओं से प्रेरित राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भावों से सम्बद्ध कविताएँ हैं ।[1]

§4§ रसवन्ती : रसवंती में दिनकर की वैयक्तिक प्रेम संवेदना का मधुर, सात्विक एवं पारम्परिक रूप अत्यन्त कलात्मक ढंग से व्यंजित हुआ है । इसमें श्रृंगार के मधुर और सात्विक स्वरूप की व्यंजना करने वाली कविताएँ हैं । पारम्परिक नारी भावना को प्रश्रय देने वाली, कोमल भावनाओं से सम्बन्धित राग-प्रेरित, सौन्दर्य एवं रहस्य-चेतना की विचार-संपुट अभिव्यक्ति वाली कविताएँ हैं ।[2]

§5§ द्वन्द्वगीत : इसमें राग-विराग का द्वन्द्व है । भोग संयम का द्वन्द्व है, आस्था- अनास्था का द्वन्द्व है । द्वन्द्वगीत में कवि ने आत्मप्रेमपरक अभिव्यक्ति के आवरण में सामाजिक प्रेम की व्यंजना को ही अपनी शक्ति और सीमा के साथ प्रश्रय दिया है ।[3]

§6§ बापू : §मानव के व्यापक हित के अनुसंधाता कवि की द्वन्द्वात्मकअभि-व्यक्ति§ इस काव्य का प्रथम प्रकाशन सन्-1949 में हुआ । उस समय इसमें केवल एक कविता 'बापू' ही संकलित थी । बापू कविता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नोआखाली की यात्रा की है ।[4]

---

1. दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेम चेतना : डॉ० मधुबाला, पृ० 71
2. वही, पृ० 86
3. वही, पृ० 90.
4. " पृ० ९१

(7) सामधेनी : सामधेनी की कविताओं में वैयक्तिक प्रेम की संवेदना है । इसमें राष्ट्रीय बन्धुत्व की व्यंजना करने वाली कविताएँ हैं, सामधेनी के माध्यम से भारत के दलित-पीड़ित बन्धुओं के चित्र ही उभारे गए हैं । इस काव्य में कवि की भावना व्यापक होकर विश्व-मानव के प्रति संवेदनशील हो उठी है ।[1]

(8) इतिहास के आँसू : विश्व-बन्धुत्व की काव्यात्मक अभिव्यक्ति इतिहास के आँसू (तृतीय संस्करण 1957) में संकलित दस कविताओं में मगध महिमा एवं वैशाली के अतिरिक्त शेष आठ कवितायें अन्य काव्य रचनाओं से ली गई है ।[2]

(9) धूप और धुआँ : धूप और धुआँ संग्रह में समस्त रचनाएँ राष्ट्र प्रेम, क्रान्तिकारी निर्माण, बापू जैसे शहीदों के प्रति श्रद्धा आदि से प्रेरित बन्धुत्व चेतना से युक्त है ।[3]

(10) दिल्ली : दिनकर के व्यक्तित्व में आरम्भ से ही वर्तमान बंधुत्ववादी संस्कार यहाँ और अधिक मुखर हो उठा है ।[4]

(11) नीम के पत्ते : राष्ट्रीय बन्धुत्व की आवेगमयी अभिव्यक्ति 'नीम के पत्ते' (तृतीय संस्करण 1963) में राष्ट्रीय संवेदना से प्रेरित बन्धुत्व भाव की पन्द्रह कविताएँ संकलित हैं ।[5]

(12) नीलकुसुम : प्रेम के सामाजिक एवं वैयक्तिक धरातलों की नव माँगे

---

1. दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेम चेतना, पृ० 94.
2. वही, पृ० 103.
3. वही, पृ० 103.
4. वही, पृ० 103.
5. वही, पृ० 112.

भंगिमायुक्त व्याख्या नीलकुसुम (संस्करण 1960) में सन्-46 से लेकर सन्-54 तक की अवधि के बीच लिखी हुई कविताएँ संकलित हैं। नीलकुसुम की कविताओं में प्रेम की वैयक्तिक एवं सामाजिक संवेदना से सम्बद्ध कविताएँ अपना विशिष्ट आकर्षण रखती हैं।[1]

(13) नए सुभाषित : इसमें कवि ने किसी सर्वथा नवीन भाव-भूमि को विस्तार से रेखांकित करने का प्रयास प्राय: नहीं किया है। इस संग्रह की सर्वोपरि विशेषता है- यहाँ निबद्ध विचारों की स्वाभाविकता एवं आयासहीनता। आयासहीन होने के कारण ही यहाँ व्यक्त विचारों का महत्व अधिक है।[2]

(14) परशुराम की प्रतीक्षा : राष्ट्रीय बांधव भाव का ओजमय उद्बोध परशुराम की प्रतीक्षा (षष्ठ संस्करण 1972) में अठारह कविताएँ संकलित हैं। इस काव्य में भी कवि का बन्धुत्ववादी संस्कार ही प्रबल है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' कविता अपनी मूल संवेदना राष्ट्रीय है, यहाँ भी कवि बान्धव भाव के राष्ट्रीय क्षितिज को अतिक्रमण कर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज की ओर उन्मुख है। दिनकर की बन्धुत्ववादी चेतना ने परशुराम की प्रतीक्षा में अपनी ऊर्ध्वगामी गति बनाए रखी है।[3]

(15) कोयला और कवित्व : वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रेम चेतना की संतुलित अभिव्यक्ति कोयला और कवित्व संस्करण की लगभग एक दर्जन कविताएँ अवसाद एवं नैराश्य की भावना से ओतप्रोत हैं। कोयला और

---

1. दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेम चेतना, पृ0 112.
2. वही, पृ0 112.
3. वही, पृ0 118.

कवित्व में, जिसके आधार पर प्रस्तुत संस्करण का नामकरण हुआ है, कवि ने मानव को यह परामर्श दिया है कि वह अपने कर्म को धर्म की उच्च भावना से युक्त करें ।[1]

(16) मृत्तितिलक : मानव प्रेम की काव्यात्मक अभिव्यक्ति-मृत्तितिलक की कुल सत्ताइस कविताओं में निहित प्रेम संवेदना को मुख्य दो वर्गों में बाँटा जा सकता है - प्रेम की वैयक्तिक संवेदना पर आधारित ईश्वर प्रेमपरक कविताएँ एवं प्रेम की सामाजिक संवेदना से युक्त बन्धुत्व भावपरक कविताएँ एवं प्रेम की सामाजिक संवेदना से युक्त बन्धुत्व भावपरक कविताएँ भावना की व्यापकता की दृष्टि से इसमें विश्वबंधुत्व की भावना को प्रश्रय देने वाली अगली कड़ी के रूप में है ।[2]

(17) हारे को हरिनाम : प्रेम की वैयक्तिक संवेदना के उन्नयन का काव्य हारे को हरिनाम में प्रेम की वैयक्तिक संवेदना से युक्त कविताओं की बहुलता है । इसमें प्रणय संग्रह की संवेदनाओं पर आधारित, आत्मप्रेम की व्यापक संवेदना से युक्त, ईश्वर प्रेम की भावना से सम्बन्धित, इसमें बन्धुत्व की व्यापक संवेदना से युक्त मानव - प्रेमपरक कविताएँ हैं । हारे को हरिनाम की कविताओं को नए काव्यांदोलन से प्रभावित कवि के प्रयास की चरम उपलब्धि मानी जा सकती है ।[3]

(18) सीपी और शंख : इसमें यौनाश्रित प्रेम की विविध मनः स्थितियों को व्यंजित करने वाली कविताएँ हैं । इसमें ईश्वर-प्रेम की संवेदना से

---

1. दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेम चेतना : डॉ० मधुबाला, पृ० 124.
2. वही, पृ० 126.
3. वही, पृ० 136.

युक्त, और आत्म-प्रेम की संवेदना से प्रेरित एवं मानवीय हित की कामना से युक्त मानव प्रेमपरक कविताएँ हैं ।[1]

(19) आत्मा की आँखें : इसमें काम की विभिन्न मनःस्थितियों पर प्रकाश डालने वाली, आत्मप्रेम की अनुभूति से युक्त एवं बन्धुत्व भाव से प्रेरित कविताएँ हैं ।[2]

(20) उर्वशी : उर्वशी में दाम्पत्य प्रेम, दाम्पत्येतर प्रेम, मातृ-पितृ प्रेम एवं भ्रातृ प्रेम दिखाई देता है । उर्वशी दिनकर को अपनी कृतियों में सर्वाधिक प्रिय थी । उन्होंने स्वयं स्वीकारा है कि : "इस काव्य की रचना में मुझे जितनी कठिनाई हुई है, उतनी किसी अन्य काव्य की रचना में नहीं हुई थी ।"[3]

(21) कुरुक्षेत्र : कुरुक्षेत्र का मूल्यांकन अधिकांश विचारकों ने युद्धकाव्यों के रूप में किया है । इसमें युद्धजन्य हिंसा से उत्पन्न मानव प्रेम की चर्चा की गई है । लगभग सभी आलोचकों ने इस तथ्य को स्वीकारा है कि कुरुक्षेत्र में दिनकर ने युद्ध एवं सामाजिक अन्याय के शिकार हुए मानवता के पक्ष को सशक्ततापूर्वक व्यक्त किया है । कुरुक्षेत्र के कथ्य एवं उसकी शैली दोनों के मूल में दिनकर का राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्ववादी संस्कार ही प्रखर रहा है ।[4]

(22) रश्मिरथी : प्रेम की वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों ही संवेदनाओं की प्रभावशाली व्यंजना करने वाली एक सशक्त कृति रश्मिरथी है । इस

---

1. दिनकर की डायरी : 2जनवरी, 1961.
2. वही, 2 जनवरी, 1961.
3. वही,
4. वही,

काव्य में मुख्य रूप से युग-व्यथा की करूण गाथा निबद्ध है तथा इसी करूण गाथा के आवरण में कवि की मातृ-पितृ-प्रेम, ईश्वर प्रेम, जननि-जनक प्रेम, बहुलता से देखने को मिलता है ।[1]

केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल का जन्म बाँदा जिले के कमासिन ग्राम में चैत्र शुक्ल द्वितीया संवत् 1968 को हुआ था । ग्रामीण जीवन से आपका सम्पर्क जन्मकाल से ही रहा है । आपकी शिक्षा-दीक्षा पहले ग्राम में और बाद को रायबरेली, कटनी, इलाहाबाद और जबलपुर में हुई है ।

केदारनाथ अग्रवाल आरम्भ में निराला और उनके काव्य से प्रभावित हुए, बाद को रामविलास शर्मा और अन्य प्रगतिशील लेखकों के सम्पर्क में आए । उनकी काव्य रचनाओं में आरम्भ से ही एक विशेष दृष्टि का, जिसे मार्क्सवादी दृष्टि कह सकते हैं, परिचय मिलता है । इस दृष्टि का उनकी काव्य रचना पर यह प्रभाव पड़ा कि उन्होंने वर्गों में विभाजित आज के समाज को ही काव्य का विषय बनाया है । जब कभी वे मानवीय चित्रण की सीमा से बाहर भी जाते हैं, तब भी किसानों की दुरवस्था उनकी आँखों के सामने नाचती रहती है । जिसके कारण उनके प्राकृतिक वर्णन भी बहुधा सिद्धान्त-परक हो जाते हैं । वर्गवाद की सीमाओं से बाहर निकलने का प्रयत्न केदारनाथ जी ने कम ही किया है।

---

1. दिनकर की डायरी : 2 जनवरी, 1961.

कदाचित् इसीलिए उनके काव्य का विस्तार कम है और सीमायें बंधी है। उन्होंने ग्राम - गीतों की शैली पर लोक छन्दों का प्रयोग करते हुए प्रगति भी की है, परन्तु गीत लेखने के लिए जिस प्रकार की भावात्मक चेतना की आवश्यकता होती है, उसका यथेष्ट विकास इन गीतों में नहीं हो पाया है ।[1]

धरती की सोंधी गन्ध तथा गाँवों का स्वस्थ और सुन्दर चित्र केदार की कविता की अपनी विशेषता है । गाँव की प्रकृति की सरल-सादी सुषमा, लोक जीवन की यथार्थ भूमिका, लोकांचलों की चहल-पहल, मस्ती और जुझारूपन की गूंज केदार की कविताओं की जान है । इनकी रचनाओं में कवि की अल्हड़ता, मस्ती, जोश और उमंग सब बोल पड़ते हैं ।[2]

प्रगतिवादी कविता राष्ट्रीय जीवन की वास्तविकता के सम्पर्क में कम रही है और वर्गवाद का नारा ही देती रही है । अब समय आया है, जबकि प्रगतिवादी कवि वाद रहित होकर राष्ट्रीय जीवन की वास्तविकताओं के अधिक समीप पहुँच रहे हैं ।[3]

कविकेदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्य भवन के एक प्रमुख स्तम्भ हैं और उन्होंने हिन्दी काव्यधारा को जनसाधारण का प्रति-बिंब और नवजीवन निर्माण का माध्यम माना है ।[4] वास्तव में वह

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 255.
2. प्रगतिशील कविता : कल और आज ; डॉ0रतनकुमारपाण्डेय,पृ0-21.
3. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 226.
4. आज के कवि : ललित मोहन अवस्थी, पृ0 3.

वह सच्चे अर्थों में जनकवि हैं । उनका काव्य जनवादी भूमिका पर अवतरित होने पर भी साहित्यिक सौन्दर्य से वंचित नहीं हुआ है ।[1] कवि ने स्वयं 'लोक और आलोक' काव्य संग्रह की भूमिका में लिखा है- "कविता न मैने पाई न चुराई । इसे मैने जीवन जोतकर किसान की तरह बोया और काटा है । यह मेरी अपनी है और मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है किन्तु मैने इसे कपाट और कोठे की बंदिनी बनाकर अपने अहं की चेरी के रूप में नहीं रखा । मैंने कविता को सरिता के रूप में जन-जन तक पहुँचाया है ।"[2]

काव्य और जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । कहा जा सकता है कि कवि की कृतियाँ कवि की विभिन्न भावभूमियों, आदर्शों और विचारों को लेकर चली है । नींद के बादल, युग की गंगा, फूल नहीं रंग बोलते हैं और अन्य कविताओं के माध्यम से कवि के काव्य विकास के आयामों को परखा जा सकता है, कवि के जीवन मूल्यों और मान्यताओं में जिस प्रकार परिवर्तन होता आया है, उसी प्रकार उसकी कृतियाँ भी उनके परिवर्तन की स्वतः घोषणा करते हुए चली हैं ।[3] उनकी मुख्य रचनाओं का परिचय इस प्रकार है -

<u>§1§ युग की गंगा :</u> युग की गंगा कवि का प्रथम काव्य संग्रह है, जिसमें कवि ने नवीन चेतना को अपनाया है । युग की गंगा से कवि के प्रगति-

---

1. नया हिन्दी काव्य : डॉ0शिवकुमार मिश्र, पृ0 184.
2. लोक और आलोक : भूमिका से, केदारनाथ अग्रवाल, पृ0-4.
3. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 226.

वादी स्वरों का आविर्भाव तथा उसमें पुष्टता भी प्रतीत होती है । कवि में यह नवीनता भाव और विषय दोनों ही क्षेत्रों में प्रस्फुटित हुई है । इसमें युगीन प्रश्नों को कवि ने काव्य का विषय बनाया है । कवि ने स्वयं भूमिका में लिखा है, "इसमें ईश्वर का मखौल है, इसमें समाज की अर्थनीति के विरूद्ध प्रहार है, इसमें कटु जीवन की व्यंग्य है, साथ ही साथ प्रकृति का किसानी चित्रण भी है, और देश के जागरण का सन्देश है, पलायनवादी परम्परा की न तो ये सूचनायें हैं, और न हो सकती हैं । जिन्दगी की भीड़ की इन कविताओं में जनता के मोर्चे की प्रतिध्वनि है।[1]

'युग की गंगा' में कवि का व्यक्तित्व पूर्णरूप से विकसित है क्योंकि उसमें यहाँ पर एक नवीन शैली को अपनाया है, जो कि उसकी पूर्व की छायावादी शैली से भिन्न है । शैलीगत प्रौढ़ता कवि के नवीन विषयवस्तु को अपनाने तथा उसमें यथार्थ की चेतना की संयोजना के कारण आई है जो कि कविता को स्पष्ट करती है ।[2]

इस संग्रह की कुछ कविताएँ प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित हैं । 'वसन्ती हवा', सावन का दृश्य, आदि प्रमुख हैं । इन कविताओं में कवि ने प्रकृति के चित्रों को जनजीवन के पार्श्व में चित्रित किया है । प्रकृति के चित्रण में भी कवि जन-जीवन को भूला नहीं है ।

(2) <u>नींद के बादल :</u> 'नींद के बादल' कवि का द्वितीय काव्य संग्रह है, विश्वंभरनाथ मानव ने इसके सम्बन्ध में लिखा है,-"इस संग्रह में प्रणय

---

1. युग की गंगा : भूमिका से, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० 8
2. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, रामेश्वर वर्मा, पृ०-1.

सम्बन्धी रचनाओं की अधिकता है, काव्य की प्रारंभिक प्रेरणा, उन्हें प्रेम से मिली है। प्रेरणा के अतिरिक्त प्रेम उनके काव्य की शोभा भी रहा है। प्रेम के कारण उनके काव्य में नई दीप्ति आई है।[1] इन प्रेम सम्बन्धी रचनाओं में भाव तथा व्यंजना है। कवि ने इस काव्य संग्रह के विषय में स्वयं लिखा है कि उसकी यह कविताएँ वैयक्तिकता से पूर्ण हैं और वह कवि के प्रथम काव्य विकास को स्पष्ट सूचित करती है। कवि की यह कविताएँ उसके स्वस्थ और निश्छल हृदय की प्रतीक हैं। कवि ने अपने भावों, विचारों और कल्पनाओं को काव्य में पूर्ण सत्यता के साथ प्रकट किया है।

कवि के इस संग्रह की प्रमुख विशेषता है - भावों की सरल और सरस अभिव्यक्ति। 'नींद के बादल' काव्य संग्रह में कुछ प्रकृति सम्बन्धी रचनायें भी हैं, जिनमें कवि ने अपने गतिशील व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

(3) फूल नहीं रंग बोलते हैं : इस संग्रह में 236 कविताएँ संकलित हैं। संकलन को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त किया गया है, 'वल्लरी तुम', 'धूप तुम', 'हवा तुम', 'अस्थि के अंकुर', 'रंग बोलते हैं और कुछ लिखी-अधलिखी कविताएँ। इसे कवि का प्रतिनिधि काव्य संकलन कहा जा सकता है। इस कृति के लिए कवि को "सोवियत लैण्ड नेहरू" पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

इस संकलन में उसकी मार्क्सवादी मान्यताएँ काव्य के नियमों से अनुशासित होकर व्यक्त हुई है। कवि की अनुभूति में सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति में परिष्कार दिखाई देता है। संख्या की दृष्टि से

केदार जी की परवर्ती रचनाओं में प्रकृति सम्बन्धी छोटी-छोटी कविताएँ ही अधिक है, ऐसा लगता है कि कवि के मानस पर जो छायावादी संस्कार काव्य-जीवन के प्रारंभिक काल में पड़ गए थे, वे कवि के अवचेतन से समय-समय पर झाँक पड़ते हैं । "फूल नहीं रंग बोलते हैं", में जीवन और जगत् के प्रति कवि का मानवीय राग व्यक्त हुआ है ।

शिल्प के सम्बन्ध में कवि पहले की अपेक्षा अधिक जागरूक है, और यह जागरूकता विशेष रूप से "लघु कविताओं के अभिनव प्रयोगों में देखी जा सकती है । कवि ने अपने सूक्ष्म अनुभवों को प्राय: दो-दो, चार-चार पंक्तियों में ढालकर ही कविताएँ पूरी कर दी हैं । अनुभवों की सूक्ष्मता को देखते हुए इनमें विस्तार कर पाना संभव भी नहीं था।[1]

केदार आज भी काव्य-लेखन में सक्रिय हैं । लोक और आलोक, आग का आईना, गुल मेंहदी, पंख और पतवार, हे मेरी तुम, मार प्यार की थापें, कहें केदार खरी-खरी, अपूर्वा, जुमन जल तुम, बोले बोल अबोल, तथा जो शिलाएँ तोड़ते हैं - उनके महत्वपूर्ण काव्य संकलन हैं ।

शिवमंगल सिंह सुमन

शिवमंगल सिंह सुमन मूलत: उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के निवासी हैं, परन्तु अधिकांशत: उन्होंने रीवां, ग्वालियर आदि

---

1. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ0कृष्णलाल हंस, पृ0 186.

स्थानों में रहकर शिक्षा प्राप्त की है । काशी विश्वविद्यालय से उन्होंने एम0ए0 और डी0लिट0 की उपाधि प्राप्त की है । उसके पश्चात् उन्होंने मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग में अनेक वर्षों तक कार्य किया है । कुछ वर्षों के लिए वे केन्द्रीय शासन द्वारा सांस्कृतिक सदस्य के रूप में नेपाल भेजे गए। वहाँ का कार्यकाल समाप्त होने पर वे पुन: मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग में आ गये थे और कुछ समय पूर्व तक उज्जैन के माधव कालेज के प्रिंसिपल रहे हैं।

शिवमंगल सिंह सुमन बड़े ही सहृदय, विनीत औरमिलनसार व्यक्ति हैं,जिन लोगों से उनका सम्पर्क होता है, वे उनके स्वभाव को भुला नहीं पाते । आकृति में वे लम्बे कद के और सुविन्यास वेशभूषा के व्यक्ति हैं । उनकी वाणी में ओजस्विता के साथ माधुर्य का भी सन्निवेश है । इसी प्रकार उनकी कविताएँ भी इन दोनों गुणों से सुसज्जित हैं ।

सुमन जी अच्छे वक्ता और कवि सम्मेलनों के सफल गायक हैं । उन्होंने निराला शैली के युक्त छंद भी लिखे हैं, जिसका सस्वर पाठ करने में वे निराला के अनुगामी हैं । उनके व्याख्यानों और भाषणों में साहित्यिक गम्भीरता चाहे अधिक न हो, पर स्पष्टता, सरलता और प्रभावशीलता अधिक मात्रा में रहती है ।

सुमन जी की काव्य रचनाओं में दो तीन प्रवृत्तियाँ प्रधानत: देखी जा सकती हैं । उनकी आरम्भिक कृतियों में प्रेम के अतृप्तिमूलक भाव मिलते हैं । इन रचनाओं में वे वैयक्तिक भावावेश को प्रकट

करते रहे हैं । समयांतर में उनका आवेश कम हुआ है और वे प्रेम की स्मृति को संजोकर अधिक संयत हो गए हैं । उनका परवर्ती प्रेम-काव्य अनुभूति प्रधान है ।[1]

सुमन जी की दूसरी प्रवृत्ति वैयक्तिक प्रेमभावना को समाजोन्मुखी बनाने की है । यहीं से उनके काव्य में उस प्रगतिशील भावना का संचार हुआ, जो आगे चलकर उनके विद्रोही काव्य में परिणत हुआ है । यद्यपि उनकी कविता में छायावादी शैली का प्रवाह बराबर व्याप्त रहा है, परन्तु विषय सामाजिक संघर्षों से संचित हुए हैं ।

अपने ग्रामीण सम्पर्कों के कारण 'सुमन' जी ने ग्राम्य दृश्यों को अंकित करने में पर्याप्त रुचि दिखाई है । विशेषकर ग्रामीण भूमिका पर श्रृंगारिक रचनायें करने में वे सिद्धहस्त हैं । लोकजीवन की यह व्यापकता उनके काव्य को वैशिष्ट्य देती रही है ।

विशुद्ध प्रगीत रचनाओं के साथ-साथ 'सुमन' जी ने वीरगीतों की भी सृष्टि की है और दोनों ही क्षेत्रों में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है । यद्यपि सुमन की कविताओं में वह निःसंगता नहीं है, जो निराला के काव्य में उपलब्ध हैं ; वस्तु चित्रण में भी वे निराला के स्वर और उनकी सफलता को नहीं प्राप्त करते हैं, परन्तु उनकी शैली और व्यक्तित्व पर निराला की अमिट छाप है । यदि निराला का सम्पर्क उन्हें न मिलता, तो वैयक्तिक कुंठाओं और अतृप्तियों से उठकर वे प्रगतिवादी धारा के साथ इतनी दूर तक न जा सकते है ।

---

1. प्रगतिवादी काव्य : श्री उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 190.

प्रगतिवादी कवियों में सुमन जी सहज काव्य के प्रणेता के रूप में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं । अनेक प्रगतिवादी कवि तो वाद के स्तर से अलग करके देखने पर कवि ही नहीं ठहरते, परन्तु सुमन जी का काव्य वादों के परिपार्श्व से अलग होकर भी अपनी सत्ता बनाये रखता है । इस दृष्टि से सुमन जी का प्रगतिवादी कवियों में स्वतन्त्र स्थान है ।[1] उनकी रचनाओं का परिचय इस प्रकार है -

(1) हिल्लोल : कवि का प्रथम काव्य संग्रह 'हिल्लोल' है जिसमें प्रणय सम्बन्धी अनुभूतियाँ प्रकट हुई हैं । अनुभूतियों में कहीं तो विरह का प्रगाढ़ योग है, जो कवि की भग्न मन: स्थिति और निराशावादी दृष्टि का परिचायक है, तथा कहीं संयोग के मिलन चित्र भी प्रस्तुत किए गए हैं । 'आज अलि उनको बधाई', 'मिलन' कविताएँ ऐसी ही हैं । इस संग्रह की 'जागरण' और 'संघर्ष-प्रणय' शीर्षक अन्तिम कविताओं में कवि ने उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति के भाव भी व्यक्त किए हैं और इस प्रकार प्रगतिशील जीवन-दृष्टि अपनाते हुए नई भूमिका में प्रवेश करने का यत्न किया है ।[1]

(2) जीवन के गान : कवि के द्वितीय काव्य संग्रह 'जीवन के गान' का प्रकाशन सन्-1940 में हुआ था । यहाँ पर आकर कवि काल्पनिक व्योम की भावनाओं और प्रणय सम्बन्धी अभिव्यक्तियों को गौण स्थान देता हुआ जीवन और जगत् की वास्तविकताओं में प्रवेश करता है । सामाजिक विकृतियों और जीवन के आर्थिक वैषम्यों को अभिव्यक्ति प्रदान कर यहाँ उसने एक गतिशील समाज के नवनिर्माण के स्वप्नों को साकार करने का

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 191-192.

प्रयास किया है । कवि का यह प्रयास अभिनव है । कवि ने आमुख में लिखा है-"जीवन के गान में" मैं जीवन संघर्ष में दलित वर्ग की विजय कामना कर डर से बैठा स्वागत की तैयारियाँ करने वाला ही नहीं रहा हूँ । जीवन के गान में मुझे इतनी चेतना और मिली की, मैं भी इस संघर्ष का एक अंग हूँ और उसमें सक्रिय भाग लेने के लिए, उसका अभिन्न अंग बनने के लिए मै सजग हो उठा हूँ ।[1] यहाँ कवि के स्वरों में एक प्रकार की दृढ़ता द्रष्टव्य है ।

इस संग्रह में कवि की प्रणय सम्बन्धी भावनायें भी यत्रतत्र मिल जाती हैं, लेकिन वे गौण रूप से चित्रित हुई हैं । प्रधानत: नव जीवन के स्वप्नों और उनको साकार रूप में प्रस्तुत करने वाले भावों की है, जो कि कवि की इन पंक्तियों में देखे जा सकते हैं -

"इस हरी भरी जगती से जो,
ले चिर अतृप्ति की भूख गए,
कारा थी वाली दीवारों में, जिनके आँसू सूख गए,
मेरी मस्तानी तानों में उनका अभिनन्दन भर दो
मेरे स्वर में जीवन भर दो ।"[2]

(3) प्रलय सृजन : 'प्रलय सृजन' कवि का तृतीय काव्य संग्रह है । यहाँ पर कवि के विचारों में प्रौढ़ता और सन्तुलन दिखाई पड़ता है ।[3] इन कविताओं में कवि ने संसार की अंतर्वेदनाओं और दुःखों को ही नहीं व्यक्त

---

1. जीवन के गान : भूमिका से - सुमन, पृ0 12.
2. वही, (मेरे जीवन में स्वर भर दो), पृ0 76.
3. नया हिन्दी काव्य : डॉ0शिवकुमार मिश्र, पृ0 194.

किया है, अपितु उसको समूल रूप से समाप्त करने का प्रयत्न किया है।[1] 'प्रलय-सृजन' में निश्चित रूप से वह प्राचीन जर्जर पूँजीवादी समाज को नष्ट करके नव-निर्माण के लिए आकांक्षित है ।[2] कवि के इस प्रकार भाव निम्नलिखित पंक्तियों में देखे जा सकते हैं -

"बिक रहा पूत नारीत्व जहाँ, चाँदी के थोथे टुकड़ों में,
कर्तव्य पालना धनिक वर्ग, मदिरा के जूठे टुकड़ों में ।"[3]

इस संग्रह में कवि की कुछ कविताएँ व्यक्ति विशेष पर लिखी गई हैं और कुछ में कवि ने रूस की प्रशस्ति के गान गाए हैं ।[4] कवि की कविताओं का एक अन्य पक्ष प्रेम की अभिव्यक्ति से भी है । प्रलय सृजन की अपनी गीतों की गायिका से, मैं चिर व्याकुल मैं चिर चंचल, सन्तोष न क्या तुमको होगा आदि कविताएँ इसी भावधारा को लेकर चली हैं ।

(4) <u>विश्वास बढ़ता ही गया :</u> कवि के प्रगतिवादी काव्य विकास का यह एक अन्य आयाम है, जिसमें समाजवादी एवं पूँजीवादी शक्तियों की कटु आलोचना की गई है और उनका विनाश कर नवीन समाज और नवीन संस्कृति की स्थापना का आग्रह किया गया है । कवि के भावों और विचारों में निराशा और दुर्बलता को लेशमात्र भी प्रश्रय नहीं मिल सका है, वरन् यहाँ दृढ़ता और विश्वास के स्वर ही अपनी समग्रता में

---

1. प्रलय सृजन : प्राक्कथन : अंश से राहुल सांकृत्यायन,
2. नई कविता : विश्वंभरनाथ मानव, पृ0 47.
3. प्रलय सृजन : सेघरवार : पृ0 8.
4. प्रलय सृजन की अन्त की कविता में देखिए.

मुखरित हुए हैं । कवि जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रखता है और वास्तविक अर्थों में सच्चे राष्ट्र के उन्नायक के रूप में अवतरित हुआ है । जनशक्ति के प्रसार के लिए वह संसार की साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी शक्तियों से संघर्ष करने के लिए पूर्ण इच्छुक है और इस सम्बन्ध में उसे पूर्ण विश्वास भी है । इस संग्रह की समस्त कवितायें उपर्युक्त भाव को ही व्यक्त करती हैं । इस संग्रह की प्रथम कविता में कवि ने लिखा है-

> "बिलखते शिशु की व्यथा पर दृष्टि तक जिनने न फेंकी,
> यदि क्षमा कर दूँ उन्हें धिक्कार माँ की कोख मेरी,
> चाहता हूँ ध्वंस कर देना विषमता की कहानी,
> तो सुलभ सबको जगत में वस्त्र,भोजन,अन्न, पानी ।"[1]

संग्रह की अन्य कविताओं में से 'मै मनुष्य के भविष्य से नहीं निराश', 'छोटे-छोटे आघातों से हार नहीं सकता मेरा मन', 'विश्वास बढ़ता ही गया' विशेष महत्वपूर्ण हैं जिनमें कवि को स्वयं की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है और इसी विश्वास के सहारे कवि संघर्षों से सामना करने के लिए पूर्ण प्रस्तुत है ।

<u>(5) पर आँखें नहीं भरी</u> : यह कवि का अन्तिम प्रकाशित काव्य है । यह रचना कवि के नए मोड़ को प्रकाशित करती हैं ।[2] कवि ने पुनः अपनी इन कविताओं में प्रणय सम्बन्धी भाव चित्रित किए हैं, परन्तु उस निराशा का योग वहाँ नहीं है जिसका संबंध उसके पूर्ववर्ती प्रणय गीतों से था । इस प्रकार के प्रणय गीतों में मै तुम्हें पहचानता हूँ, पर आँखें

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया : सुमन, पृ0-1.
2. नया हिन्दी काव्य: डॉ0 शिवकुमार मिश्र, पृ0 195.

नहीं भरी और 'और कई बार', तुम्हारी स्नेह की दो बूँदें आदि महत्त्वपूर्ण हैं। कवि ने प्रस्तुत संग्रह में प्रकृति सम्बन्धी कतिपय सुन्दर कविताएँ भी लिखी हैं। इस संग्रह का उत्तरार्ध गाँधी जी से सम्बन्धित कविताओं द्वारा निर्मित हुआ है, जो प्रमुखतः उनकी मृत्यु से विक्षुब्ध कवि के गाँधी जी के प्रति आस्था की सूचक हैं। गाँधी जी की महानता का स्मरण करता हुए एक स्थान पर कवि लिखता है -

"हे ज्योतिवाह
हो गए अस्त, युग का विकाल
किस महायज्ञ का रक्तदान
आक्षितिज महाम्बुधि हुआ त्रस्त।"[1]

कवि के काव्य विकास के यही प्रमुख आयाम हैं, जिसमें आरम्भ से ही कवि का 'प्रगतिशील जीवन दृष्टिकोण' प्रमुख रहा है। कवि के काव्य की मूल प्रेरक शक्ति प्रणय है, जो वैयक्तिक भूमिका से क्रमशः सामाजिक भूमिका पर परवर्ती कृतियों में अपना परिचय दे सका है।

अपनी काव्य कृतियों के माध्यम से 'सुमन' प्रमुखतः एक जनवादी कवि के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। जनमन की आशाओं - आकांक्षाओं तथा युगीन आस्था और विश्वास का स्वर उच्चरित करने के कारण उनके काव्य का प्रगतिवादी कविता में विशिष्ट स्थान है। 'प्रगतिवाद' को काव्य की सहज भूमि प्रदान करने वालों में इनका विशिष्ट स्थान है। इनके कंठ में भले ही संगीत न हो, किन्तु उनके कवि व्यक्तित्व में एक सहज भावुक हृदय है। इनकी रचनाओं को

---

1. पर आँखें नहीं भरी : तुम कहाँ शान्ति के सार्थवाह : शीर्षक कविता से, पृ० 111.

देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे काव्य साधना के क्षेत्र में निरन्तर गतिशील रहे हैं । प्रकृति से लेकर आर्त मानव तक को 'सुमन' जी ने अपने काव्य की परिधि में समेटा है ।

रामेश्वर शुक्ल'अंचल'-'अंचल' जी की गणना छायावाद युग के बाद प्रकाश में आने वाले प्रमुख कवियों में होती है । हिन्दी के नवोदित कवियों में वे श्रेष्ठ हैं । इनका जन्म सन्-1915ई0 (सं0 1972) में उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जनपद के किशनपुर नामक गाँव में हुआ था । आपने लखनऊ और नागरपुर विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की थी । अपने समस्त कार्य-काल में म0प्र0 के शिक्षा विभाग के अनेक उच्च पदों पर आसीन रहे । जबलपुर और रायपुर विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभागाध्यक्ष, कला संकाय, के0डीन और महाविद्यालयीय शिक्षा के संयुक्त संचालक रहे । कुछ वर्ष पूर्व ही उन्होंने शासकीय सेवा से अवकाश ग्रहण किया है । गद्य और पद्य लेखन में अंचल जी की समान गति है । वे अच्छे उपन्यासकार भी हैं । अंचल जी ने सहज मानवीय भावों की अभिव्यक्ति के साथ अपना कवि जीवन आरम्भ किया था, पर समयानुसार जीवन की यथार्थता की ओर उनका कवि खिंचता आया । उनका भावावेग बड़ा ही तीव्र और मांसल है । नारी का सहज मांसल सौन्दर्य कवि की भावनाओं को बराबर कुरेदता रहा है और वह सदैव उसके प्रति निष्ठावान बना रहा है । सामाजिक जीवन के प्रति मंगलमयीकवि की दृष्टि "मार्क्सवादी" है । अंचल की काव्य चेतना का स्वर सर्वहारा वर्ग के प्रति सदैव करुणापूर्ण रहा है ।

शुक्ल जी ने वर्षों 'माधुरी' और 'सुधा' का सम्पादन किया है । उसके पूर्व उन्होंने मध्यप्रान्त में कई जन- पत्रिकाओं का

सम्पादन किया था ।[1] हिन्दी के मूर्धन्य कवि, लेखकों में परिगणित इस रससिद्ध कवि ने हिन्दी कविता को नया युग, नई दिशा और क्रान्तिकारी मोड़ प्रदान किया है । वे छायावादोत्तर युग के अग्रणी कवि हैं । इन्होंने कविता को जीवन के यथार्थ पर प्रतिष्ठित कर,उसे प्रेरणा और प्रगति के धरातल पर उतारा है । हिन्दी के सर्वाधिक चर्चित कवि के रूप में 'अंचल' जी पिछले पचास वर्षों से देशव्यापी ख्याति के अधिकारी माने जाते हैं । हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'अंचल' का सशक्त व्यक्तित्व अपना कीर्तिमान स्थापित कर चुका है । लोकप्रियता और साहित्यिक गौरव दोनों समान रूप से उन्हें प्राप्त हुए हैं । सृजन की विविधता और अविरलता उनमें अद्भुत है और आजकल वे प्रबन्ध काव्यों की रचना में रत हैं ।[2]

अंचल जी के काव्य का मूल स्वर स्थूल वासनामय प्रेम की अभिव्यक्ति है । कवि ने स्वीकारा है -"मैंने अपनी कविता में जीवन के उस सर्वस्व समर्पणशील मूल स्वर को उतारने की चेष्टा की है, जो भक्ति और प्रेम का सौदा नहीं करता, जिसके भीतर अर्चना के मूल आधार बदलते नहीं और जिसका सूत्र जीवन के उस पार तक चलता है"।[3]

'अंचल' जी के अब तक आठ काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं - मधूलिका, अपराजिता, किरण बेला, करील, लाल चूनर,वर्षान्त

---

1. काव्य संग्रह : द्वितीय भाग,अंचल, पृ0 279.
2. त्यागपथी : अंचल, पृ0 19.
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास:डॉ0हरिश्चन्द्र वर्मा,डॉ0रामनिवासगुप्त पृ0 414.

के बादल, प्रत्यूष की मटकी किरण, मायावरी ।

अंचल जी की कविता के दो प्रमुख रूप हैं, एक ओर प्रेमानुभूति का अत्यंत उज्जवल और देदीप्यमान रूप उनकी कविता में मिलता है ।[1] प्राणों की सारी कसक, सारी वेदना उनके गीतों में पुंजीभूत मिलती है । उनकी भाषा में बड़ा वेग है, भावनाओं में बड़ी हलचल । छायावाद की जटिल अस्पष्टता और कोरी काल्पनिकता के प्रति आपने विद्रोह किया है और कविता को ठोस पार्थिव जीवन भूमि पर स्थापित किया है । दूसरी ओर आपकी वे कवितायें हैं, जो प्रगतिवादी हैं और जिनके भीतर एक नूतन सामाजिक दृष्टि और जीवनदर्शन पाया जाता है । अंचल इस प्रकार की कविताओं में उग्र यथार्थवादी हैं । इस प्रकार स्वच्छंदतावाद, यथार्थवाद और राष्ट्रीय ओज का सुखद सम्मिश्रण 'अंचल' की कविता में है ।[2]

'अंचल' जी की प्रगतिवादी रचनाओं में शोषित और जनता के दु:खदर्द की अभिव्यंजना बड़े सबल स्वरों में हुई है । उन्होंने सामाजिक विषमताओं के प्रति भी रोष प्रकट किया है । उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

(1) किरण बेला (41) करील 42: 'किरनबेला' तथा करील' में सामाजिक विधान के प्रति एक विद्रोही स्वर व्यक्त हुआ है । यहाँ सर्वहारा और पूंजीवादी संघर्ष का घर्घरनाद है । नारी की सामाजिक वर्जनाओं से मुक्ति की कामना की गई है । हालांकि यहाँ वीभत्स बिम्ब भी है,

---

1. काव्य संग्रह : द्वितीय भाग : अंचल, पृ0 279.
2. वही, पृ0 280.

सगर अच्छा होता, अगर यहाँ कवि कला संयम बरतता । अनेक स्थलों पर छंद युक्त शैली में प्रभाव पैदा करने का प्रयत्न इसी प्रकार की अवांछित शिनाख्त छोड़ता है ।[1]

§2§ विराम चिन्ह :57:: विराम चिन्ह में एक बार फिर कवि ने अपने मूल काव्यधर्म से पृथक कुछ गीत और गीतात्मक तथा अगीतात्मक वस्तुवर्णन प्रधान रचनाएँ रची हैं । इन रचनाओं में महात्मा गाँधी के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है । युगीन विषमता को भी अपनी मूल सर्जना प्रक्रिया की कीमत अदा कर ध्वनित किया गया है ।[2]

§3§ मधूलिका :38: 'मधूलिका' में कवि की उददाम यौवन की प्रणय पिपासा का मादक - मोहक स्वर सशक्त है । यहाँ शरीरी सौन्दर्य सुषमा का राग-रस निर्बाध गति से फूटता है और उसके अभिव्यंजन की विसुधता में कवि अपने त्रषित हृदय की ज्वाला में दग्ध हुआ जाता है । 'मधूलिका' के प्रारम्भ में कुछ रचनाएँ कवि-प्रिया के मनोरम मिलन केप्रति उत्सुकता, तृष्णा, प्रतीक्षा, उसकी रूपसज्जा, उसके प्रति प्रणय-निवेदन, वेणीबंधन विषयक उददाम भावनाएँ व्यक्त करती हैं । कवि की प्रेयसी यहाँ एक रूपपरी के समान है । पर वह परी होकर भी मानवी है, उसका रूप मांसल है । वह वायवी नहीं है । वह अनंगवती है, सलोनी है, स्थूल है, इन्द्रियों को सुखमय है, पर सूक्ष्म छायाकृति वह नहीं है ।[3]

---

1. इन आवाजों को ठहरा लो : अंचल, पृ0 15.
2. वही, पृ0 15.
3. वही, पृ0 16.

§4§ अपराधिता :39: 'अपराधिता ' की रचनाओं की अभिव्यक्ति में कुछ सूक्ष्म अन्तर अवश्य आया है, उसमें वह अनुभूति की तीव्र उमड़न को कल्पना के सहारे रूपायित करने की सहज साधनाकरने में रत होता है। यहाँ प्रकृति के नजारे अधिक भावोददीपनकारी और आभामंडित हैं ।[1] 'अपराधिता ' की रचनाओं में खंडित प्रणय - सुधियों की वंचना वासना की अचूक प्रभावशाली अभिव्यंजना है । इसकी पृष्ठभूमि में प्रकृति के नजारों एवं उपमानों ने रचनाओं को अधिक मर्मबेधी बना दिया है । 'अपराधिता ' की कुछ ध्वनियों में व्यक्ति का समाज के प्रति आत्म-विद्रोह भी व्यक्त है ।[2]

§5§ लालचूनर :44: 'लाल चूनर' की रचनाओं में कवि फिर अपने काव्य-धर्म पर चलने लगता है । अर्थात् प्रगतिवादी - समाजवादी अभिव्यंजना का सतही स्वर त्यागकर वह प्रणय-पिपासा का स्थूल, किन्तु उत्कृष्टराग मुखरित करता है । इसकी रचनाओं में जीवन की वासना, कुंठा की दमघोंटू साँसों से मुक्ति पाने की एक ऊर्जामयी छटपटाहट ध्वनित होतीहै।[3]

§6§ वर्षान्त के बादल : इस काव्य संग्रह में 54 रचनाएँ हैं । प्रारंभिक रचनाओं में ऊपर कही सम्भावना के कुछ सूक्ष्म स्वर उभरे हैं । प्रारंभिक रचनाओं में 'अंचल ' ने भौतिक एवं भोगपरक भावनाओं को जिस अन्दाज में व्यक्त किया है, वह छायावादी सूक्ष्म श्रंगारिक काव्य के लिए जोर-दार जानदार एक चुनौती थी । छायावादी विषय-शिल्प विधान की

---

1. इन आवाजों को ठहरा लो : अंचल पृ0 17.
2. वही, पृ0 18
3. वही, पृ19

व्यामोहक वाणी को मुक्त करके अंचल ने सौन्दर्य चेतना की अभिव्यंजना की मानसिक ताजगी खूब पैदा की ।[1] 'वर्षान्त के बादल' संग्रह की रचनाओं में प्रकृति का चित्रण देखते ही बनता है ।[2]

§7§ प्रत्यूष की मटकी किरण : इसमें अंचल सौन्दर्य-चित्रण की कलात्मक प्रवृत्ति के संस्कारों का परिचय देते हैं । यहाँ भी उनकी मानस मूर्ति वही तो है, जो उन्हें अनजान रहकर भी, सदा से लुभाती रही है । कभी जो उनकी भोग की रूपपरी थी, वह अब उनके आराधन-समर्पण की चेतना की दीप्ति लौ या रागारूण लगन बन गई है । कुछ इस तरह से कवि की सौन्दर्यात्मक स्थूल चेतना का रूपायन इधर की रचनाओं में उत्त-रोत्तर देखने को ज्यादा मिलता है ।[3]

§8§ यायावरी :64: 'यायावरी' की रचनाओं में यद्यपि नारी-पुरूष के खण्डित प्रणय राग का स्वर प्रबल है, पर यहाँ रूप प्रणयासक्ति के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण एवं सौन्दर्य चेतना की प्रतिभा के आगे साधना के दीपक का प्रोज्जवल प्रकाश विकीर्ण होता है । 'यायावरी' की कई रचनाएँ स्थूल प्रणयासक्ति एवं चैतन्य रूप-आराधना की अभिव्यक्ति की विशिष्ट भूमिका पर टिकी है । प्रारम्भ से लेकर "यायावरी" की रचनाओं तक कवि का रूप-प्रणय का भाव राग उत्तरोत्तर इस परिप्रेक्ष्य में विकसित परिष्कृत होता गया है ।[4]

---

1. इन आवाजों को ठहरा लो : अंचल, पृ० 19.
2. वही, पृ० 20-21.
3. वही, पृ० 19.
4. वही, पृ० 23-24.

(9) अनुपूर्वा :60: अनुभूति के ईमानदार अभिव्यंजन के अर्थ में भी एक ही राग को साधते हुए, एक ही मानसी मूर्ति की उपासना के नए-नए भाव-बिम्ब-सुमनों से मालायें गूँथते हुए सृजनरत रहे आना । अंचल की कुछ रचनाओं में इस तरह की प्रोज्जवल ध्वनि है ।[1] 'मध्यान्ह' शीर्षक कविता में अतीत और अब के परिदृश्य का, प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में बहुत बढ़िया अभिव्यंजन हुआ है । 'सुलगती धूपदानी सी अबोली दीप्त दोपहरी' कविता में प्रकृति चित्रण अत्यन्त भाव राग संकुल है । शरद की साँझ रचना में शिल्प का निखार संवार अत्यन्त विशिष्ट है । आस्था स्तवन का सात्विक स्वर अजन्मे गीत का क्रन्दन रचना में उमड़ा है ।

नन्ददुलारे बाजपेयी ने 'अंचल' के काव्य की विशेषता के विषय में कहा है -"अंचल विनष्ट सौन्दर्य की विषण्ण स्मृतियों के गायक हैं, उनमें जाग्रत और प्रदीप्त अतृप्ति का विह्वल रोदन है । मूलत: अंचल के काव्य में सहजता और प्रौढ़ता है ।"[2]

नागार्जुन

हिन्दी काव्यधारा में 'नागार्जुन' का प्रवेश एक क्रान्तिकारी कवि के रूप में होता है । वे सच्चे अर्थों में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं । उनका सम्पूर्ण 'प्रगतिवादी काव्य' जीवन के यथार्थ पर आधारित है । 'नागार्जुन' जी का जन्म 1911 ई0 में हुआ था । इनका वास्तविक नाम बैजनाथ मिश्र हैं । ये मिथिला के रहने वाले एक साधारण परिवार के ग्रामीण हैं । मिथिला प्रदेश और

---

1. इन आवाजों को ठहरा लो; अंचल, पृ0 25-26.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ0हरिश्चन्द्र वर्मा,डॉ0रामनिवास गुप्त,पृ0 414-415.

विशेषकर वहाँ का ब्राह्मण समाज सामाजिक रूढ़ियों से जकड़ा रहा है। अनेकानेक अंध विश्वास और सामाजिक रूढि-रीतियाँ वहाँ प्रारम्भ से ही प्रचलित रही हैं। 'नागार्जुन' को बाल्यावस्था से ही इस परिस्थिति का सामना करना पड़ा है। अतएव उनके मन में एक विद्रोह की भावना आरंभ से ही विद्यमान रही है।

उनकी शिक्षा मूलतः संस्कृत, पाली और प्राकृत आदि में हुई है जिसके कारण भारतीय साहित्य के श्रेष्ठ कवियों से उनका सहज परिचय रहा है। 'नागार्जुन' की काव्य भाषा में जहाँ एक ओर ग्रामीण प्रसंग मिलते हैं, वहाँ दूसरी ओर उनकी कविताओं में सुसज्जित समास गर्भित संस्कृत पदावली भी मिलती है। 'नागार्जुन' भारतीय दर्शन के भी पण्डित ~~पण्डित~~ हैं। उनकी छाया भी उनके कृतित्व पर प्रायः दिखाई दे जाती है।

'नागार्जुन' को अपने प्रदेश और सारे देश की दुरवस्था का आँखों देखा ज्ञान प्राप्त है। वे अनेक प्रगतिवादियों की भाँति कोरी बौद्धिक सहानुभूति को लेकर काव्य रचना नहीं करते। उनके व्यक्तित्व में सच्ची सहानुभूति का तत्व विद्यमान है। यह कहना अधिक उचित होगा कि वे स्वयं उसी सर्वहारा वर्ग के एक प्रतिनिधि हैं, जिसके उत्थान का मार्ग चारों ओर से अवरूद्ध है।[2] फलतः उन्होंने तीव्र और कटु व्यंग्यों द्वारा अधिकारी वर्गों और पूँजीपतियों के विरूद्ध ऐसी कविताएँ लिखी हैं जो उग्रता की चरम स्थिति तक भी पहुँची हुई हैं। 'नागार्जुन' के व्यंग्य जितने तीखे हैं, किसी अन्य प्रगतिवादी कवि के व्यंग्यों में उतनी प्रखरता

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० 143.

नहीं है ।

इसी के साथ 'नागार्जुन' ने भारतवर्ष के प्राकृतिक सौन्दर्य, यहाँ के महापुरुषों के उच्च चरित्रों का, उनकी उत्कृष्ट साधनाओं का, उदात्त चित्रण भी अंकित किया है । यह 'नागार्जुन' का रचनात्मक पक्ष है । उनकी व्यंग्यात्मक कविताएँ उनके काव्य का संहारात्मक पक्ष सूचित करती हैं ।

इन्होंने कुछ उपन्यास और काव्य रचनाएँ मैथिली भाषा में भी की हैं । इनके हिन्दी काव्य में भी देशज प्रयोगों की बहुलता मिलती है, जो कदाचित् इन्हें मैथिल लोक कवि के रूप में प्राप्त हुई थीं । इन प्रयोगों के कारण 'नागार्जुन' की हिन्दी कविता अनेक स्थलों पर भाषा के ग्रहीत प्रतिमानों से नीचे उतर गई है और इसलिए पढ़े लिखे पाठक कभी-कभी विक्षुब्ध हो उठते हैं, परन्तु इसी कारण इनकी कविता को एक गहरी जनवादी भूमि भी प्राप्त हुई है । इनकी बहुत सी कवितायें तो ग्रामीण मेलों और उत्सवों आदि में सामान्य जनता द्वारा पढ़ी और गायी भी जाती हैं । यह 'नागार्जुन' के काव्य की जनवादी भूमिका का एक प्रमाण है ।

साहित्यिक आयोजनों और कवि सम्मेलनों में 'नागार्जुन' जी प्राय: जाया करते हैं । उनका स्वभाव सरल और विनोदप्रिय है । उनके वक्तत्व खरे और दो टूक होते हैं जिसके कारण वे कुछ साहित्यिकों के द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से भी देखे जाते हैं । उनकी व्यंग्यात्मक कवितायें कवि सम्मेलनों में बड़ी तन्मयता से सुनी जाती हैं । उनका व्यंग्य काव्य इस प्रकार जनता के बीच अपने उददेश्य की पूर्ति ही करता है ।

'नागार्जुन' क्रमश: प्रौढ़ कवि के रूप में हमारे समक्ष आ रहे

हैं । एक ओर जहाँ उनकी रचनाओं में शालीनता बढ़ रही है, वहाँ दूसरी ओर उनके विचारों में सन्तुलन आ रहा है । नागार्जुन विचारों से वर्ग-वादी हो सकते हैं, पर भावना से वे राष्ट्र प्रेमी कवि हैं और जब भी इन दोनों में संघर्ष की स्थिति आई है, तब उन्होंने विचार की अपेक्षा भावना का ही साथ दिया है ।[1]

'नागार्जुन' का कृतित्व प्रगतिशील चेतना का वाहक है । उनकी काव्य कृतियों में प्रगतिशीलता विविध रूपों में उभरी है ।

सामाजिक भूमिका पर आधुनिक हिन्दी के कवियों में 'नागार्जुन' का प्रमुख स्थान है । काव्य क्षेत्र में परिवर्तन कर उन्होंने कला के वर्गस्वरूप को प्रस्तुत किया है और उससे हिन्दी काव्यधारा में एक नवीन धारा का उद्‌भव हुआ है ।[2] 'नागार्जुन' का कवि व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में सम्पूर्ण रूप से निखर उठा है । कवि कभी एक व्यंग्यकार के रूप में, कभी प्राकृतिक प्रेमी के रूप में, और कभी सामाजिक आस्था, विश्वास और दृढ़ता के स्वरों को उच्चरित करने वाले समाजचेता कलाकार के रूप में अपने दर्शन देता है । 'नागार्जुन' के कवि के ये विविध रूप कुल मिलाकर उन्हें धरती तथा जनजीवन के एक ओजस्वी और निर्भीक गायक के रूप में प्रतिष्ठा देते हैं । इनकी रचनाओं का परिचय इस प्रकार है -

(1) युगधारा :1956: 'युगधारा' 'नागार्जुन' की कवि - कलम का प्रथम हस्ताक्षर है । इसका प्रकाशन सन्-1956 में हुआ था । इसमें कवि की व्यंग्य चेतना और भावीजीवन के प्रति आस्था, निष्ठा और जिजीविषा

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 144.
2. राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा प्रगतिशील साहित्य, रामेश्वर शर्मा, पृ0-102.

के स्वर भी निनादित हैं । यहीं से कवि स्वस्थ निर्माण के लिए प्रयत्नरत दिखाई देता है ।[1] युगधारा की प्राय: समस्त कविताएँ सामाजिक भूमिका पर अवतरित हैं ।

(2) सतरंगे पंखों वाली :1959: कवि का द्वितीय काव्य संग्रह सतरंगे पंखों वाली सन् 1949 में प्रकाशित हुआ है । इसमें कुछ कविताएँ प्रकृति के रम्य चित्रों को उपस्थित करती हैं और कुछ में कवि ने प्रणय से सम्बन्धित अपने व्यक्तिगत भावों को प्रस्तुत किया है ।[2] इनकी भाषा में सरलता और सादगी है । हरेक शब्द जिन्दगी के वाक्य कोश से ऐसे उठा लिया गया है, जैसे जीवनानुभूतियों ने उसे वक्त-बेवक्त के लिए जमा किया हो । सरल शब्दों की आत्मा में गहरा अर्थ भरकर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति के द्वार तक ले जाने का कार्य नागार्जुन का कवि बखूबी कर सकता है ।[3]

(3) प्यासरी पथराई आँखें :1962: इसमें कवि का चित्रशील व्यक्तित्व प्रकट हुआ है । कला के प्रति कवि सजग है । सामाजिक कविताओं में कवि का व्यंग्य तीखा और तीव्र है । आधुनिक सभ्यता पर कवि का व्यंग्य बहुत ही सुन्दर है । विज्ञापन सुन्दरी इसी प्रकार की कविता है । कवि ने निराला पर भी पृथक कविताएँ लिखी हैं ।[4]

(4) भस्मांकुर : नागार्जुन' की एक प्रबन्ध रचना है । इसमें गृहीत कथानक पौराणिक आख्यान से चुना गया है । प्रकृति निरूपण और युग

---

1. नए प्रतिनिधि कवि : नागार्जुन - बाबूराम गुप्त, पृ0-10.
2. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 146.
3. नए प्रतिनिधि कवि : नागार्जुन-बाबूराम गुप्त, पृ0 12.
4. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ0 146.

निरूपण की दृष्टि से भी भस्मांकुर काव्य का सौन्दर्य प्रभावित करता है। प्रकृति के चेतन और अचेतन दोनों रूपों को 'भस्मांकुर काव्य' में देखा जा सकता है।[1]

(5) तालाब की मछलियाँ :1975: 'नागार्जुन' की 63 कविताओं को लेकर यह संकलन प्रकाशित हुआ है। संकलन का नामकरण उसी में संग्रहीत एक कविता तालाब की मछलियों के नाम पर किया गया है। सामाजिक यथार्थवादी रचनाओं के अतिरिक्त प्रणय और प्रकृति के रंग भी स्पष्ट हैं। 'नागार्जुन' की परवर्ती रचनाओं में व्यंग्य का स्वर और भी गहरा होता गया है।

(6) आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नागार्जुन :1977: इसमें 'नागार्जुन' की रचनाओं में से चुनी हुई 63 कविताएँ सम्मिलित की गई हैं। इस संग्रह की अधिकांश रचनायें "नागार्जुन" के पूर्ववर्ती काव्य संकलनों से ही ली गई हैं। कुछ सामयिक संदर्भों की कविताएँ तथा 8-10 प्रकृतिपरक गीत ऐसे हैं जिन्हें डॉ0 माचवे ने किन्हीं विशिष्ट पत्रिकाओं से लेकर प्रस्तुत किया है।

(7) खिचड़ी विप्लव देखा हमने :1980: इसे हम 'नागार्जुन' की राजनीतिक कविताओं का प्रतिनिधि संकलन कह सकते हैं। इस काव्य संकलन में आठवें दशक की रानीतिक हलचल को सशक्त अभिव्यक्ति दी गई है। संकलन की अनेक रचनाओं में कवि की अति उग्र मानसिकता देखी जाती है। संकलन की अन्तिम कविता 'हरिजन गाथा' में कवि ने बेलछी काण्ड का मार्मिक चित्र खींचते हुए अपने जनवादी स्वरों के साथ व्यक्त किया है।

---

1. नए प्रतिनिधि कवि : नागार्जुन - बाबूराम गुप्त, पृ0 15.

§8§ तुमने कहा था : 1980: इस संकलन की कुछ कविताएँ प्रकृतिपरक हैं, शेष अधिकांश रचनाओं में कवि का लट्ठमार राजनीतिक व्यंग्य देखा जा सकता है। भारतीय राजनीति के सूत्रधारों को कवि ने एक-एक करके लताड़ा है। इस संकलन में कवि ने लेनिन, लालबहादुर शास्त्री, तथा शैलेन्द्र के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है।

§9§ हजार-हजार बाहों वाली: 1981: यह नागार्जुन की नई पुरानी कविताओं का मिला जुला नवीनतम संकलन है। इस काव्य संकलन में 'नागार्जुन' की पिछले 45 वर्षों की काव्य-साधना के विविध परिदृश्य उपस्थित किए गए हैं। इस संग्रह में कवि ने विद्रोही वृत्ति को सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

इसके अतिरिक्त नागार्जुन की अनेक रचनाएँ लघु पुस्तिकाओं के रूप में भी प्रकाशित होती रही हैं, जिनमें शपथ, चना जोरगरम, प्रेत का बयान, खून और शोले तथा अब तो बन्द करो हे देवि, यह चुनाव का प्रहसन प्रमुख हैं।

राम विलास शर्मा

प्रगतिवादी काव्यधारा को अभिवृद्धि एवं स्वस्थ्य, नवीन दिशा की ओर प्रस्तुत करने में डॉ० रामविलास शर्मा का प्रमुख स्थान है। आपका जन्म उन्नाव जिले के ठौसवाड़ा प्रदेश के ऊँच गाँव में 10 अक्टूबर, 1912 को हुआ था। आपकी उच्च शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई है। आपने वहीं से अंग्रेजी में पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की थी। एक लम्बे समय तक अध्यापन का कार्य भी आपने वहीं किया है।

शर्मा जी वास्तव में एक आलोचक के रूप में हिन्दी जगत में विख्यात हैं । प्रेमचन्द्र, भारतेन्दु-युग, निराला, प्रगति और परम्परा, आस्था और सौन्दर्य आदि शर्मा जी की प्रमुख आलोचनात्मक कृतियाँ हैं, जिनके माध्यम से उनके प्रगतिशील आलोचक व्यक्तित्व को परखा जा सकता है । शर्मा जी समाजवादी विचारधारा पर आस्था रखने वाले समीक्षक हैं, इसी कारण उन्होंने अपनी समीक्षात्मक कृतियों में मार्क्सवादी आदर्शों का दृढ़ता के साथ प्रतिपादन किया है ।

कवि ने सामाजिक जीवन की जिन भूमिकाओं में प्रवेश किया है, जिन तथ्यों, विचारों और मान्यताओं को प्रतिपादित किया है, उसमें उनका सैद्धान्तिक आग्रह एवं वादी दृष्टिकोण ही प्रधान रहा है । कवि प्रारम्भ से निराला के काव्य के प्रशंसक रहा है ।[1] और संभवत: काव्य रचना की प्रेरणा उसे महाकवि से ही प्राप्त हुई है । कवि ने 'रूपतरंग' की भूमिका में लिखा है-"लेकिन इन सबसे महान् था निराला का व्यक्तित्व, केवल मानव, वह जो सभी साहित्य से सरस था, जिसे स्वयं निराला की व्यंजना शक्ति भी पूरी तरह प्रकट नहीं कर पाई । मेरे मन में एक अ निवर्च-नीय संस्कार के रूप में उसकी स्मृति बनी हुई है ।"[2]

शर्मा जी का कवि रूप तार सप्तक और 'रूपतरंग' में संग्रहीत कविताओं के माध्यम से परखा जा सकता है जिसमें कवि ने अपने विचारों को भी प्रकट करने का यथेष्ट अवसर प्राप्त किया है । कवि

---

1. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, पृ० 169.
2. रूपतरंग : भूमिका से, रामविलास शर्मा, पृ० 3.

'रामविलास' भी काव्य रचना के सम्बन्ध में अपनी अभिरूचि तथा असमर्थता दोनों को ही प्रकट करते हुए लिखते हैं-"कविता लिखने की ओर मेरी रूचि बराबर रही है, लेकिन लिखा है मैंने कम..... कविता लिखने में बड़ी मेहनत पड़ती है और उसकी नकल करने में और भी ज्यादा ।"[1]

व्यावहारिक क्षेत्र में भी डॉ० 'रामविलास शर्मा' जी सक्रिय रहे हैं । समय-समय पर आप 'अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' के मन्त्री पद पर कार्य करते रहे हैं । इस पद पर रहकर आपने उसको एक ओर सुसंगठित एवं सुनियोजित स्वरूप प्रदान करने का भी प्रयास किया है । प्रगतिवादी आन्दोलन के विकास में आपका महत्वपूर्ण हाथ रहा है । 'राम-विलास' की रचनायें उसके स्वस्थ एवं जनवादी रूप को प्रस्तुत करने में समर्थ हैं ।[2]

डॉ०रामविलास शर्मा उन प्रगतिवादी कवियों में से एक हैं, जो इस काव्यधारा के आरम्भ होते ही मंच पर दिखाई दिए । उनकी काव्य रचनाओं का परिचय इस प्रकार है -

<u>§1§ रूपतरंग :</u> डॉ० रामविलास शर्मा केकवि रूप की प्रथम परिचायिका उनकी समर्थ कृति 'रूपतरंग' है । अज्ञेय द्वारा सम्पादित तार सप्तक नामक संग्रह में भी उनकी कुछ कवितायें संग्रहीत हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश कवितायें उनके 'रूपतरंग' संग्रह में सम्मिलित हैं । 'रूपतरंग' में कवि की कुल 66कवितायें संग्रहीत हैं, जिनमें कवि की भावधारा के कई रूपों को उसकी प्रगतिशील भूमिका के साथ परखा जा सकता है । कुछ कवितायें ऐसी हैं, जिनमें कवि

---

1. प्रथम तार सप्तक : पृ० 52.

ने प्रकृति के रम्य प्रांगण में क्रीड़ाएँ की हैं । कुछ कविताओं में लोकजीवन एवं संस्कृति के चित्रों का सजीव अंकन किया है और कुछ में समाज के वैषम्य को समाप्त कर नवीन आशा एवं दृढ़ता के स्वरों का उच्चार किया है ।

'रूपतरंग' की कविताओं के आधार पर कवि की काव्यगत प्रवृत्तियों का भी अध्ययन किया जा सकता है । यद्यपि उसमें कवि की वे व्यंग्यात्मक कविताएँ नहीं है, जिन्हें उसने निरंजन तथा अगिया वैताल के नाम से कभी लिखा था फिरभी रूपतरंग में कई सार्थक व्यंग्य कवितायें भी हैं ।

(2) बादल : 'बादल' रामविलास शर्मा का एक अन्य महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है । इस संग्रह में विविध रूपरंगों और मन: स्थितियों की 84 कवितायें हैं। इस संग्रह की लगभग सभी कवितायें प्रकृति से सम्बन्धित हैं ।

(3) ऋतुगंध : ऋतुगंध नामक काव्य संग्रह में भी अधिकांश कवितायें प्रकृति से सम्बन्धित हैं । उन्होंने प्रकृति को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा है और फिर उसका चित्रण किया है ।

नरेन्द्र शर्मा

छायावादोत्तर काल में अपने प्रणय गीतों और सामाजिक भावना एवं क्रान्तिवाहक कविताओं से जनमत को बहुत गहराई से प्रभावित करने वाले कवियों में 'नरेन्द्र शर्मा' का महत्वपूर्ण स्थान है । आपका जन्म सं0 1913 में जहाँगीरपुर नामक ग्राम में (बुलन्दशहर) में हुआ था । इनके पिता का नाम पं0 पूरनलाल शर्मा है । आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम0 ए0 पास किया था । ये अपने छात्र जीवन में ही काव्य रचना करने लगे थे ।

कुछ समय तक प्रयाग के 'भारत' में सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य करके फिर अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के कार्यालय में नियुक्त हो गए। वहाँ से आप काशी विद्यापीठ चले गए और कुछ समय तक वहाँ अध्यापन करने के बाद आप बाम्बे टॉकीज में गीत लेखक के रूप में चले गए। तब से आप स्थायी रूप से बम्बई में ही रहते हैं और चलचित्र के क्षेत्र में गीत लेखक का कार्य करते हैं। कई फिल्मों में आपके गीत आए हैं। 'नरेन्द्र शर्मा' मूलरूप से प्रेमानुभूति के कवि हैं। उनकी वाणी में निखार, व्यंजना में व्यापकता और मर्मस्पर्शी सौन्दर्य प्रकट होता है। हिन्दी गीतिकाव्य को कवि ने कुछ अमर गीत दिए हैं। विरह काव्य के रूप में हिन्दी कविता में उनके काव्य का अच्छा स्थान है। बाद में कवि मार्क्सवाद और 'प्रगतिशील चिन्तनधारा' से प्रभावित हो गया। उनका काव्य चेतना में बौद्धिकता का समावेश होता गया। इस अभिनव रूप में भीतर-बाहर का एकात्म बोध कवि न पा सका। इसीलिए कवि की प्रगतिशील कवितायें अनुभूत न प्रतीत होकर, सोची-सोची और रची-रची लगती हैं। हिन्दी कविता में "नरेन्द्र शर्मा" ने कुछ अभिनव प्रयोग किए हैं। इसी प्रकार प्रगतिवादी भावधारा अपनाने के पूर्व नरेन्द्र ने जो विशुद्ध राष्ट्रीय चेतना की कवितायें लिखी हैं, वे अच्छी हैं।[1]

'नरेन्द्र शर्मा' एक ओर हृदय की कोमल भावनाओं और मृदुल आवेगों के चित्रण में निपुण हैं, तो दूसरी ओर ओज प्रधान और प्रेरक

---

1. काव्य संग्रह : द्वितीय भाग, -अचंल, पृ० 27।

कविताएँ लिखने में भी सफल हुए हैं । प्रारंभिक कविताओं में कवि की भाषा पर कविवर पंत जी का प्रभाव था, पर प्रगतिवादी 'नरेन्द्र शर्मा' की भाषा सर्वथा अपनी है और उसमें नई जान है । नरेन्द्र कहानीकार, उपन्यासकार और निबन्ध लेखक भी हैं । 'प्रगतिवाद' के उन्नायकों में उनका स्थान है, और यह कल्पनावादी कवि युगानुरूप जीवन दर्शन को अपनाकर बाद में यथार्थवादी हो गया है ।[1]

'नरेन्द्र' जी ने प्रकृति चित्रण बड़ी तन्मयता के साथ किया है । इस क्षेत्र में वे पंत जी से अधिक प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं । नारी सौन्दर्य की स्थूलता के प्रति आग्रह तो 'नरेन्द्र शर्मा' की कविताओं में मिलता ही है, पर उनमें उद्दाम वासना से उद्भूत पौरुष की उतनी छटपटाहट नहीं, जितनी की निराशा, हाहाकार और परवशता है । भावों के माध्यम से विराट् चित्रों के निर्माण में इस खेमे के कवियों में "नरेन्द्र शर्मा" को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है ।

आपने काव्य क्षेत्र में प्रवेश छायावादी कवि के रूप में किया था । बाद में मार्क्सवाद और गाँधीवाद का भी आपके साहित्य पर प्रभाव पड़ा । आपकी काव्य भाषा सरस, मधुर और प्रभावमयी है । शब्द सौष्ठव सुन्दर है । आप कोमल और कठोर दोनों पक्षों को व्यक्त करने में सक्षम हैं। सहजता, सरलता और यथार्थता आपके काव्य की प्रमुख विशेषता है ।

'नरेन्द्र शर्मा' ने जितनी तन्मयता से प्रेमी मानस के हर्ष-विषाद को वाणी दी, उतने ही आक्रोश और सच्चाई से इन्होंने विशाल जन-मानस की विवशता, विद्रोह भावना और नव-निर्माण की चेतना को मुखरित

---

1. काव्य संग्रह : द्वितीय भाग, अंचल पृ0 282

किया है । साहित्य और लोकमंच कवि सम्मेलनों के माध्यम से नरेन्द्र शर्मा ने जन-जीवन को प्रभावित एवं प्रेरित कर साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह किया है ।

'नरेन्द्र' जी की काव्य प्रतिभा प्रगति का सन्देश देने में ही अधिक निखरी है । उन्होंने 'प्रगतिवाद' से सम्बन्धित प्राय: सभी विषयों पर खुलकर लिखा है । उनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार हैं -

(1) मिट्टी और फूल : 'मिट्टी और फूल' 'नरेन्द्र' जी की प्रथम प्रगतिवादी रचना है । उसके निवेदन में इन्होंने लिखा है-"इसमें से अधिकांश कवि प्रगतिवादी होने का दावा करते हैं और मुझ जैसे कुछ आलोचकों के ऐसे क्षमाभाजन भी हैं, जिन्हें प्रगतिवादी कवि की पदवी अनायास ही मिल गई है ।न्याय के पक्षपातियों ने वास्तविक प्रगतिशील कवियों की तुलना में मुझे फैशनेबल प्रगतिवादी सिद्ध न कर दिया होता, तो संभव है मै सचमुच प्रगतिशील कवि होने के झुलावे में पड़ जाता ।"[1] इस संग्रह में विभिन्न सामाजिक समस्याओं एवं उनके निवारण पर प्रकाश डाला गया है ।

(2) प्यासा निर्झर : इस संग्रह की कविताओं में कवि ने दार्शनिकता का पल्ला पकड़ लिया है । इस संग्रह की प्रणय सम्बन्धी रचनाओं में कवि का दृष्टिकोण पलायन वादी है ।

(3) कामिनी : यह आख्यानक काव्य है, इस काव्य संग्रह में,कवि के मन की प्रणय सम्बन्धी यात्रा का अंकन है ।

(4) द्रौपदी : यह खण्ड काव्य है जिसमें पंच पाण्डवों को पंचमहाभूतों के प्रतीकों के रूप में और द्रौपदी को जीवनी शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है,परन्तु कवि को इतिहास और युग-चेतना को समन्वित करने में

सफलता नहीं मिली है । इसीलिए अर्थबोध में परेशानी होती है ।

(5) रक्त चंदन : रक्त चंदन नामक काव्य संग्रह में गाँधी से सम्बन्धित रचनाएँ संकलित हैं । इनका अधिकांश काव्य प्रेमानुभूतिपरक ही हैं। इनके कुछ गीत साम्यवाद से भी प्रभावित हैं ।

(6) प्रवासी के गीत : विरह काव्य के रूप में हिन्दी कविता में 'प्रवासी के गीत' का अच्छा स्थान है । 'नरेन्द्र शर्मा' की छायावादी युग में लिखी गई कविताएँ छायावाद के रूमानी और आध्यात्मिक तत्वों से रहित मिलती हैं । 'प्रवासी के गीत' संग्रह में प्रकाशित उनकी रचनाएँ मुख्यत: पूर्ववर्ती प्रभाव की ही द्योतक हैं ।

(7) अग्निशस्य : 'अग्नि शस्य' काव्य संग्रह नए युग की समस्याओं की ओर संकेत करता है । इस संकलन में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि इस समय मनुष्य की क्या-क्या समस्यायें हैं और उनसे किस प्रकार छुटकारा पाया जा सकता है ।

(8) प्रभातफेरी : इस काव्य संग्रह में 'नरेन्द्र शर्मा' जी ने कुछ अभिनव प्रयोग किए हैं । इस संग्रह में उन्होंने प्रगतिवादी भावधारा से युक्त विशुद्ध राष्ट्रीय चेतना की कवितायें लिखी हैं । नरेन्द्र शर्मा एक ओर हृदय की कोमल भावनाओं और मृदुल आवेगों के चित्रण में निपुण हैं तो दूसरी ओर ओजप्रधान और प्रेरक कवितायें लिखने में भी सफल हैं ।

(9) 'शूलफूल' एवं 'कर्णफूल' : नरेन्द्र जी स्फुट कविताओं का पहला संकलन सन्- 1934 में शूलफूल नाम से और दूसरा संग्रह सन्-1936 में कर्णफूल नाम से प्रकाशित हुआ था । इन दोनों कृतियों में युवा मन की रंगीनी को उसके प्रकृत रूप में ही अंकित किया गया है ।

§10§ हंसमाला : अपनी हंसमाला नामक काव्य कृति में नरेन्द्र एक समान्वय-वादी, दार्शनिक और चिंतनशील कवि के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। इसीलिए विचारक इस कृति को चिंतनप्रधान कृति मानते हैं।

§11§फदलीवन : इस संग्रह की कविताओं में जगत की नश्वरता एवं मनुष्य के क्षणभंगुर जीवन पर विचार किया गया है।

§12§ उत्तरजय:= सन् 1965 में श्री नरेन्द्र शर्मा का एक लघुकाय प्रबन्ध काव्य 'उत्तरजय' प्रकाशित हुआ। यह कृति महादेवी वर्मा को समर्पित की गई है।

नरेन्द्र जी की मान्यता के अनुसार,-"वह कवि प्रगतिशीलता के उतना ही निकट समझा जायेगा, जो वस्तुस्थिति और उसकी छाया में अकुलाने वाले अपने व्यक्तित्व को, व्यक्तित्व में निहित सक्रिय सामर्थ्य और सीमाओं को तथा वस्तुस्थिति और व्यक्तित्व के घात-प्रति घातपूर्ण पारम्परिक सम्बन्ध और तज्जनित गतिशीलता के नियम को जितना ही अधिक समझ सकता है और व्यावहारिक जीवन में ग्रहण करता है। यह समझदारी और तथ्य-ग्राहकता प्रगतिशीलता की पहली सीढ़ी है। अपनी सक्रिय शक्ति से प्रतिकूल वस्तुस्थिति को बदलने अर्थात् उसे सामाजिक प्रगति के अधिक अनुकूल बनाने की लगन और जर्जर संस्कारों से अपनी मुक्ति को नवनिर्माण में सार्थक बनाने में ही कवि प्रगतिशीलता की ओर अग्रसर हो सकता है।"[1]

शर्मा जी की उपर्युक्त प्रगतिवादी रचनायें उनके इस दृष्टि-कोण को सार्थक करती हैं।

---

1. मिट्टी और फूल : नरेन्द्र शर्मा, पृ० 2.

शंकर शैलेन्द्र

शंकर शैलेन्द्र वस्तुत: चलचित्र गीताकाश के प्रखर सूर्य हैं । शैलेन्द्र माँ भारती के ऐसे सपूत हैं, जिन्होंने भारत की राष्ट्रीयता के साथ ही राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अप्रत्यक्ष रूप से अपने चलचित्र - गीतों के माध्यम से अतुलनीय योगदान किया है ।

शंकर शैलेन्द्र भारत के सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त चलचित्र-गीतकार हैं, जिन्हें भारत की सीमाओं के बाहर विदेशों में भी पर्याप्त अंश मिला है । उनके काव्य में हमें प्रगतिवाद का सुन्दर समन्वय मिलता है । भूतपूर्व रेल कामगार होने के नाते मजदूर, किसान एवं साधारण या आम आदमी के दु:ख और संवेदना को अपने चलचित्र गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है । उन्होंने हर रंग, हर किस्म के गीत लिखे हैं ।

शैलेन्द्र जी ने अपने काव्य में बुद्धि की अपेक्षा हृदय को, बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक पक्ष को ही अत्यधिक महत्व प्रदान किया है । उन्होंने ऐसी तीव्र एवं मार्मिक अनुभूतियाँ कराईं, जो बुद्धि के कुंडलिनी चक्र को भेदकर सीधे हृदय पर जाकर आघात करती हैं, इसलिए शैलेन्द्र चलचित्र प्रारम्भ होने से पूर्व आकाशवाणी के माध्यम से सभी तबकों की जुबान पर आसानी से चढ़ जाते थे ।

शैलेन्द्र जी के काव्य में हमें प्रगतिशीलता के दर्शन होते हैं । उनके कवि ने सदैव रूढ़ियों, पुरातन परम्पराओं एवं सड़े गले अन्ध विश्वासों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर बुलन्द किया है । उनके काव्य में दैन्य, निराशा,

पलायनवाद, कुंठा एवं वर्जनाओं को वाणी मिली है । उनका एक प्रसिद्ध गीत है -

"तू जिन्दा है तू जिन्दगी की जीत पर यकीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर ।"[1]

शैलेन्द्र कलम के धनी और ईमानदार कवि थे । उन्होंने जीवन में जो कुछ अनुभव किया, वही हृदय से कागज पर अंकित किया । इसलिए उनके गीत बच्चे-बच्चे की जबान पर आसानी से चढ़ जाते थे । हर आम आदमी को उनके गीतों में अपने स्वयं के दुख: - दर्दों एवं आशा - निराशा की अनुभूति होती थी, इसलिए उन्हें चलचित जगत का सबसे बड़ा प्रगतिवादी गीतकार माना जा सकता है । वे एक आशावादी ही नहीं, वरन् सच्चे आदर्शों के कवि थे । उन्हें मनुष्य की मेहनत और पुरूषार्थ में और उसकी विजय में पूरा-पूरा विश्वास था ।[2]

शैलेन्द्र जी ने हिन्दी चलचित्र गीत संसार में आँधी में एक दीप जलाया और पानी में आग लगाई ' के अनुसार दीपक जलाया और स्वयं तिल-तिल जलकर अपना रक्त-स्नेह देकर उसे प्रज्ज्वलित किया । ख्वाजा अहमद अब्बास के शब्दों में - ' मृत्यु शैलेन्द्र की नहीं फिल्मी शायरी की हुई है । वे बड़े भावुक और स्वाभिमानी कवि थे । जिस कार्य के लिए वे भेजे गए थे, उसे पूर्णकर चल दिये - कवि टूट-फूट के सामान के समान नाजुक होते हैं, उनसे सावधानी और कोमलता से व्यवहार करो ।'[3]

---

1. शंकर शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ0रवीन्द्र भारती, पृ0-5.
2. वही, पृ0 13.
3. वही, पृ0 18.

चन्द्रकान्त बोदि बड़ेकर ने उनके विषय में कहा है -

"हिन्दी की खातिर जीता था,
हिन्दी को कृतकृत्य कर गया
ओ कवि ! तू कितना सच्चा था,
जो लिखा वह सत्य कर गया ।"[1]

शैलेन्द्र जी की स्मृति जन-मानस में इसी प्रकार से शेष है । मजाज लखनवी के शब्दों में -

"छुप गए हो साजे हस्ती को छोड़कर
अब तो बस आवाज ही आवाज है ।"[2]

x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x
x x x x x x x
x x x x x
x x x
x

---

1. शंकर शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ०रवीन्द्र भारती, पृ० 18.
2. वही.

द्वितीय अध्याय

कविवर पंत की प्रगतिवादी रचनाओं में प्रकृति

प्रकृति से अभिप्राय :

प्रकृति से हमारा तात्पर्य मनुष्येतर जगत् से है जिसमें नदी, पर्वत, वन, कछार, चन्द्र, ज्योत्स्ना, प्रातःकालीन एवं संध्य-गगन की रंग बिरंगी छटाएँ सम्मिलित हैं। प्रकृति का अर्थ है स्वाभाविक, अतः प्रकृति के अन्तर्गत वही वस्तुएँ आती हैं जिन्हें मानव के हाथों ने संभाला नहीं है और जो स्वयं ही नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती हैं।[1]

प्रकृति मानव की आदिम सहचरी है। आदिकाल के प्रथम पुरुष ने जब अपने नेत्र खोले होंगे, तो उसको सर्वप्रथम प्रकृति का ही साहचर्य और सहयोग प्राप्त हुआ होगा। वैज्ञानिकों का विकासवाद और आस्तिकों की अपौरुषेय सृष्टि-कल्पना दोनों ही इस विषय में एक मत हैं कि मानव ने प्रकृति के विशाल क्रोड़ में ही जन्म धारण किया और उसके साहचर्य में चेतना को क्रमशः विकसित किया। वृक्षों ने फलदान द्वारा और निर्मल निर्झरों ने शीतल जल द्वारा मानव की सहज वृत्तियों का भी समाधान किया। फलतः मानव का प्रकृति के प्रति स्वाभाविक रूप से चिर साहचर्य स्थापित हो गया।[2]

जन्मकाल से ही मानव प्रकृति की गोद में पलता और बड़ा होता है। आरम्भ में प्रकृति मानव की सहज वृत्तियों का समाधान करती है और अव्यक्त रूप में मानव का उसके साथ सम्बन्ध स्थापित हो

---

1. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण : डॉ० किरण कुमारी गुप्ता, पृ० 8.
2. वही, पृ० 1.

जाता है ।[1]

जीवन-दृष्टि की भाँति प्रत्येक कवि की प्रकृति विषयक चेतना भी उसकी अपनी ही होती है । प्रकृति का भिन्न-भिन्न रूपों में सिंहावलोकन और उसके चित्रण के लिए प्रत्येक कवि स्वतन्त्र होता है । विभिन्न काव्य ग्रन्थों का अध्ययन करने पर विदित होता है कि भिन्न - भिन्न कवियों का प्रकृति के प्रति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रहा है।

हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण के विविध रूप :

(1) आलम्बन रूप में : आलम्बन में प्रकृति कवि के लिए साधन न बनकर साध्य बन जाती है । कवि प्रकृति का निरीक्षण करता है और उसके सूक्ष्मतम तत्वों के प्रति आकर्षित होता है । उसका मन प्रकृति में रम जाता है और वह आत्मविभोर हो उठता है । हिन्दी काव्य में आलम्बन रूपमें प्रकृति वर्णन आधुनिक काल में अधिक देखने को मिलता है ।

(2) उद्‌दीपन रूप में : उद्‌दीपन रूप में प्रकृति का प्रयोग सबसे अधिक किया गया है । रीतिकाल के कवियों ने प्रकृति का उद्‌दीपन के रूप में वियोग और संयोग दोनों पक्षों में वर्णन किया है । प्रकृति के उद्‌दीपन रूप के चित्र हिन्दी काव्य में भरे पड़े हैं ।

(3) पृष्ठभूमि के रूप में : पृष्ठभूमि के रूप में भी हिन्दी के काव्य-ग्रन्थों में प्रकृति का चित्रण किया गया है । कुशल कवि प्रकृति को पृष्ठभूमि में रखकर चित्रों की सुन्दरता बढ़ा देते हैं । आधुनिक काल में प्रकृति का प्राय: पृष्ठभूमि के रूप में अधिक वर्णन किया गया है ।

---

1. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण : डॉ० किरण कुमारी गुप्ता, पृ० 15.

(4) प्रतीक रूप में : प्रकृति का प्रतीक रूप में वर्णन हिन्दी काव्य में आरम्भ से चला आ रहा है। इसमें कवि अपने भाव प्रकट करने के लिए अनेक प्रतीक मानकर चलते हैं जैसे - अंधकार का प्रयोग निराशा के लिए, प्रकाश का प्रयोग आशा के लिए।

(5) दूत रूप में : प्रकृति को दूत के रूप में भी काव्य में वर्णित किया गया है। सूरदास, नंददास, जायसी, हरिऔध जी ने अपने काव्य में प्रकृति को दूत के रूप में चित्रित किया है।

(6) अलंकार रूप में : कवि अपने काव्य के लिए अपमान अधिकतर प्रकृति के असीमित कोश से ही लेता है। अलंकार के रूप में प्रकृति - चित्रण अधिकता से मिलता है। ऐसा कोई भी कवि न होगा जिसने अपने उपमान प्रकृति से लिए हों।

(7) उपदेशक रूप में : प्रकृति के द्वारा कवि उपदेश भी देता है। कविता में प्रकृति के इस रूप की अधिकता तो नहीं है, परन्तु किसी-किसी कवि के काव्य में प्रकृति इस रूप में भी दिखाई देती है।

(8) मानवीकरण रूप में : प्रकृति को मानव की तरह चेतनावस्था में देखना और उसका उस रूप में चित्रण करना ही मानवीकरण है। हिन्दी में मानवीकरण के रूप में प्रकृति का वर्णन करना छायावादी कवियों की देन है। इस रूप में प्रकृति के चित्र प्रायः सभी कवियों के काव्य में भरे पड़े हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति आदिकाल से ही मानव की सहचरी रही है। प्रकृति मानव की माता है, मानव की गोद में शान्ति प्राप्त करता है और करता रहेगा। वास्तव में प्रकृति काव्य का प्राण है।

(क) युगान्त, युगवाणी तथा ग्राम्या में प्रकृति के विविध रूप :

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत, अल्मोड़ा में प्रकृति की गोद में पले हैं। कवि पन्त ने घण्टों अल्मोड़ा की पर्वत शिलाओं पर बैठकर प्रकृति का निरीक्षण किया है और वहाँ के सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राकृतिक दृश्य इनके अनुराग के विषय हो गए हैं। प्रकृति से निकटतम सम्बन्ध होने के कारण वह प्रकृति के उपासक ही नहीं रहे, वरन् अनन्य मित्र बन गए हैं। इन्होंने अपने प्राणों की आकुलता से समस्त पर्वत - स्थली और वन-भूमि को मधुर गुंजन से मुखरित कर दिया है। इन्होंने प्रकृति को कभी त्रस्त, कभी संतप्त, कभी प्रफुल्लित, और कभी उल्लास एवं अनुराग से पूर्ण देखा है। पंत के प्रकृति चित्रण में मानव और प्रकृति का एकात्म हो जाता है, सचराचर-प्रकृति मानव के साथ मिलकर एक रूप हो जाती है।[1]

कविवर 'पंत' की तो माँ और धात्री प्रकृति हीं रही है। उसी की गोद के पालने में वे झूले, घुटने के बल चले और किशोर एवं यौवन की मधुर स्मृतियाँ संजोई। वास्तव में उनके अंग-अंग का निर्माण प्रकृति की ममतामयी गोद में ही हुआ।

कविवर 'सुमित्रानन्दन पंत' को प्रकृति का कवि कहा जाता है। प्रकृति के अभाव में शायद उनका कवि जीवन गौण रह जाता। वे स्वयं लिखते हैं -"कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक

---

1. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण : डॉ० किरण कुमारी गुप्ता, पृ० 225.

देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था ।[1]

पंत जी ने प्रकृति को न जाने कितने रूपों में ग्रहण करके अपने काव्य का विषय बनाया है । यथा- आलम्बन, उद्दीपन, अलंकार, रहस्य, मानवीकरण, प्रस्तुत - अप्रस्तुत, उपदेशक, दार्शनिक, तत्व-चिन्तन आदि रूपों में प्रकृति-चित्रण करना पंत जी की अपनी विशेषता है ।

पंत जी साधारणतः छायावादी कवि ही माने जाते हैं, परन्तु प्रकृति इनके काव्य का मुख्य विषय रही है । इनको प्रकृति से अगाध प्रेम था, इसलिए इनकी प्रगतिवादी रचनाओं में भी प्रकृति के विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं । यथा -

(क) प्रकृति का आलम्बन रूप : पंत जी स्वभावतः प्रकृति के कवि हैं, प्रकृति के सुन्दर रूप की अभिव्यक्ति उनके काव्य में अधिक हुई है । प्रकृति का शुद्ध नैसर्गिक रूप में चित्रण करना आलम्बन के अन्तर्गत आता है । इसमें प्रकृति कवि के लिए साधन न बनकर साध्य बन जाती है । कवि प्रकृतिका निरीक्षण करता है और उसके सूक्ष्मतम तत्वों के प्रति आकर्षित होता है । प्रकृति का क्षेत्र इनके लिए मधुर स्वर्ग है, जहाँ जीवन की समस्त बाधा दूर हो जाती है। वे सर्वत्र प्रकृति के भेद भरे संदेश सुनते हैं -

"बासों का झुरमुट,
संध्या का झुटपुट,
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी·वी;टी·टुट्-टुट् ।"[2]

---

1. शिल्प और दर्शन : पंत, पृ० 36.
2. युगान्त (युगपथ कविता से): पृ० 12.

इस अवतरण में प्रकृति का 'स्वतन्त्र रूप' में चित्रण है । इन पंक्तियों में चिड़ियों की ध्वनि की ज्यों का त्यों अनुकरण है । कवि ने प्रकृति का सहारा लेकर, चिड़ियों की वास्तविक ध्वनि सुनवा दी है । पंत जी की इन पंक्तियों में अंग्रेज कवि वर्ड्सवर्थ का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

झंझा में नीम' नामक कविता में पंत जी ने हवा के झोंकों से हिलती हुई नीम का कितना सजीव चित्रण किया गया है-

"सर-सर, मर - मर
रेशम के से स्वर भर
घने नीम दल
लंबे पतले, चंचल
श्वसन-स्पर्श से
रोम हर्ष से
हिल-हिल उठते प्रतिपल ।"[1]

इन पंक्तियों में नीम कवि के लिए साध्य बन गई है, और निरन्तर हवा के झोंके लगने के कारण नीम भयभीत होकर कमजोर और निर्बल हो गयी है एवं उसके पत्ते झरने लगे हैं -

"वायु वेग से अविरल
धातु-पत्र से बज कल,
सिसक-सिसक साँसें भर
भीत, पीत, कृश, निर्बल
नीम सकल दल
झर-झर पड़ते प्रतिपल ।"[2]

---

1. युगवाणी (झंझा में नीम नामक कविता से): पृ० 93.
2. वही, पृ० 93.

प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि ने यह दिखाना चाहा है कि जिस तरह निरन्तर आँधी के झोंके लगने से नीम कृश हो गया है और उसके पत्ते झरने लगे हैं, उसी प्रकार इस संसार के सर्वहारा वर्ग के लोग जो निरन्तर आघात सहते रहते हैं, वे अन्दर ही अन्दर हट से जाते हैं ।

खेतों में दूर-दूर तक मखमल के समान हरियाली बिछी हुई है, जिस पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो ऐसा लगता है कि जैसे किसी ने चाँदी की जाली बनाकर फर्श पर बिछा दी हो -

"फैली खेतों में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटी जिससे रवि की किरणें
चाँदी की सी उजली जाली ।"[1]

इन पंक्तियों में कवि ने प्रकृति का कितना वैभव सम्पन्न रूप प्रस्तुत किया है कि, फर्श पर मखमल बिछा हुआ है और जब उस पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किसी ने चाँदी की जाली बनाकर फर्श पर बिछा दी है ।

कवि ने जगत का एवं उसमें विद्यमान पदार्थों का निम्न पंक्तियों में वर्णन किया है -

"यह रवि शशि का लोक
जहाँ हँसते समूह में उडुगण
जहाँ चँहकते विहग
बदलते क्षण-क्षण विद्युत प्रभंजन

---

1. ग्राम्या (ग्रामश्री नामक कविता से) : पृ0 35.

यहाँ वनस्पति रहते
रहती खेतों की हरियाली
यहाँ फूल हैं, यहाँ ओस
कोकिला, आम की डाली ।"[1]

कवि को प्रकृति से अगाध प्रेम है, इसलिए वह संसार में विद्यमान सभी प्राकृतिक पदार्थों का विश्लेषण कर उनकी महत्ता सिद्ध करना चाहता है, पर विशेष रूपसे खेत खलिहान के आसपास उसका मन अधिक रमता है -क्योंकि वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य किसान मजदूरों के श्रम कणों से सिक्त है, मानवीय श्रम का स्पर्श पाकर आकृति का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है।

§2§ प्रकृति का उद्दीपन रूप : उद्दीपन रूप में प्रकृति मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करती हुई चित्रित की जाती है । प्रकृति संयोग-वियोग, सुख-दु:ख दोनों ही स्थितियों में मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करती है । उद्दीपन के रूप में प्रकृति-चित्रण पंत की अनेक रचनाओं में प्राप्त होता है । यह उद्दीपन की परम्परा रीतिकाल से ही चली आ रही, है । उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण करते समय कवि अपने अनुसार विश्व को देखता है । उसकी प्रसन्नता में समस्त संसार सुखी दिखाई देता है । तथा दुख में सारा संसार दिखाई देता है । वियोग की स्थिति में वसन्त की मादकता विरहाग्नि को उद्दीप्त कर देती है । कोयल अपनी वेदना को और भी अधिक तीव्रता प्रदान करती है -

"काली कोकिल सुलगा उर में
स्वरमयी वेदना का अंगार

---

1. ग्राम्या §ग्रामचित्र नामक कविता से§: पृ0 16.

आया बसन्त घोषित दिगन्त
करती भर पावक की पुकार ।"[1]

पंत के यहाँ पक्षी केवल विरह वेदना बढ़ाने का काम नहीं करता, वह तो स्वयं में इतना समर्थ है कि अपने गीतों से इस पीड़ित जगती को जीने का संदेश देता है और थके-हारे प्राणों में नया स्पन्दन भरता है -

"जगती के जनपथ कानन में,
तुम गाओ विहग अनादि गान
चिर शून्य निखिल पीड़ित जग में
निज अमर स्वरों में भरो प्राण ।"[2]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि, पक्षी से पृथ्वी में ऐसा गान गाने के लिए कहता है, जिससे इस संसार के जितने भी पीड़ित प्राणी हैं, उनकी पीड़ा दूर हो जाए और उनके प्राणों में नयी चेतना भर जाए ।

"मरकत वन में आज तुम्हारी नव प्रवाल की डाल,
जगा रही उर में आकुल आकांक्षाओं की ज्वाल
पीपल, चिलबिल, आम्र, नीम की पल्लव, श्री सुकुमार
तुम्हीं उठाए हो, पर वसुधा का मधु यौवन भार"[3]

यहाँ कवि यह दर्शाना चाहता है कि जिस तरह वन में एक डाल जब वासन्तिक वैभव से लद जाती है तो उस पर विभिन्न पक्षी चहकने लगते हैं । उसी तरह से प्रकृति सुषमा मन में नई-नई आकांक्षाओं को जगाती है

---

1. युगान्त , पृ0 13.
2. वही (युगपथ नामक कविता से): पृ0 19
3. युगवाणी (पलाश नामक कविता से), पृ0 88.

और व्यक्ति नई स्फूर्ति अनुभव करने लगता है, उसके मन में यह विश्वास पैदा हो जाता है कि वह इस रूढ़िबद्ध समाज से छुटकारा पाकर एक स्वर्णिम भविष्य का निर्माण कर सकता है । प्रकृति से प्रेरणा लेकर कवि पुरातनता को समाप्त कर नवीनता लाने का संदेश देता है -

"ज्यों मधुवन में गूँजते भ्रमर
नव आम्र कुंज में पिकी मुखर
मेरी उर तंत्री से रह-रह
गीतों के मधुर फूटते स्वर
ज्यों झरते हरसिंगार झर-2
स्मित हिम फुहार कण फहर-2
मेरे समानस से सुन्दरता
निःसृत होती त्यों निखर-2
गिरि उर से त्यों बहते निर्झर
रवि शशि से लिग्म मधु स्तर कर
मेरे मन की आवेश शान्ति
गीतों में पड़ती बिखर-2 ।"[1]

कवि कहता है कि जिस तरह वसन्त के आने के बाद भौरे मेवन में गुंजार करते हैं एवं जिस तरह आम के वृक्ष में छोटे-छोटे फललगने के बाद वहाँ पर कोयल कूकने लगती है, उसी तरह मेरे मन में नूतनता लाने के लिए नए-नए भावों का संचार हो रहा है ।

कवि को आषाढ़ मास की संध्या उद्दीप्त करती है और वह अतीत की मधुर स्मृतियों में खो जाता है -

---

1. युगवाणी (आवेश नामक कविता से): पृ० 113.

"नव असाढ़ की संध्या में, मेघों के तम में कोमल
पीड़ित एकाकी शय्या पर, शत भावों से विह्वल
एक मधुरतम स्मृति पल भर, विद्युत सी जलकर उज्ज्वल
याद दिलाती मुझे हृदय में, रहती जो तुम निश्चल॥"[1]

वह केवल अतीत की स्मृतियों में ही नहीं खोया रहता बल्कि प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूप उसके मन में भविष्य के स्वप्न भी जगाते हैं और वह आने वाले कल का ताना-बाना बुनने लगता है -

"नव असाढ़ के मेघों से घिर रहा बराबर अम्बर,
मै बरामदे में लेटा, शय्या पर पीड़ित अवयव
मन का साथी बना बादलों का विषाद है नीरव
सक्रिय यह सकरूण विषाद-मेघों से उमड-उमड़ कर
भावी के बहु स्वप्न, भाव बहु व्यथित कर रहे अंतर
मुखर विरह दादुर पुकारता उत्कंठित भेकी को
वर्हभार से मोर लुभाता मेघ-मुग्ध केकी को
आलोकित हो उठता मुख से मेघों का नभ चंचल
अंतरतम में एक मधुर स्मृति जग-जग उठती प्रतिपल।"[2]

प्रस्तुत अवतरण में कवि का ध्यान जीवन के गम्भीर प्रश्नों से एक पल के लिए भी हटता नहीं है। यह उन स्वप्नों को साकार करना चाहता है जिन्हें उसने अपने हृदय में संजोकर रखा है। निश्चय ही ये स्वप्न सहज मानवीय राग से रंजित हैं और उन्हीं को साकार करने के लिए कवि का हृदय छटपटाता है। प्रकृति उसके हृदयस्थ भावों को उद्दीप्त

---

1. ग्राम्या (याद नामक कविता से): पृ० 106.
2. वही.

करने में सहयोग करती है और वह प्रकृति के स्वर में स्वर मिलाता हुआ, जीवन की मधुर स्मृतियों में खो जाता है ।

(3) पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति चित्रण : पृष्ठभूमि के रूप में हिन्दी के काव्य ग्रन्थों में प्रकृति का बहुत चित्रण हुआ है । कुशल कवि प्रकृति को पृष्ठभूमि में रखकर मानवीय भावनाओं को सफलतापूर्वक चित्रित कर सकता है - प्रकृति चित्रण की पृष्ठभूमि में वातावरण की उपस्थित करने में भी सहायता मिलती है । जहाँ गम्भीर वातावरण चित्रित करने की आवश्यकता होती है, वहाँ कवि प्रकृति को गम्भीर रूप में उपस्थित करता है और जहाँ उसे उल्लासपूर्ण वातावरण प्रस्तुत करना होता है, वहाँ वह प्रकृति के उल्लासपूर्ण रूप को प्रस्तुत करता है । विसंगतियों से भरे इस समाज को बदलकर एक नए साम्यवादी समाज को लाने के लिए कवि लाल-क्रान्ति का समर्थन करता है और इस महत् उद्देश्य को पाने के लिए वह अपना सन्देश प्रकृति के माध्यम से प्रसारित करता है -

"कंकाल जाल जग में फैले, फिर नवल रुधिर पल्लव लाली
प्राणों की मर्मर से मुखरित, जीवन की माँसल हरियाली
मंजरित विश्व में यौवन के, जगकर जग को पिक मतवाली
निज अमर प्रणय-स्वर मदिरा से, भर दे नवयुग की प्याली ।"[1]

कवि कामना करता है कि इन जीर्ण-शीर्ण पत्तों वाले वृक्षों में पुन: छोटे-छोटे, लाल-लाल कोमल पत्ते आ जायें एवं उनमें पुन: कोयल कूकने लगे और नवयुग आ रहा है, इस बात का सन्देश देने लगे ।

---

1. युगान्त : (द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र), पृ0 117-118.

उसी प्रकार से जो विभिन्न संकीर्णताओं में घिरा हुआ मनुष्य है, उसके पुराने विचारों को मिटाकर उसमें नूतन विचार उत्पन्न किए जायें जिससे पुनः यह संसार मनुष्यों के रहने लायक बन जाये -

"निष्प्राण विगत युग मृव विहंग
जग नीड़ स्वप्न औ सांसहीन,
च्युत, अस्त व्यस्त पंखों से तुम
झर-झर अनन्त में हो विलीन ।"[1]

कवि आज के इस संसार को व्यर्थ का एक स्थान मानता है जिसमें यह समाज रूपी पक्षी निष्प्राण होकर जी रहा है । कवि चाहता है कि वह पक्षी जो निःचेष्ट सा हो गया है, आए, धीरे-धीरे अपने पुराने पंखों को त्याग दे और नव-जीवन का स्वागत करे ।

"हे पूर्ण प्राकृतिक सत्य, किन्तु मानव जग
क्यों म्लान तुम्हारे, कुंज, कुसुम, आतप खग ।"[2]

पंत के प्रकृति चित्रण पर उनके दार्शनिक चिन्तन का प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है । वे मनुष्य कोपरम सत्य का मूर्तरूप मानते हैं । मनुष्य ही नहीं, इस सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ अपने प्रकृत रूप में, सत्य की प्रतिमूर्ति है । फिरभी हर जगह उदासी छायी रहती है । संसार का सारा वातावरण कुंठाग्रस्त हो गया है । प्रकृति के सुरम्य कुंज-कछार म्लान पड़ गए हैं । यह बात चिन्ताजनक है । कवि इस नैराश्य को मिटाकर जीवन में नया उत्साह करने का आकांक्षी है ।

---

1. युगान्त : पृ० ।
2. वही, पृ० 32.

"पतझर यह मानव जीवन में आया पतझर
आज युगों के बाद हो रहा नया युगान्तर
बीत गए बहु हिम बरसा, तप, विभव-पराभव
जग जीवन में फिर बसन्त आने को अभिनव ।"[1]

कवि, पुरातनता को विनष्ट होते देखकर प्रसन्न होता है । यह सोचता है कि यह मनुष्य के जीवन में जो पतझर अर्थात् पुरानी रूढ़ियाँ समाप्त हो रही हैं, और नवीन विचारधारायें आ रही हैं, उससे संसार पुनः खुशहाल हो जायेगा । जिस तरह वनों में वसन्त आने पर प्रकृति खुशहाल हो जाती है, उसी तरह से नई विचारधारायें आने पर संसार में शान्ति व समृद्धि आयेगी ।

"झरते हों झरने दो पत्ते डरो न किंचित
नव मुकुल मंजरियों से मन होगा शोभित
सदियों में आया मानव जग में यह पतझर
सदियों तक भोगोगे नव मधु का वैभव वर ।"[2]

कवि नवीनता के प्रति आग्रही है । उसे इस बात की प्रसन्नता है कि यदि पुराने पत्ते झर रहे हों तो उन्हें झर जाने देना चाहिए । पुरानी रूढ़ियों को समाप्त होना, नए समाज के लिए एक शुभ संकेत ही है, क्योंकि जिस तरह डालियों में नवीन पत्ते आने से वृक्ष सुन्दर लगने लगता है, उसी प्रकार नवीन विचारों से समृद्ध होकर ही मानव समाज का कल्याण संभव है । निम्नलिखित पंक्तियों में पंत जी ने अपनी इसी प्रगतिशील दृष्टि

---

1. युगवाणी : पृ० 30.
2. वही.

का परिचय दिया है -

"रिक्त हो रहीं आज डालियाँ डरो न किंचित
रक्त पूर्ण, मांसल होंगी फिर जीवन रंजित
जन्मशील है मरण, अमर मर-मर कर जीवन
झरता नित प्राचीन, पल्लवित होता नूतन ।"[1]

कवि सामाजिक परिवर्तन चाहता है । वह सड़ी गली सामाजिक मान्यताओं को बदलकर एक अभिनव साम्यवादी समाज की संरचना का स्वप्न देखता है । चारों ओर से उठ रहे परिवर्तनकायी स्वर उसे बल प्रदान करते हैं । किसी भी व्यापक बदलाव के लिए जन जागृति पहली शर्त होती है और ऐसा लगता है कि अब वह समय आ गया है, जब महाक्रान्ति का शंखनाद हो सकता है । सर्वत्र हलचल है, उत्साह है, और कुछ कर गुजरने की चाह है । कवि इस सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करने के लिए प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में अंकित करता है -

"क्यों चंचल, व्याकुल जन फूट रहा
मधुवन में ज्यों सौन्दर्योल्लास
कलि-कुसुमों में राग रंगमयशक्ति विकास
आकुल इसीलिए जन-जन मन
दौड़ रहा रक्तिम पलाश में जीवन ज्वाल
आम्र मौर में मदिर गंध
तरूओं में तरूण प्रवाल ।"[2]

---

1. युगवाणी, पृ0 30.
2. युगवाणी (मुझे स्वप्न दो नामक कविता से), पृ0 83.

जन जागृति का चित्रण करने के लिए पंत जी प्रकृति का सहारा लेते हैं और प्रकृति के ही माध्यम से वे प्रगतिशील जीवन दृष्टि का अभिनन्दन भी करते हैं। उन्हें पूरा विश्वास है कि आने वाला कल अन्धकार मुक्त होगा और पूरे संसार में एक नई रोशनी फैलेगी -

"उद्भिज के जीवन विकास में हुआ नवीन प्रभात
तरूओं का हरितांधकार हो उठा ज्योति-अवदात
नव जीवन का रूधिर शिराओं में कर वहन, पलाश
तृण-तरू से मानव-जग में तुमने भरा प्रकाश।"[1]

कवि एक दार्शनिक की तरह कहता है कि व्यक्ति को सुख - दुःख में विचलित नहीं होना चाहिए। हर परिस्थिति में एक सा जीवन व्यतीत करना चाहिए। भय का कोई कारण नहीं है। मनुष्य असीम शक्ति सम्पन्न है, उसे निर्भय जीवन जीना चाहिए-

"कोमल कटु-कटु कोमल बनकर,
उज्ज्वल मंद-मंद उज्ज्वलतर
दिश निशा के ज्योति तमस मिल
साँझ प्रात अभिसार करो
पतझर में मधु, मधु में पतझर,
सुख में दुःख, दुःख में सुख बनकर
जन्म-मृत्यु में - जन्म मृत्युतर
भव की जीवन भीति हरो।"[2]

---

1. युगवाणी (~~मुझे-स्वप्न-दे~~ पलाश के प्रति, नामक कविता से), पृ० 89.
2. वही (आह्वान नामक कविता से), पृ० 108.

व्यक्ति जीवन से कभी-कभी निराश हो जाता है, उसे चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देता है । प्रभात, संध्या का सौन्दर्य भी उसके मन की उदासी दूर नहीं कर पाता । एक-एक क्षण बड़ी कठिनाई से गुजरता है । मन की इस अवस्था का चित्र पंत जी ने प्रकृति के माध्यम से अनावृत किया है -

"आता मौन प्रभात अकेला, सन्ध्या भरी उदासी,

यहाँ घूमती दोपहरी में, स्वप्नों की छाया सी ।"[1]

(4) प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप : प्रकृति का प्रतीक रूप में वर्णन हिन्दी काव्य में आरम्भ से चला आ रहा है । इसमें कवि अपने भाव प्रकट करने के लिए प्रकृति को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करता है । जैसे अन्धकार का प्रयोग निराशा के लिए, प्रकाश का प्रयोग आशा के लिए आदि ।

कवि समाज को प्रगतिशील दृष्टि में देखता है । वह प्राचीन परम्पराओं और सड़ी-गली मान्यताओं को त्यागकर नवीन सामाजिक चेतना के आलोक में साँस लेना चाहता है । मनुष्य की प्रगति में पुरातनता बाधक है, इसलिए कवि उसका विरोध करता है और कामना करता है कि समाज की जड़ता जल्दी से जल्दी दूर हो ताकि एक नए साम्यवादी समाज का स्वप्न पूरा हो सके । अपने इसी चिन्तन को पंत जी ने प्राकृतिक प्रतीकों के सहारे अभिव्यक्त किया है । वृक्ष के जीर्ण-शीर्ण पत्ते सामाजिक रूढ़ियों और निष्प्राण परम्पराओं के प्रतीक हैं, जिनके यथाशीघ्र झर जाने में ही

---

1. ग्राम्या (ग्राम चित्र नामक कविता से), पृ० 16.

विश्व का कल्याण है -

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे त्रस्त - ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण
हिम-ताप पीत मधु-वात-भीत
तुम वीतराग जड़ पुराचीन ।"[1]

बीता हुआ युग एक मृत पक्षी के समान है, जिसमें जीवन के सारे लक्षण समाप्त हो चुके हैं, शव को अधिक समय तक सँभाल कर रखना ठीक नहीं होता । उसे तो यथाशीघ्र विसर्जित कर दिया जाना चाहिए । इसी में सबका भला है । नया युग हमारी बाट जोह रहा है । हमें विगत दिनों का मोह त्यागकर आने वाले कल का स्वागत करना चाहिए -

"निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग
जग नीड़ शब्द औ श्वासहीन,
च्युत अस्त व्यस्त पंखों से तुम,
झर-झर अनन्त में हो विलीन ।"[2]

पंत जी पक्षी को मनुष्य का प्रतीक मानकर कह रहे हैं कि मेरे जीवन रूपी पक्षी ! तुम जीवनदायक गीत गाओ और पवन् तुम हवा करो ताकि प्राणियों के प्राणों में, जो निश्चेष्ट से हो गए हैं-उनमें पुनः जीवन का संचार हो सके -

"आः गा-2, शत्-शत् सहृदय खग
संध्या बिखरा निज स्वर्ग सुभग

---

1. युगान्त, पृ0 118-119.
2. युगान्त, (द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र नामक कविता से), पृ0 117-118.

और गंध पवन झल मंद - विजन
भर रहे नया जीवनइसमें ।"[1]

पंत प्रभात को आशा और उल्लास का प्रतीक मानकर कह रहे है कि जैसे ही प्रात: होने वाला होता है तो हृदय में तरह-तरह की आशाओं का संचार होने लगता है जिससे हृदय रूपी सूने आकाश पर फिर से उल्लास छा जाता है ।

"नव मधु प्रभात ! गूंजते मधुर
उर-2 में नव आशाभिलाष
सुख सौरभ जीवन कलरव से
रम जाता सूना महाकाश ।"[2]

पतझर भय का कारण नहीं है, क्योंकि पुराने पत्तों से रिक्त डालियों में ही नए पत्तों का स्फुरण होता है । इसी प्रकार, प्राचीन परम्पराओं का अन्त होने पर ही नयी मान्यताओं को स्वीकृति मिलती है । यही सृष्टि का नियम है । अत: पुरानेपन का मोह त्यागकर नई व्यवस्था को अंगीकार करना ही श्रेयस्कर होगा। पुराने पत्तों का झरना और नए पत्तों काआना - पुरानी और नई चिन्तनधाराओं का प्रतीक है, जिसे पंत जी ने मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है -

"रिक्त हो रहीं आज डालियाँ डरो न किंचित
रक्त पूर्ण मांसल होंगी फिर, जीवन रंजित
जन्मशील है मरण, अमर मर-2 कर जीवन
झरता नित प्राचीन, पल्लवित होता नूतन ।"[3]

---

1. युगान्त (बाँसों का झुरमुट नामक कविता से), पृ0 118-119
2. युगान्त , पृ0 51.
3. युगवाणी : (गंगा की प्रभात नामक कवितायें), पृ0 39

निम्नलिखित पंक्तियों में पृथ्वी को जीवन का प्रतीक मानकर कवि कहता है कि पृथ्वी के सम्पूर्ण अंग अर्थात् पेड़ आदि को देखकर ऐसा लगता है, जैसे पृथ्वी हँस रही हो । यह दृश्य नेत्रों को सुख प्रदान करता है और उससे जीवन में प्रसन्नता आती है -

"हँसते भू के अंग-अंग , हरित-2 रंग
दूर्वा पुलकित भूतल, नवोल्लसित तृण,तरू,दल
इंगित करते चंचल, जीवन का जीवित रंग
हरित-2 रंग, श्यामल कोमल, शीतल
लोचन, प्रिय, प्राणोज्ज्वल ।"[1]

रक्त शतदल कमल पर सुशोभित युगलक्ष्मी का चित्र साम्य-वादी विचारधारा से अनुप्राणित है । लाल कमल लाल क्रान्ति का प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुआ है । प्रकृति का यह प्रतीकात्मक रूप पंत जी की प्रगति-शील दृष्टि का परिचायक है -

"फुल्ल रक्त शतदल पर शोभित
युगलक्ष्मी लोकोज्ज्वल
अयुत करों से लुटा रही
जनहित जनबल, जनमंगल ।"[2]

कवि की दृष्टि साफ है । वह व्यापक सामाजिक बदलाव चाहता है । पुरानी रूढ़ियों और रीति-रिवाजों को मिटाने की बात करता है और उनके स्थान पर नयी परम्पराओं का स्वागत करने के लिए तैयार खड़ा है । सूखे पत्तों के झड़ जाने में ही नए पत्तोंकेआने की

---

1. युगवाणी {हरीतिया नामक कविता से}: पृ० 39.
2. ग्राम्या : {स्वप्नपट नामक कविता से}, पृ० 12.

सम्भावना बनती है, इसलिए प्रकृति का यह प्रतीक कवि बार-बार प्रयोग करता है -

"झरें जाति द्रुत वर्ण, पर्ण, घन, अन्ध नीड़ से रूढ़ि रीति छन।
व्यक्ति राष्ट्र गत-राग-द्वेष-रण, झरे भरे विस्मृति में तत्क्षण ।"[1]

जीवन का अँधेरा दूर भगाने के लिए प्रकाश का आना अनिवार्य है । यह प्रकाश नव्य चेतना को अपने साथ लाता है और जीवन उत्साह तथा उमंग से खिल उठता है । कवि अंधकार और प्रकाश को समाज की प्राचीन और नवीन मान्यताओं का प्रतीक बनाकर अपनी रचना का ताना-बाना बुनता है । वह सच्चे अर्थ में समाज की पुनर्रचना चाहता है-

"का तो अंधकार तन, मन का
नव प्रकाश के रजत - स्वर्ण से
बुनो तरूण पट नव जीवन का ।"[2]

कवि सामाजिक परिवर्तन का सन्देश प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से देना चाहता है । इसलिए वह बार-बार समाज की जीर्ण शीर्ण परम्पराओं पर चोट करता है और मनुष्य के हृदय में साम्यवादी जीवन दर्शन का आलोक फैलाना चाहता है -

"ओ जीवन के आँगन में
स्वर्णिम प्रभात जग के लाओ
मानव उर के प्रस्तर युग के
इस अंध तमस को बिखराओ ।"[3]

---

1. युगान्त : पृ० 13.
2. युगवाणी : (लेनदेन नामक कविता से), पृ० 109
3. वही; (प्रकाश नामक कविता से), पृ० 170.

(5) प्रकृति का मानवीकृत रूप : प्रकृति को मानव की तरह चेतनावस्था में देखना ही मानवीकरण है । हिन्दी में मानवीकरण के रूप में प्रकृति का वर्णन करना मुख्यत: छायावादी कवियों की देन है । मानवीकरण के रूप में प्रकृति का चित्रण अन्य कवियों की भाँति पंत जी ने पर्याप्त मात्रा में किया है और इस प्रकार के चित्रण में उन्हें सफलता भी मिली है ।

निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने संध्या को एक स्त्री के रूप में चित्रित करते हुए छायावादी शैली का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है-

"कहो तुम रूपसि कौन
व्योमसे उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप
सुनहला फैला केश कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन ।"[1]

इसी प्रकार निम्नांकित पंक्तियों में कवि ने भवन का मानवीकरण किया है और उसे एक चेतन प्राणी की तरह कार्य करते हुए चित्रित किया है -

"औ गंध पवन, झल मंद बिजन
भर रहे नया जीवन इनमें
ढीली है जिनकी रग-रग ।"[2]

ऊषाकाल जागरण का सन्देश देता है । कवि उषा के आगमन पर उसका हार्दिक अभिनन्दन करता है और उसे एक नायिका के

---

1. युगान्त (बाँसों का झुरमुट नामक कविता से): पृ0 118-119.
2. युगवाणी (बंद तुम्हारे द्वार) पृ0 67.

रूप में सम्मान देता है । उसके अद्भुत सौन्दर्य की झाँकी प्रस्तुत करने के लिए कवि ने ऊषा का मानवीकृत रूप अंकित किया है -

"बन्द तुम्हारे द्वार ?
मुसकाती प्राची में ऊषा ले किरणों का हार
विहँसी सरसी में सरोजिनी
सोई तुम इस बार ।"[1]

कवि का हृदय अदम्य उल्लास और उत्साह से भरा हुआ है । वह सृष्टि के कण-कण में जीवन के विविध रंग देखता है । भूतल पर छाई हुई वनस्पतियाँ मनुष्य के मन में जिजीविषा जगाती हैं । सारा प्राकृतिक वातावरण ऐसा लगता है, मानों हँसता बोलता हो-

"हँसते भू के अंग-अंग, हरित-हरित रंग
दूर्वा पुलकित भूतल, नवोल्ललित तृण, तरू-दल
इंगित करते चंचल, जीवन का जीवित रंग ।"[2]

चिलबिल के पादप मित्रों की तरह आपस में हिल-मिलकर जी रहे हैं और जीवन की कठिन परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं । यह हृदय कवि को मन्त्र-मुग्ध कर देता है और मुक्त भाव से कह उठता है -

"उस निर्जन टीले पर, दोनों चिलबिल
एक दूसरे से मिल, मित्रों से हैं खड़े
मौन मनोहर दोनों पादप, सह वर्षा तप ।"[3]

---

1. युगवाणी :{बन्द तुम्हारे द्वार}, पृ० 67
2. वही, {हरीतिमा नामक कविता से}: पृ० 77
3. वही, {दो मित्र नामक कविता से}, पृ० 92.

पंत जी के लिए प्रकृति निर्जीव जड़ पिण्ड मात्र नहीं है, वह तो पन्त जी की सच्ची सहचर है, वे प्रतिपल उसके साथ उठते-बैठते, हँसते-रोते हैं । प्रकृति उनके सुख-दुःख की साक्षी भी है और सहभागिनी भी । सन्ध्या सुन्दर एक नायिका की तरह पूरी शिष्टता के साथ आती जाती है और कवि का हृदय मधुर स्मृतियों से भर देती है -

"विदा हो गई साँझ
विनत मुख पर झीना आँचल धर
मेरे एकाकी आँगन में
मौन मधुर स्मृतियाँ भर ।"[1]

कवि की दृष्टि भूतल पर ही नहीं टिकी रहती, वह तो अंतरिक्ष की भी खोज-खबर रखती है और आकाश के विशाल प्रांगण में होने वाली गतिविधियों का पूरा ब्यौरा प्रस्तुत करती है । संध्या, तारा पंत जी की ही तरह अपने एकाकी जीवन से घबराकर जीवन साथी की तलाश करता है और स्नेह-सिक्त जीवन, जीने की आकांक्षा व्यक्त करता है -

"सबसे ऊपर निर्जन नभ में, अपलक संध्या तारा
नीरव औ निःसंग, खोजता सा कुछ, चिर पथ हारा ।
साँझ-नदी का सूना तट, मिलता है नहीं किनारा
खोज रहा एकाकी जीवन, साथी स्नेह सहारा ।"[2]

<u>(6) अलंकार रूप में प्रकृति चित्रण :</u> कवि अपने काव्य के लिए उपमान अधिकतर प्रकृति के असीमित कोष से ही लेता है । इसलिए पंत जी के

---

1. ग्राम्या (याद नामक कविता से):, पृ० 106.
2. वही, (रेखाचित्र नामक कविता से), पृ० 71-72.

यहाँ अलंकार के रूप में प्रकृति-चित्रण अधिकता से मिलता है । अनुप्रास एक उत्प्रेक्षा के सहारे पंत जी ने प्रकृति के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं ।

पंत जी ने प्रस्तुत पंक्तियों में रूपक अलंकार का बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है -

"उर के चरखे में कात सूक्ष्म
युग-युग का विषय जनित विषाद
गुंजित कर दिया गगन जग का
भर तुमने आत्मा का निनाद ।"[1]

इसी प्रकार रूपक और उपमा अलंकार का प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में बड़ा सुन्दर बन पड़ा है । कवि कहता है कि मै जीवन रूपी डाली से जीर्ण पत्ते के समान झर जाता हूँ, सिर्फ इसलिए कि संसार रूपी वन में सुन्दर प्रातः का आगमन हो सके । सर्वत्र सुख-समृद्धि आ सके ।

"झर पड़ता जीवन डाली से
मै पतझर का सा जीर्ण पात
केवल जग कानन में
लाने फिर से मधु प्रभात ।"[2]

कवि को उपमा अलंकार बहुत प्रिय है । वह कभी प्रकृति को उपमान की तरह प्रयुक्त करता है तो कभी प्राकृतिक दृश्यों की उपमा करने के लिए भौतिक जगत से उपमान लुटाता है । निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकाश की उपमा चाँदी से की गई है और हवा की उपमा चंचल अचंल से-

---

1. युगान्त (बापू के प्रति नामक कविता से): पृ0 123.

2. युगान्त, पृ0 66.

"चाँदी सा फैला है प्रकाश,
चंचल अंचल सा मलयानिल ।"[1]

अपनी गीत रचना का रहस्य उद्घाटित करने के लिएकवि प्रकृति के प्रांगण से ही उपमान खोजता है । कवि का स्वर उसी प्रकार फूटता है, जैसे मधुवन में भ्रमर गुंजार करते हैं या फिर किसी नव्य अमराई में कोयल सुरीली तान छेड़ती है -

"ज्यों मधुवन में गूँजते भ्रमर,
नव आम्र कुंज में पिकी मुखर
मेरी उर तंत्री से रह-रह
गीतों के मधुर फूटते स्वर ।"[2]

कवि का सौन्दर्य बोध प्रकृति की नैसर्गिक छटा से अनुप्राणित है । उसके हृदय से सौन्दर्य की किरणें उसी प्रकार विकीर्ण होती हैं, जिस प्रकार हरसिंगार के पुष्प झरते हैं, या किसी वनप्रान्त में हल्की-हल्की बर्फ की फुहार पड़ती है । प्रकृति की पवित्रता कवि की सौन्दर्य दृष्टि को निखार देती है -

"ज्यों झरते हरसिंगार झर-झर
स्मित हिम फुहार कण फहर-फहर
मेरे मानस से सुन्दरता,
निःसृत होती त्यों निखर-निखर ।"[3]

---

1. युगान्त : पृ० 50
2. युगवाणी : {आवेश नामक कविता से}, पृ० 113.
3. वही.

अपने कथन को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कवि ने कहीं-कहीं विरोधाभास अलंकार का भी प्रयोग किया है । ऐसी अभिव्यक्ति के लिए प्राय: प्रकृति को ही कवि ने टटोला है और चमत्कारपूर्ण ढंग से अपनी बात रखी है । मरू प्रान्त में डूबने की कल्पना इसी प्रकार का प्रयत्न है -

"वस्तु ज्ञान से ऊब गया मै
सूखे मरू में डूब गया मैं
मेरे स्वप्नों की छाया में,
जग की वस्तु सत्य खो जाय ।"[1]

पंत जी जब खेत और खलिहान की ओर मुड़ते हैं, तब उनकी प्रगतिशीलता का तेवर साफ तौर पर देखा जा सकता है । गेहूँ और जौ के खेत में जब बालें निकलने लगती हैं, तब ऐसा लगता है, मानों वसुन्धरा रूपी नायिका अपने ही सौन्दर्य और समृद्धि में अभिभूत होकर रोमांचित हो रही हो । अरहर और सनई की कलियाँ आपस में जब टकराती हैं, तब ऐसा लगता है, मानों हमजोली सखियों की सुनहरी किंकिणियों से रून-झुन की आवाज आ रही है -

"रोमांचित सी लगती वसुधा
आई जौ गेहूँ मे बाली
अरहर सनई की सोने की,
किंकिणियाँ हैं शोभाशाली ।"[2]

---

1. युगवाणी : (मुझे स्वप्न दो नामक कविता से), पृ0 83.
2. ग्राम्या : (ग्रामश्री नामक कविता से), पृ0 135.

जब शीतऋतु में प्रात:काल सर्दी पड़ती है और घना कोहरा छा जाता है, तो कुछ दिखाई नहीं देता । ऐसा लगता है कि जैसे पृथ्वी पर आकाश उतरकर आ गया हो, पर जैसे-जैसे धूप निकलती है और कोहरा छँटने लगता है तो ऐसा लगता है जैसे - खेत, बाग, गृह, वन आदि अंधकार से निकलते चले आ रहे हों । प्रकृति का यह दृश्य बहुत सुन्दर प्रतीत होता है ।

"प्रात: हो जाता जग,
भूपर आता ज्यों उतर गगन
सुन्दर लगते फिर कुहरे से
उठते से खेत, बाग, गृह,वन ।"[1]

(7) प्रकृति का नाम परिगणनात्मक रूप : इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण में कवि के द्वारा प्रकृति के पदार्थों के नाम गिनाए जाते हैं । पंत जी ने ग्राम श्री का वर्णन इसी शैली में किया है -

"महँके कटहल, मुकुलित जामुन,
जंगल में झरबेरी फूली
फूले आड़ू, नींबू, दाड़िम,
आलू, गोभी, बैगन, मूली ।"[2]

कवि ने इन पंक्तियों में कटहल, जामुन, बेरी, आड़ू, नींबू, दाड़िम, आलू, गोभी, बैगन, मूली आदि सब्जियों के नाम भर गिना दिए हैं और इस नाम परिगणन द्वारा ग्रामीण प्रकृति का सौन्दर्य-दर्शन कराया है ।

---

1. ग्राम्या : (ग्रामश्री नामक कविता से), पृ० 35.
2. वही, पृ० 135.

निम्नलिखित पंक्तियों में भी कवि ने अमरूदों, बेरों और आँवलों के पूरी तरह से पक जाने और मीठे हो जाने का वर्णन किया है और पालक, धनिया, लौकी और सेम के फूलने - फलने एवं टमाटर, मिर्च के पकने का चित्रण किया है । यह वर्णन अत्यन्त सीधा सादा है और ऐसा लगता है कि मानों कवि फलों और सब्जियों के नाम गिनाने के प्रति पूर्णतः समर्पित है -

"पीले, मीठे अमरूदों में, अब लाल-लाल चित्तियाँ पड़ीं
पक गए सुनहरे मधुर बेर, अँवली से तरू की डाल जड़ीं ।
लह-लह पालक, मह-मह धनिया, लौकी औ सेम फलीफूलीं
मखमली टमाटर हुए लाल, मिर्चों की बड़ी हरी थैलीं
गंजी को मार गया पाला, अरहर के फूलों को झुलसा
हाँका करती दिनभर बन्दर, अब मालिन की लड़की तुलसा।"[1]

नाम परिगणन पद्धति कलात्मक दृष्टि से स्तरीय नहीं मानी जाती ; क्योंकि इसमें तुकबन्दी की आड़ लेकर कवि वस्तुओं की एक सूची मात्र प्रस्तुत कर पाता है ; किसी गम्भीर भाव या विचार का उद्घाटन नहीं पाता । फिरभी कभी-कभी प्रतिभावान कवि भी ऐसे प्रयोग करने से नहीं चूकता और इसी प्रयोगशीलता के कारण पंत जी ने भी अनेकस्थानों पर प्रकृति-चित्रण करने के लिए उक्त शैली का सहारा लिया है । नव वसन्त का वैभव चित्रित करने के लिए कवि ने विभिन्न पुष्पों का नाम उल्लेख किया है -

"नव वसन्त की रूप राशि का ऋतु उत्सव, यह उपवन
सोच रहा हूँ, जन जग से क्या सचमुच लगता शोभन,

---

1. ग्राम्या (ग्रामश्री नामक कविता से); पृ0 136.

रंग रंग के खिले फ्लाक्स, वरबीना छपे डियाँथस
नत ड्रग ऐंटिह्विनम्, तितली सी पैंजी, पापी सालस
हँसमुख कैंडीटक्ट, रेशमी चटकीले नेशहररशम
खिली स्वीट पी-एबंडंस, फिल बास्केट औ ब्लू बैंटम ।"[1]

§1§ प्रकृति का रहस्यात्मक रूप : पंत जी प्रकृति को अव्यक्त सत्ता के रूप में देखते हैं । वह उन्हें कभी नक्षत्रों के रूप में मौन निमंत्रण देती है, कभी लहरों के रूप में हाथ उठाकर अपनी ओर बुलाती है, कभी खद्योतों के रूप में पथ दिखलाती है और कभी वह उनके स्वप्नों में आकर उन्हें छाया-जगत् में विचरण कराती है ।

युगों -युगों से गंगा का प्रवाह अनवरत रूप से चल रहा है । दिन बीतते चले जाते हैं, पर गंगा की धारा थमती नहीं है । अपने गर्भ में युग-युगान्तर का इतिहास समेटे गंगा का यह रहस्यमय रूप कवि के मन में जिज्ञासा का भाव जगाता है -

"ऐसे सोने के साँझ प्रात,
ऐसे चाँदी के दिवस रात
ले जाती बहा कहाँ गंगा
जीवन के युग क्षण । किसे ज्ञात ।"[2]

वर्षा ऋतु में बादलों का गम्भीर गर्जन धरती को कँपा देता है । पानी बरसता है, तो ऐसा लगता है कि मानों अपने सहस्त्र रूपों में आकाश ही धरती पर उतर आया हो । प्यासी धरती पर वर्षागम से उठने वाली सौंधी गंध बड़ी मनभावन लगती है ; किन्तु कवि का मन इतने भर से सन्तुष्ट नहीं हो जाता । वह इस गंध के पीछे छिपे रहस्य

---

1. ग्राम्या : पृ0 120.
2. ग्राम्या : §गंगा नामक कविता से§, पृ0 42.

को जानना चाहता है । उस गंधी का पता लगाना चाहता है,जो उसकी साँसों में बंध बोलता है -

"कंपित करता वक्ष धरा का घन गम्भीर गर्जन स्वर,
भूपट ही आ गया उतर शत धाराओं में अम्बर,
भीनी-भीनी भाप सहज ही साँसों में धुल मिलकर
एक और भी मधुर गंध से हृदय दे रही है भर ।"[1]

निष्कर्ष :

प्रकृति-चित्रण पंत जी के काव्य का एम महत्वपूर्ण सोपान है । वे जीवन के आरम्भ काल से ही प्रकृति सौन्दर्य के उपासक रहे हैं । प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से जो विविधता पंत जी के काव्य में परिलक्षित होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

प्रकृति साहचर्य ने पंत को इतना अधिक प्रभावित किया कि आज हिन्दी साहित्य में वे प्रकृति और सौन्दर्य के अद्वितीय कवि माने जाते हैं । प्रकृति ने ही उन्हें आत्मतुष्टि प्रदान की है और प्रकृति के सहारे ही उन्होंने सहज भाव से जीवन की असह्य पीड़ा और दारूण दु:ख के क्षणों को झेला ।

युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या पंत जी की प्रगतिवादी काव्य कृतियाँ हैं । इन कृतियों में पंत जी ने प्रकृति को प्रगतिशील दृष्टि से देखा है, जबकि इसके पहले की रचनाओं में उनकी दृष्टि मोटे तौर पर

---

1. ग्राम्या : (याद नामक कविता से), पृ० 106.

छायावादी थी । यही कारण है कि पंत जी की प्रगतिशील कविताओं में प्रकृति का स्वरूप उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं से भिन्न है । प्रगतिवादी पंत के प्रकृति-चित्रों में कल्पना की उड़ान थमी सी प्रतीत होती है और कवि जीवन और जगत की चिन्ताओं को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करने के लिए आकुल दिखाई देता है । यहाँ प्रकृति कवि के विश्राम का केन्द्र न होकर जागरण का श्रोत बन जाती है । वह प्रकृति से जागृति का सन्देश प्राप्त करता है और सारे समाज को जगाने का संकल्प व्यक्त करता है । प्राकृतिक - परिवर्तन को जीवन का शाश्वत सत्य मानकर कवि सामाजिक परिवर्तन की माँग करता है और नए समाज के निर्माण का स्वप्न देखता है । प्रकृति के प्रति उसका जिज्ञासा भाव पूरी तरह समाप्त तो नहीं हुआ, किन्तु वह अपनी जिज्ञासा से अधिक ठोस सामाजिक यथार्थ-चित्रण को अधिक महत्व देता है, प्रकृति के माध्यम से जीवन की वास्तविकताका चित्र खींचता है । प्रकृति से अधिक उसे मानव जीवन प्रिय लगता है । गाँव के पिछड़े हुए दीन-हीन जनों के दु:ख दर्द अधिक सालते हैं । इस प्रकार पंत जी के प्रगतिवादी प्रकृति चित्रण में उनके छायावादी प्रकृति चित्रण में पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है । वह भिन्नता ही कवि की बदली हुई मानसिकता और उनकी दृष्टि की उदारता को व्यक्त करती है । यहाँ वे सचमुच एक प्रगतिशील कवि लगने लगते हैं ।

xxxxxxxxxxx
xxxxxxxxx
xxxxxxx
xxxxx
xxx
x

तृतीय - अध्याय

रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में प्रकृति-चित्रण

वस्तुत: ; दिनकर जी प्रकृति के कवि न होकर जीवन के कवि हैं, परन्तु जीवन प्रकृति से सर्वथा मुक्त नहीं होता । 'दिनकर' जी ने प्रकृति के कोमल और परूष दोनों रूप ही चित्रित किए हैं । 'दिनकर' जी ने प्रकृति के कोमल और परूष दोनों रूप ही चित्रित किए हैं । 'दिनकर' जी के प्रकृति-चित्रण पर छायावाद का प्रभाव पड़ा है । कहीं-कहीं पर उनका प्रकृति के साथ पूर्ण तादात्म्य देखा जाता है । 'दिनकर जी' के काव्य में प्रकृति-चित्रण विविध रूपों में हुआ है । कवि ने प्राय: समस्त मान्य रूपों के आधार पर प्रकृति निरूपण किया है, उनके काव्य में प्रकृति के निम्न रूप दर्शित होते हैं - आलम्बन, उद्दीपन, पृष्ठभूमि, मानवीकरण, अलंकार, रहस्यात्मक रूप, प्रतीक रूप ।

(1) प्रकृति का आलम्बन रूप :

इस प्रकार के वर्णन में प्रकृति स्वयं ही प्रतिपाद्य होती है, 'दिनकर जी' काव्य में प्रकृति का स्वस्थ, सुन्दर रूप प्रस्तुत हुआ है । कवि अपने ग्राम्य जीवन के प्रकृति प्रेम को अपनी प्रारंभिक कृति 'रेणुका' में अभिव्यक्त किया है । 'कविता की पुकार' कविता में उनकी कविता नगर के कृत्रिम सौन्दर्य से भागकर गाँव के खण्डहरों में सौन्दर्य ढूँढ़ती है । उसे तो गाँव का यह सौन्दर्य पसन्द है -

> "स्वर्णांचला अहा ! खेतों में उतरी संध्या श्याम परी
> रोमंथन करती गायें आ रहीं रौंदती घास हरी,
> घर-घर से उठ रहा धुआँ, जलते चूल्हे बारी-बारी
> चौपालों में कृषक बैठे गाते कहँ अटके बनवारी
>
> x x x

कवि अषाढ़ की इस रिमझिम में धन खेतों में जाने दो
कृषक सुन्दरी के स्वर में अटपटे गीत कुछ गाने दो

x x x

वेणु कुंज में जुगनू वन मैं इधर उधर मुस्काऊँगी
हरसिंगार की कलियाँ बनकर वधुओं पर झड़ जाऊँगी ।"[1]

'रेणुका' का कवि जब वर्तमान में व्याप्त विसंगतियों से ऊब जाता है, तब वह प्रकृति की गोद में ही प्रश्रय लेता है । यद्यपि इस वृत्ति के कारण उन पर छायावादी प्रभाव स्वत: आ गया है । प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन रेणुका की निर्झरिणी, मिथिला में शरत, कोमल अमासंध्या, कलातीर्थ आदि में मुख्यत: द्रष्टव्य है ।

'कैसा होगा नन्दन वन' कविता में कवि ने प्रकृति का सुन्दर वर्णन किया है -

"रोमंथन करती मृगी कहीं, कूदते अंग पर मृगकुमार
स्वर्णातप में निर्झर तट पर, लेटे हैं, कुछ मृग-पद पसार
टीलों पर चरती गाय सरल, गो शिशु पीते माता का धन
यद्यपि बालायें ले-ले लघुघट, हँस-हँस करतीं द्रुम का सिंचन।"[2]

इसी प्रकार 'सिमिरया घाट' (कवि की जन्मभूमि) का वर्णन भी बड़ा मनोहारी है -

"गिरिराज-सुता सुषमा - भरिता,
जल-श्रोत नहीं कविता-सरिता

---

1. रेणुका : कविता की पुकार नामक कविता से, पृ0 14-15.
2. रेणुका (कोयल नामक कविता से):, पृ0 51.

वह कोमल कास - विकास-मयी
यह बालिका पावन हासमयी ।
वह पुण्य विकासिनि, दिव्य विभा,
वह भाव-सुहासिनि, प्रेम-प्रभा
हे जन्मभूमि ! शत बार धन्य !
तुझ सा न सिमरिया घाट अन्य ।"[1]

'रेणुका' का कवि प्रकृति में कभी रहस्य ढूँढने लगता है, कभी छायावादियों की भाँति प्रकृति पर मुग्ध होकर स्वयं ही रीझता दृष्टिगत होता है ।

"रसवंती" में प्रकृति के स्वतंत्र वर्णन अल्प ही हैं । प्रकृति की सारी सुषमा जैसे नारी में केन्द्रित हो गई है । 'रेणुका' में जिसे ऊषा, निर्झरिणी में नारी दिखाई देती थी - अब नारी में ऊषा, निर्झरिणी दिखाई देती है । पावसगीत जैसे शीर्षकों से लगता है कि प्रकृति का वर्णन होगा, परन्तु वहाँ भी कवि के विदग्ध ताप का उच्छ्वास ही निःसृत है।

विजन में संध्या, रचनाओं में प्रकृति के शान्त और गम्भीर रूप का दृश्य अंकित किया गया है -

"पर्ण कुंजों में न मर्मर गान
सो गया थककर सिमिकल पवमान
अब न जल पर रश्मि बिम्बित लाल
मूँद उर में स्वप्न सोया ताल
सामने द्रुमराजि तम साकार,
बोलते तम में विहग दो चार

---

1. रेणुका (मिथिला में शरद) नामक कविता से, पृ0 57.

झींगुरों में शोर खग के लीन,
दीखते ज्यों एक रव अस्पष्ट अर्थ विहीन ।"[1]

'दिनकर' जी ने सर्वत्र प्रकृति के शान्त रूप का चित्रण किया है क्योंकि उनको प्रकृति की ज्यादा तड़क-भड़क पसन्द नहीं है । वे प्रकृति को उसके स्वाभाविक रूप में ही पसन्द करते हैं, उसका बनाव श्रृंगार करके नहीं ।

प्रकृति के आलम्बन रूप का वर्णन रश्मिरथी के द्वितीय सर्ग में परशुराम केआश्रम का वर्णन करते हुए कवि नेइस प्रकार प्रस्तुत किया है-

"शीतल, विरल एक कानन शोभित अधित्यका के ऊपर
कहीं उत्स-प्रश्रवण चमकते, झरते कहीं शुभ्र निर्झर
जहाँ भूमि समतल, सुन्दर है, नहीं दीखते है पाहन
हरियाली के बीच खड़ा है, विस्तृत एक उटज पावन
आस-पास कुछ कटे हुए पीले धन खेत सुहाते हैं
शशक, मूस, गिलहरी, कबूतर घूम-घूम कण खाते हैं
कुछ प्रशान्त, अलसित बैठे हैं, कुछ करते शिशु का लेहन
कुछ खाते शाकल्य, दीखते बड़े, तुष्ट सारे गोधन ।"[2]

कवि का कहना है कि घाटी के ऊपर एक जगह है, वहाँ जमीन समतल है तथा पास में एक दो झरने भी झर रहे हैं । वहीं पर पास में परशुराम जी का आश्रम बना हुआ है । वे उसी शान्त स्थल में निवास करते हैं ।

---

1. रसवंती (संध्या नामक कविता से), पृ० 10.
2. रश्मिरथी : द्वितीय सर्ग, पृ० 9.

प्रकृति का आलम्बन रूप 'उर्वशी' में भी अंकित हुआ है । आलम्बन रूप के अन्तर्गत चन्द्र, तारक, रजनी एवं गंधमादन पर्वत का वर्णन हुआ है। कृति का प्रारम्भ ही चन्द्र और तारों की मनोरम छटा से होता है । सूत्रधार एवं नटी द्वादशी की चाँदनी रात का वर्णन करते हैं और उन्हें आकाश बाँहें खोलकर आलिंगन हेतु वसुधा पर झुका नजर आता है। प्रकृति जैसे स्वयं चन्द्रिका - मुकुट में अपना रूप देखकर अपने आपको भूल जाती है।

प्रथम अंक में प्रकृति का वर्णन आलम्बन रूप में है । वहाँ द्वादशी के निर्भेद्य गगन में चलने वाले चन्द्रमा और उसको आवृत करने वाले तारों का मोहक वर्णन तो है ही, मधुमास की कुसुम विभा और श्रान्त समीर का भी वर्णन है -

"नीचे पृथ्वी पर वसन्त की कुसुम विभा छाई है,
ऊपर है चन्द्रमा द्वादशी का निर्भेद्य गगन में
खुली नीलिमा पर विकीर्ण तारे यों दीप रहे हैं
चमक रहे हों नील चीर पर बूटे ज्यों चाँदी के

x x x

कुसुम-कुसुम में विरम भेद मधुमति में घूम रही हो ।"[1]

कवि ने स्वच्छ कौमुदी के वर्णन को विस्तार देकर इस प्रकृति सौन्दर्य का एक व्यापक और पूर्ण चित्र खड़ा किया है । कवि को सर्वत्र, पवित्रता ही दिखाई दे रही है, नीचे पृथ्वी पर वसन्त छाया हुआ है, ऊपर शुभ्र चन्द्रमा दिखाई दे रहा है और तारे ऐसे दिखाई दे रहे हैं जैसे चाँदी के बूटे हों ।

---

1. उर्वशी, पृ० 1.

द्वितीय अंक में कंचुकी द्वारा महाराजा पुरूरवा का जो सन्देश औशीनरी को सुनाया जाता है, उसमें पुरूरवा के शब्दों में प्रकृति का अत्यंत सीधा सादा लेकिन प्रभावशाली वर्णन है -

"पवन स्वास्थ्यदायी, शीतल, सुस्वादु यहाँ का जल है
झीलों में, बस, जिधर देखिये, उत्पल ही उत्पल है ।
लम्बे-लम्बे चीड़ ग्रीव अम्बर की ओर उठाए
एक चरण पर खड़े तपस्वी से हैं ध्यान लगाए
दूर-दूर तक बिछे हुए फूलों के नन्दन वन हैं ।
जहाँ देखिये, वहीं लता-तरूओं के कुंज भवन हैं
शिखरों पर हिमराशि और नीचे झरनों का पानी
बीचों-बीच प्रकृति सोयी है ओढ़ निचोली धानी ।"[1]

'दिनकर' जी ने प्रकृति को बहुत अच्छी तरह से निरखकर उसके एक - एक पदार्थ का ऊपर ही पंक्तियों में अत्यधिक सुन्दर वर्णन किया है जिसके कारण उनका प्रकृति चित्रण चित्रों का निर्माण करता चलता है ।

ऐसा ही प्रभावशाली वर्णन तीसरे अंक में गंधमादन पर्वत का है । गंधमादन पर सूर्योदय का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि -

"चन्द्रमा चला, रजनी बीती हो गया प्रात
पर्वत के नीचे प्रकाश के आसन पर
आ रहा सूर्य फेंकते बाण अपने लोहित
बिंध गई ज्योति से, वह देखो अरूणाभ शिखर
हिम-स्नात, सिक्त-बल्लरी-पुजारिन को देखो
पति को फूलों का हार नया पहनाती है

---

1. उर्वशी, पृ० 39.

कुंजों में जन्मा है कल कोई वृक्ष कहीं
वन की प्रसन्न विहगावलि सोहर गाती है ।"[1]

जब गंधमादन पर्वत पर प्रात:काल हो रहा था तो ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे चन्द्रमा जा रहा हो, रात्रि व्यतीत हो रही हो और प्रात:काल हो रहा हो और सूर्य अपने लाल-लाल बाण फेंकते हुए उदय हो रहा हो जिससे फूलों का खिलना प्रारम्भ हो जाता है तो ऐसा लगता है जैसे – सूर्य वल्लरी का पति हो और वल्लरी रोज अपने पति को फूलों का नया हार पहनाती हो और सर्वत्र प्रसन्नता ही प्रसन्नता व्याप्त हो जाती है ।

"पक्षी और बादल, ये भगवान के डाकिये हैं
जो एक महादेश से, दूसरे महादेश को जाते हैं
हम तो समझ नहीं पाते हैं, मगर उनकी लाई चिट्ठियाँ
पेड़, पौधे, पानी और पहाड़, बाँचते हैं
हम तो केवल यह आँकते हैं, कि
एक देश की धरती, दूसरे देश को सुगन्ध भेजती है
और वह सौरभ, हवा में तैरते हुए,
पक्षियों की पाँखों पर तिरता है ।"[2]

'दिनकर' जी ने पक्षियों और बादलों को स्वतन्त्र रूप में निहारा है और उन्हें भगवान का डाकिया बना दिया है जिससे वे एक जगह का सन्देश दूसरी जगह पहुँचाने का कार्य करते हैं ।

"ओ सुनील जल ! ओ पर्वत की झील तुम्हारे कर में
कमल पुष्प है या कोई यह रेशम का तकिया है

---

1. उर्वशी : पृ० 102.
2. हारे को हरिनाम, पृ० 53.

जिस पर धरकर सीस रात अप्सरी यहाँ सोई थी
और भाग जो गई प्रात, पौ फटते ही घबरा कर ?
कह सकते हो रंगपुष्प यह जल पर टिका हुआ है ?
अथवा इसके लाल तंतु मिट्टी से लगे हुए हैं ।"[1]

यहाँ पर 'दिनकर' जी ने रात समाप्त होने और प्रातः होने का स्वतंत्र चित्रण किया है और रात्रि को प्रातः से भयभीत देखा है क्योंकि उन्होंने कहा है कि कमल के तकिए पर सिर रखकर रात अप्सरी सोई थी लेकिन वह प्रातः से डरती है इसीलिए जैसे ही पौ फटी वैसे ही वह घबरा-कर भाग गई ।

"विश्व विभव की अमर-बेलि पर, फूलों का खिलना तेरा
शक्ति यान पर चढ़कर वह, उन्नत रवि से मिलना तेरा
भारत ! क्रूर समय की मारों,से न जगत् सकता है भूल
अब भी उस सौरभ से सुरभित, है कालिंदी के फल फूला"[2]

'दिनकर' जी की प्रकृति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है, उसको किसी भी प्रकार का कोई बन्धन नहीं है क्योंकि वह जब चाहती है तो फूलों के समान खिल जाती है और जब चाहती है तो वह शक्तियान पर चढ़कर सूर्य से मिलाप करने लगती है ।

"तिमिर का हो जाता संहार, विश्व की निद्रा जाती टूट
कौन आकर धीरे से प्राच्य, गगन की लाली लेता लूट
रश्मि के रथ पर हो आरूढ़, विश्व में बरसाता रवि -ताप
साँझ ही जा छिपता है कहाँ,जलाकर जगती का दुष्पाप"[3]

---

1. कोयला और कवित्व : पृ० 10.
2. प्रणभंग; पृ० 16
3. प्रणभंग :पृ० 58.

प्रातःकाल आशा, उल्लास का संचार करने वाला होता है, जब प्रातः होता है तो वह अंधकार का संहार करके आता है, प्रातः के आने से समस्त विश्व निद्रा में से जाग जाता है । किरणों के रथ पर विराजमान होकर सूर्य भगवान ताप बरसाने के लिए उदित हो जाते हैं और शाम होते ही पृथ्वी के पापों को जलाकर छिप जाते हैं ।

निम्नलिखित पंक्तियों में दिनकर जी उषा को आशा,उल्लास का संचार करने वाला बता रहे हैं । जैसे ही प्रातःकाल हुआ, नभ में प्रकाश फैला, वैसे ही हरी-हरी जमीन पर झरनों का जल गिरना प्रारंभ हुआ और मनुष्य अपने समस्त पाप भूलकर खग-मृगों के समान रहने लगे -

"जब उषा की एक सरल मुस्कान से,
रत्नखचित-नभ के सुमधुर आलोक से
हरित तलहटी में निर्झर के गान से
चकित मनुज संताप पाप थे भूलते
खग-मृग भी मानव कुल के परिवार थे ।"[1]

(2) प्रकृति का उद्दीपन रूप : प्रकृति का सौन्दर्य अनेक रूपों में मानव को उद्दीप्त करता रहा है । विशेषकर प्रेमियों के साहचर्य और वियोग में उन्हें प्रकृति विशेष रूप से उद्दीप्त करती है । प्रकृति का उद्दीपन रूप विशेष रूप से उर्वशी में ही द्रष्टव्य है । कवि ने उद्दीपन रूप में रात्रि,चन्द्र, तारे, गंधमादन पर्वत और उसकी प्राकृतिक छटा का वर्णन किया है । चाँदनी की सुषमा अप्सराओं को भावोद्दीप्त करती है ।

---

1. प्रणभंग : दिनकर, पृ० 64.

वे कहती हैं -

"दूर-दूर तक फैल रही दूबों की हरियाली है
बिछी हुई इस हरियाली पर शबनम की जाली है
जी करता है, इन शीतल बूंदों में खूब नहायें ।"[1]

अप्सरायें, हरियाली पर बिछी हुई शबनम की बूंदों से अत्यन्त प्रसन्न हो गई है, इसलिए उन अप्सराओं का मन उन्हीं शीतल बूंदों में स्नान करने का हो रहा है ।

इसी प्रकार उर्वशी के निम्न कथन में प्रकृति का उद्दीपक सौन्दर्य अभिव्यक्त हुआ है -

"यह धरती, यह गगन, मृगों से भरी, हरी अटवी यह
ये प्रसून, ये कुंज स्वर्ग मेंबहुत याद आयेंगी
झलमल-झलमल सरित्सलिल वह ऊषा की लाली से
शष्पों पर बिछली- 2 आभा यह रजत किरण की
चहका-चहका उठता वह विहगों का निकुंज पुंजों में ।"[2]

जब उर्वशी से उसकी अप्सरा सहेलियाँ पुनः स्वर्ग में चलने के लिए कहती हैं तो उर्वशी उनसे कहती है कि मुझे यह धरती, यह गगन, हरियाली, झरने तथा विहंग इसलिए बहुत याद आयेंगे क्योंकि मैंने इनके बीच रहकर विहार किया है ।

"गयी सहसा किस रस से भींग
बकुल वन में कोकिल की तान ?

---

1. उर्वशी, पृ० 9.
2. वही, पृ० 125.

चाँदनी में उमड़ी सब ओर
कहाँ के मद की मधुर उफान ?
गिरा चाहता भूमि पर इन्दु
शिथिलवसना रजनी के संग
सिहरते पग सकता न सँभाल
कुसुम कलियों पर स्वयं अनंग ।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में सम्पूर्ण प्रकृति ही उद्दीपनकारी हो गई है, क्योंकि कोयल की ध्वनि अत्यन्त मीठी हो गई है, सर्वत्र चाँदनी ही चाँदनी विकीर्ण हो गई है । इन्होंने चन्द्रमा को इतना अधिक उद्दीप्त कर दिया है कि वह स्वयं पृथ्वी पर आना चाहता है और कामदेव जो कि सौन्दर्य की प्रतिमा है, वह इस सौन्दर्य को देखकर अपने पैर नहीं सँभाल पा रहा है, गिरा जा रहा है ।

"यह बाँसुरी बजी, मधु के सोते फूटे मधुवन में
यह बाँसुरी बजी, हरियाली दौड़ गई कानन में
यह बाँसुरी बजी, प्रत्यागत हुए विहंग गगन से
यह बाँसुरी बजी, सटकर विधु चलने लगा भुवन से
अमृत सरोवर में धो-धो तेरा भी जहर बहाऊँ
तान-तान फण व्याल, कि तुझ पर मैं बाँसुरी बजाऊँ ।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में बाँसुरी, सर्वत्र प्रकृति को उद्दीप्त करने वाली है क्योंकि बाँसुरी बजने से ही झरनों का पानी फूटा । बाँसुरी बजने से ही वनों में हरियाली हुई । बाँसुरी बजने से ही पक्षी जो गगन

---

1. संचयिता: (रास की मुरली नामक कविता से), पृ0 45
2. वही : (व्याल विजय नामक कविता से), पृ0 99

में विचरण कर रहे थे, अपने घरों को लौटे । और बाँसुरी बजने से ही संसार में चन्द्रमा आ गया, इसलिए वे सर्प से कह रहे है कि तू अपना फण तान जिस पर मैं भी बासुरी बजा सकूँ ।

"धुली चाँदनी में शोभा मिट्टी की भी जगती है,
कभी-कभी यह धरती भी कितनी सुन्दर लगती है
जी करता है यहीं रहे, हम फूलों में बस जायें ।"[1]

पुरुरवा कह रहे हैं कि यह मिट्टी कितनी सुन्दर लगती है, और कभी-कभी यह धरती कितनी सुन्दर लगती है । उनका मन करता है कि हम यहीं पर रहें और इन्हीं फूलों की सुगन्ध लेते रहें ।

इस प्रकार प्रकृति के उद्दीपन-रूप के अनेक उदाहरण 'उर्वशी' से प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।

(3) प्रकृति का पृष्ठभूमि रूप : 'दिनकर जी के काव्य में घटित होने वाली घटनाओं के पूर्वाभास के रूप में प्रकृति का प्रयोग मिलता है । इससे आगे किस प्रकार की घटना घटित होने वाली है, इसका पता चल जाता है ।

'सामधेनी' में पृष्ठभूमि के रूप में "अन्तिम मनुष्य" 'जवानियाँ' और 'कलिंग विजय' में प्रकृति का प्रयोग द्रष्टव्य है -

"वृद्ध सूर्य की आँखों पर माड़ी सी चढ़ी हुई है
दम तोड़ती हुई बुढ़िया-सी दुनिया पड़ी हुई है ।"[2]

इन पंक्तियों में सूर्य को दृष्टिहीन बताया गया है और दुनिया को दम तोड़ती हुई बुढ़िया के समान चित्रित किया गया है ।

---

1. उर्वशी /: पृ0 9.
2. सामधेनी : (अन्तिम मनुष्य नामक कविता से), पृ0 25.

कुरूक्षेत्र में भीष्म पितामह युधिष्ठिर से पूर्व तूफान का वर्णन कर उसकी भयानकता का परिचय प्रकृति के माध्यम से ही कराते हैं। कुरूक्षेत्र के चतुर्थ सर्ग में व्यास जी द्वारा कुटिल गृहों के योग द्वारा ही वे भविष्य में होने वाले भयानक युद्ध का परिचय देते हैं।

"रश्मिरथी" के तृतीय सर्ग में भगवान श्रीकृष्ण अपना विकराल रूप दिखलाकर मानों भविष्य में होने वाले विकराल युद्ध का ही परिचय देते हैं -

"टकरायेंगे नक्षत्र-निकर, बरसेगी भू पर वन्हि प्रखर
फण शेषनाग का डोलेगा, विकराल काल मुँह खोलेगा।"[1]

इन पंक्तियों में 'दिनकर' जी ने नक्षत्रों के आपस में टकराकर अग्नि बरसाने का वर्णन है और शेषनाग को डोलवाकर काल का मुँह खुलवाया है, भयानक वर्णन है।

'नीम के पत्ते' में संग्रहीत गीत 'अरूणोदय' में कवि ने 15अगस्त, के आगमन से पूर्व प्रकृति का पृष्ठभूमि में उज्ज्वल रूपांकन प्रस्तुत किया है-

"नई ज्योति से भींग रहा, उदयाचल का आकाश
जय हो आँखों के आगे, यह सिमट रहा खग्रास
है फूट रही लालिमा तिमिर की, टूट रही घनकारा है
जय हो, कि स्वर्ग से छूट रही, आशिष की ज्योतिर्धारा है।"[2]

आजादी प्राप्त होने का समय है, उस समय जो सूर्य उदय हो

---

1. रश्मिरथी : तृतीय सर्ग, पृ० 28.
2. नीम के पत्ते (अरूणोदय कविता से).

रहा है, उसकी ज्योति नई है, संसार से अंधकार समाप्त हो रहा है । कवि का कहना है कि जो हम लोगों को आजादी प्राप्त हो रही है, वह जैसे स्वर्ग निवास करने वाले आशीष दे रहे हों ।

"बज रहे किरण के तार, गूँजती है अम्बर की गली-गली,
आकाश हिलोरें लेता है, अरुणिमा बाँध धारा निकली ।
प्राची का रुद्ध कपाट खुला, उषा आरती सजाती है,
कमला जयहार पिन्हाने को, आतुर सी दौड़ी आती है।"[1]

आजादी से पूर्व का वर्णन है कि आजादी प्राप्त होने की जो प्रसन्नता है, उससे किरणें भी प्रसन्न हो रही हैं और किरणें आपस में टकराकर जो रव उत्पन्न कर रही हैं, उससे आकाश की गली-गली गूँज उठी है । आकाश हिलोरे ले रहा है और आकाश से अरुणिमा भी धारा बाँधकर बह निकली है । पूर्व का द्वार खोलकर उषा विजयी व्यक्तियों की आरती करने को आई है और कमला जयहार पहनाने के लिए आतुर होकर दौड़ती हुई आ रही है ।

"जय हो उनकी कालिमा धुला, जिनके अशेष बलिदानों से
लाली का निर्झर फूट पड़ा, जिनके शायक सन्धानों से
परवशता सिन्धु तरण करके, तट पर स्वदेश पग धरता है,
दासत्व छूटता है सिर से, पर्वत का भार उतरता है ।"[2]

कवि कहता है कि जिनके बलिदान देने से संसार की कालिमा धुल गई है, उनकी जय हो, जिनके बाणों के चलाने से वहाँ से सूर्य की लाली का निर्झर फूटा हो, उनकी जय हो, जो परवशता के सागर को पार करके

---

1. नीम के पत्ते (अरुणोदय नामक कविता से): पृ0 30.
2. वही, पृ0 31.

अपने स्वदेश में आए हैं, उनके सिर से दासत्व का पर्वत के समान भार उतर जाता है ।

"मंगल-मुहूर्त रवि उगो हमारे, क्षण ये बड़े निराले हैं
हम बहुत दिनों के बाद विजय का शंख फूंकने वाले हैं
मंगल मुहूर्त तरुगण फूलो, नदियों अपना पयदान करो
जंजीर तोड़ता है भारत, किन्नरियों जय-जय गान करो
भगवान साथ हों, आज हिमालय, अपनी ध्वजा उठाता है।"[1]

कवि कहता है कि हे मंगल करने वाले सूर्य उगो । क्यों कि इस समय हम विजय प्राप्त कर रहे हैं, इसलिए हमें अत्यधिक प्रसन्नता है और हे वृक्षों । तुम भी खूब फलो फूलों और नदियों तुम अपना जलदान करो । आज भारत आजाद हो रहा है, इस खुशी में किन्नरियों तुम लोग जय-जय गान करो क्योंकि आज हिमालय अपनी ध्वजा फहरा रहा है।

"रोली लो उषा पुकार रही, पीछे मुड़कर टुको झुकी-झुकी
पर, ओ अशेष के अभिमानी, इतने पर ही तुम नहीं रुको
आगे वह लक्ष्य पुकार रहा, हाँकते हवा पर यान चलो
सुरधनु पर धरते हुए चरण, मेघों पर गाते गान चलो ।"[2]

कवि कहता है कि आजादी प्राप्त वीरों के लिए ऊषा रोली लेकर टीका करने के लिए आई है । पर वीरों तुम इतनी ही वीरता प्राप्त करके मत रुकना आगे तुम्हारा लक्ष्य तुम्हें पुकार रहा है । तुम हवा में अपना यान उड़ाते हुए, मेघों पर गान गाते हुए चलो ।

---

1. नीम के पत्ते (अरुणोदय नामक कविता से), पृ0 3।

2. वही, पृ0 34.

(4) प्रकृति का मानवीकरण रूप : 'दिनकर' जी के काव्य में प्रकृति का मानवीकरण रूप भी अंकित है । कवि ने अधिकांशतः उसका नायिका रूप प्रस्तुत किया है । रेणुका आदि प्रारंभिक कृतियों में प्रकृति को रूमानी नायिका के रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है -

"नत नमन, कर में कुसुम - जयमाल ले
भाल में कौमार्य की बेंदी लिए
क्षितिज पर आकर खड़ी होती उषा
नित्य किस सौभाग्यशाली के लिए"[1]

यहाँ पर ऊषा के मानवीकरण के द्वारा एक जयमाल डालने के लिए जाती हुई बालिका का चित्रण किया गया है कि वह ऊषा बालिका आँखें नीचे किए हुए, हाथों में पुष्पों का जयमाल लिए हुए, माथे पर कौमार्य की बिन्दी लगाए हुए रोज क्षितिज पर आकर पता नहीं किस सौभाग्यशाली के लिए खड़ी हो जाती है ।

"प्रीति अन्तर्वासिनी, सावन में, संध्या आदि कविताओं में प्रकृति का मानवीकरण इस कवि ने प्रस्तुत किया है । संध्या का एक रूप विरहिणी नायिका के रूप में देखिये -

"एक अलका व्योम के उस ओर,
यक्षिणी कोई विषाद-विभोर
खोजती किसी न मिले कांत
बीतते जाते अमित कल्पांत
वेदना कठिन मन-सॉझ
पल गिना करती कि हो कब सॉझ

---

1. रेणुका : पृ0 38.

अश्रु से भीगी, व्यथा से दीन
ऊँघती प्रिय-स्वप्न में तल्लीन ।"[1]

कवि कह रहे हैं कि संध्या रूपी स्त्री आकाश में चारों ओर अपने पति को ढूँढ़ रही है, पर कान्त नहीं मिल रहे हैं, समय निकलता जा रहा है, उसकी वेदना कठिन है, पर पल गिन रही है कि साँझ कब हो, उसकी आँखें तो अश्रुओं से गीली है, पर वह प्रिय का स्वप्न देख रही है ।

उर्वशी में प्रकृति का मानवीय रूप मुखरित है । पुरूरवा रानी औशीनरी को सन्देश प्रेषित करते समय प्रकृति का रूप अंकित करते हैं -

"शिखरों पर हिमराशि और नीचे झरनों में पानी
बीचों बीच प्रकृति सोयी है ओढ़ चिवोली धानी ।"[2]

कि पर्वतों पर वर्फ जमी हुई है और नीचे झरनों में पानी बह रहा है, उन दोनों के बीच में प्रकृति नायिका धानी रंग की चोली और ओढ़नी ओढ़कर सोयी है अर्थात् सर्वत्र हरियाली ही हरियाली है ।

उर्वशी में प्रकृति को चेतन सत्ता के रूप में देखा गया है, वह जड़ नहीं, मानव क्रियाओं की सहचरी भी है । इसलिए कवि ने अनेक स्थलों पर उसे मानवीकृत रूप में प्रस्तुत किया है । ऐसे रूपों में कहीं तो प्रकृति का कोई एक अंग यथा- पर्वत, नदी, झरना आदि मानवीकृत हुआ है और कहीं समग्र प्रकृति ही मानवी बन गई है । समग्र प्रकृति को मानवी रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से निम्न पंक्तियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

---

1. रसवंती (संध्या नामक कविता से), पृ0 72.
2. उर्वशी : द्वितीय अध्याय, पृ0 38.

इनमें कवि ने प्रकृति को एक साम्राज्ञी के रूप में प्रस्तुत किया है जो अत्यंत साज-सज्जा के साथ समारोह प्रांगण की ओर जाती हुई चित्रित हुई है -

"साम्राज्ञी विभ्राट, कभी जाते इसको देखा है
समारोह प्रांगण में पहने हुए दुकूल तिमिर का
बादलों से खचित, कूल-कीलित झालरें विभा की
गूँथे हुए चिकुर में सुरभित दाम श्वेत फूलों के

x x x

रानी जब गर्वित गति से ज्योतिर्विहार करती है ।"[1]

प्रकृति साम्राज्ञी अंधकार का वस्त्र पहनकर समारोह प्रांगण में जा रही है, उसके वस्त्रों में नक्षत्र टँके हुए हैं और उसमें रात्रि की झालरें लगी हुई है, उसमें श्वेत रंग के फूल लगे हुए हैं, उन वस्त्रों को पहनकर प्रकृति ज्योतिर्विहार करने के लिए जा रही है ।

मानवीकरण के उदाहरण तो भरे पड़े हैं । जहाँ-जहाँ प्रकृति वर्णन है, वहाँ-वहाँ मानवीकरण का एकाध रूप अवश्य प्रस्तुत हुआ है-

"कुछ वृक्षों के हरित मौलि पर, कुछ पत्तों से छनकर
छाँह देख नीचे मृगांक की किरणें लेट गई हैं ।"[2]

प्रस्तुत पंक्तियों में रात्रि का वर्णन है कि कुछ हरे-हरे वृक्षों से छनकर चन्द्रमा का प्रकाश नीचे पड़ रहा है तो वहाँ ऐसा लग रहा है, जैसे वहाँ चन्द्रमा की किरणें लेटी हुई हों ।

---

1. उर्वशी, पृ० 68.
2. वही, पृ० 66.

"दमक रही कर्पूर धूलि - दिग्वधुओं के आनन पर
रजनी के अंगों पर कोई चन्दन लेप रहा है ।"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में 'दिनकर' जी कह रहे हैं कि दिशा वधुओं के मुख पर कर्पूर लगा है, और रजनी के अंगों पर कोई व्यक्ति चंदन का लेप कर रहा है, दिशाओं और रजनी का मानवीकरण है ।

"आ रहा सूर्य फेंकते बाण अपने लोहित
बिंधा गया ज्योति से, वह देखो अरूणाभ शिखर
हिम स्नात, वल्लरी पुजारिन को देखो
पति को फूलों का हार नया पहनाती है ।"[2]

इन पंक्तियों में सूर्य और लता का मानवीकरण किया गया है, कवि का कहना है कि सूर्य अपने लाल रंग के बाण फेंकते हुए चला आ रहा है जिससे लाल रंग का पर्वत शिखरबिंध गया है और लता रूपी पुजारिन रोज अपने सूर्य रूपी पति को फूलों का नया हार पहनाती है ।

'दिनकर' जी द्वारा किया गया संध्या का मानवीकरण दृष्टव्य है -

"षोडशी । तिमिराम्बरा । सुकुमार ।
भूलुंठित पुष्पित लता सी म्लान
छिन्नाधार, साधना की भग्न स्वप्न विलीन
निःस्व की आराधना की शून्य वेग विहीन ।"[3]

'दिनकर' जी ने संध्या पर अभिसारिका का दृश्य आरोपित किया है । प्रस्तुत अवतरण में श्यामाभिसारिका का रूप ग्रहण किए सन्ध्या सुन्दरी की उदासी, अनवरत प्रतीक्षा के नैराश्य आदि का मूर्तमान चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है ।

---

1. उर्वशी, पृ० 66
2. उर्वशी, पृ० 102
3. दिनकर के काव्य में [illegible]

मानवीकरण के क्षेत्र में 'दिनकर' जब जड़ प्रकृति पर कोमल भाव का आरोप कर सकते हैं तो उसे भीषण रूप भी दे सकते हैं। इसी संध्या का कवि जब दूसरा मानवीकरण प्रस्तुत करता है तो संध्या के बीख, निस्तब्ध और उदास वातावरण में कापालिका, रक्त मदिरा इत्यादि की कल्पना से चित्र को वीभत्स बनादेता है -

"जीर्ण वय अम्बर कापालिक शीर्ण वेपथमान
पी रहा आहत दिवस का रक्त-मद्य समान
शिथिल मद विह्वल प्रकंपित वयं हृदय हतज्ञान
गिर गया मधु पात्र कर से गिर गया दिनमान ।"[1]

कवि ने डूबते हुए रवि का यहाँ चाक्षुष्य चित्र अंकित किया है। वहीं कवि जो ऊपर के मानवीकरण में उसी संध्या पर इतने कोमल भाव का आरोप कर सकता है, उसी कवि ने उसी कविता में संध्या का यह वीभत्स रूप भी प्रस्तुत किया है। 'दिनकर' ने संध्या के दो विरोधी स्वरूप प्रस्तुत किए हैं। कवि के ये मानवीकरण पूर्ण सरल और चित्र सजीव है।

कवि ने रात्रि का मानवीकरण करते हुए एक से एक सुन्दर दृश्यों का विधान किया है। रात्रि का प्रसंग आते ही कवि उसे मानव भावों की साकार-प्रतिमा बना देता है। वय: संधि की बाला करले घुंघराले बालों को खोले हुए मस्ती की मधुर ध्वनि गुनगुनाती हुई जैसेएका-एक प्रवेश करती है, ठीक उसी प्रकार नभांगनमें रजनी का प्रवेश होता है मानवीकरण के माध्यम से कवि ने रात्रि का स्वरूप मूर्तिमान कर दियाहै-

"पहन मुक्ता के युग अवतंस
शिथिल गुंफित खोले कच जाल

---

1. दिनकर के काव्य में युगचेतना :डॉ०पन्ना पृ० 250

बजाती मधुर, चरण, मंजीर

आ गयी नभ में रजनी बाल ।"[1]

कवि कह रहे हैं कि रजनी बाला मोतियों के युग रूपी वस्त्र पहनकर और बाल खोलकर, अपने पायलों का रव करती हुई आकाश में आ गई है ।

रात्रि का दूसरा रूप रश्मिरथी में भी देखा जा सकता है- जिसमें वही रमणीयता है जो हुंकार के उपरोक्त उद्धरण में -

"अम्बर पर मोती गुँथे चिकुर फैलाकर
अन्जन उड़ेल सारे जग को नहलाकर
साड़ी में टाँके हुए अनन्त सितारे
थी घूम रही तिमिरांचल में निशा पसारे ।"[2]

दिनकर की रजनी बाला अनन्त सितारे टँकी साड़ी पहनकर घूमती है । रजनी बाला का आकाशमानों वस्त्र है, उसने काजल उड़ेलकर सारे जग को मानों काला कर दिया है, उसकी आकाश की साड़ी में मानों बहुत सारे सितारे टँके हुए हैं, उसको पहनकर रजनी बाला अपना आँचल फैलाये हुए आकाश में घूम रही है ।

प्रस्तुत पंक्तियों में उदास साँझ के घूमने का वर्णन है-

"उदासी में भूली सी साँझ,
मुकुट मणि दिन का स्वर्ण प्रभात,
बिछी पदतल धरती निःसीम
और ऊपर अनन्त आकाश

---

1. दिनकर के काव्य में युगचेतना, डॉ० पन्ना, पृ० 260.
2. वही, पृ० 263

दीखता इन दोनों के बीच
शून्यता का कैसा आभास ।"[1]

कवि का कहना है कि उदासी के वातावरण मेंसाँझ भटकती हुई घूम रही है और पैरों के नीचे धरती बिछी हुई है और ऊपर अनन्त आकाश है, पर कवि कह रहे हैं कि इन दोनों अर्थात् धरती और आकाश के बीच में यह शून्य स्थान कैसा दिखाई दे रहा है । दिनकर ने प्रकृति से उपमान लेकर अपने काव्य को अलंकृत किया है । रेणुका की "गा रही कविता युगों से मुग्ध हो" में कविता को परी के रूप में मानकर कवि उसकी तुलना प्रकृति-सज्य नायिका से करता है ।

रसवंती की 'बालिका से वधू' के रूप-चित्र में कवि ने प्रकृति के उपमानों से वधू का श्रृंगार किया है -

"माथे में सेंदुर पर छोटी दो बिन्दी चमचम सी
पपनी पर आँसू की बूँदें, मोती सी, शबनम सी
लदी हुई कलियों से मादक, टहनी एक गरम सी
यौवन की बिनती-सी-भोली, गुमसुम खड़ी शरम सी।"[2]

प्रस्तुत पंक्तियों में उपमा अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है । कवि की नायिका माथे पर बिन्दी लगाये है, पर उसके गालों पर आँसू की बूँदें मोती के और शबनम के समान दिखाई दे रही हैं और वह बालिका कलियों से लदी हुई एक कमजोर सी टहनी के समान दिखाई दे रही है ।

कुरुक्षेत्र के सप्तम सर्ग के प्रारंभ में युधिष्ठिर का वह रूप, जिसमें

---

1. प्रणभंग : पृ० 58.
2. रसवंती (बालिका से वधू नामक कविता से) पृ० 19.

वे द्वन्द्व से मुक्त होकर शान्ति की कामना करते हुए दिखाई देते हैं, प्राकृतिक उपमानों के सहारे चित्रित किया गया है -

"रागानल के बीच पुरुष कंचन सा जलने वाला
तिमिर-सिन्धु में डूब रश्मि की ओर निकलने वाला
ऊपर उठने को कर्दम से लड़ता हुआ कमल सा
डूब-डूब करता उतराता, घन में विधु मंडल सा ।"[1]

रश्मिरथी में परशुराम के आश्रम से निराश कर्ण के चित्रण में कवि ने प्रकृति के अलंकारी रूप को प्रस्तुत करते हुए कर्ण की मानसिक अवस्था का बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है -

"निराशा से विकल टूटा हुआ सा
किसी गिरि-श्रृंग से छूटा हुआ सा
चला खोया हुआ सा कर्ण मन में
कि जैसे चाँद चलता है गगन में ।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में उपमा अलंकार की छटा दर्शनीय है । कर्ण की उपमा टूटा हुआ सा, गिरि श्रृंग से छूटा हुआ सा तथा खोये हुए से चाँद से की गई है ।

प्रकृति का अलंकार रूप में चित्रण उर्वशी में बड़े ही मनोहारी रूप में हुआ है, प्रारम्भ में ही आकाश से अवतरित अप्सराएँ नहीं कोई ज्योत्स्ना - सी प्रतीत होती है, जिससे इन्दु किरणें भी लजा रही हैं, वह विविध कल्पनायें करती है, जिनमें रूपक, व्यतिरेक, और सन्देह की

---

1. कुरुक्षेत्र : सप्तम सर्ग , पृ0 120.
2. रश्मिरथी, द्वितीय सर्ग, पृ0 21.

छटा दर्शनीय है । उर्वशी के चित्रण में भी प्रकृत्यांगों का उपमादि अलंकारों के रूप में व्यवहार बड़ा ही मनोरंजक है । प्रथम और द्वितीय अंक में चित्रलेखा तथा निपुणिका द्वारा उर्वशी का जो सौन्दर्य वर्णन हुआ है ,उसमें उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति का प्रयोग रमणीय है -

"प्रकटी जब उर्वशी, चाँदनी में द्रुम की छाया से
लगा सर्प के मुख से, जैसे मणि बाहर निकली हो
या कि स्वयं चाँदनी स्वर्ण-प्रतिमा में आन ढली हो
उतरी हो धर देह स्वप्न की विभा प्रमद उपवन की

x x x

हिमकण-सिक्त-कुसुम-सम उज्वल अंग-अंग झलमल था
जिसमें अभी-अभी जल से निकला उत्फुल्ल कमल था ।"[1]

प्रथम दो पंक्तियों में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोगहुआ है और नीचे की चारो पंक्तियों में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग हुआ है ।
"उर्वशी पुरूरवा को विटप मानकर लतिका - सी खो जाना चाहती है ।
कभी रसमय मेघमाला बनकर उस पर छा जाना चाहती है ।
पुरूरवा कभी आनन्द विकल तरू सा सिहरता है, कभी सिन्धु सा लहराता है और कभी कमल सा प्राणों के सर में उतरना चाहता है ।

चतुर्थ अंक में महर्षि च्यवन के लिए मेघ, पादप तथा कुंजर की उपमा दी गई है -

"शुभे ! तपस्या के बल से,
यौवन मैं ग्रहण करूँगा

---

1. उर्वशी : द्वितीय अंक, पृ0 29.

प्रौढ़ । मेघ । पादप नवीन

मदकल, किशोर-कुंजर सा ।"[1]

कवि ने शरीरावयवों एवं अन्य पदार्थों के के लिए भी अनेक मनोरम उपमाएँ एवं आरोप प्रकृति से गृहण किए हैं । जैसे देह के लिए चम्पक-यष्टि, शरीर शीतलता के लिए चाँदनी स्पर्श के लिए तिमिर, प्राणों के लिए सागर, भाल के लिए सूर्यातप, अधरों के लिए किसलय, चुम्बन के लिए तिमिर -शूल, कपोल प्रभा के लिए ऊषा प्रभा, मुस्कान के लिए किरण, पुरूरवा के वक्ष के लिए महीध्र, की उपमा दी गई है ।

उर्वशी में कहीं मानव सौन्दर्य के वर्णन में प्रकृति के उपादान उपमान बनकर आए हैं और कहीं प्रकृति के ही सौन्दर्य का अलंकृत वर्णन हुआ है । उदाहरण के लिए कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं -

"लाल-लाल वे चरण कमल से, कुंकुम से, जावक से
तन की रक्तिम कांति, शुद्ध, ज्यों, धुली हुई पावक से
जग भर की माधुरी अरूण अधरों में धरी हुई सी
आँखों में वारूणी-रंग निद्रा कुछ भरी हुई-सी
तन प्रकान्ति, मुकुलित अनन्त ऊषाओं की लाली-सी
नूतनता सम्पूर्ण जगत की संचित हरियाली सी।"[2]

यहाँ उर्वशी के आंगिक सौन्दर्य को उपस्थित करने में प्रकृति के उपादान उपमान बनकर आए हैं । समस्त पंक्तियों में उपमा अलंकार का प्रयोग देखते ही बनता है क्योंकि उर्वशी के समस्त अंगों की उपमा प्राकृतिक पदार्थों से की गई है एक और उदाहरण देखें -

---

1. उर्वशी, चतुर्थ अंक :पृ0 106.
2. वही, पृ0 24.

"और अधरों की हँसी यह कुंद सी, जूही कली सी
और चम्पक यष्टि सी यह देह श्लथ पुष्पाभरण से
स्वर्ण की प्रतिमा कला के स्वप्न साँचे में ढली सी ।"[1]

इन पंक्तियों में भी उर्वशी के अंगों के सौन्दर्य की उपमा प्राकृतिक सौन्दर्य से की गई है, अतः उपमा अलंकार है ।

इसी प्रकार निम्नपंक्तियों में उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह का सौन्दर्य अत्यन्त प्रभावशाली है -

"खुली नीलिमा पर विकीर्ण तारे यों दीप रहे हैं
चमक रहे हैं । नील चीर पर बूटे ज्यों चाँदी के
या प्रशान्त, निःसीम जलधि में जैसे चरण-चरण पर
नील वारि को फोड़ ज्योति के द्वीप निकल आये हों।"[2]

कवि ने तारों को ही तरह-तरह के रूप में देखा है और कहीं उनको बूटे माना है, कहीं जलाधि माना है, कहीं तारों को दीप माना है । प्रकृति सौन्दर्य का यह चित्र उत्प्रेक्षा के कारण अत्यंत मादक बन गया है -

(क) "सारी देह समेट निविड़ आलिंगन में भरने को
गगन खोलकर बाँह विसुध वसुधा पर झुका हुआ है ।"[3]

सन्देह अलंकार की यह माला भी दर्शनीय है -

"कलकल करती हुई सलिल - सी गाती धूम मचाती
अम्बर से ये कौन कनक प्रतिमाएँ उतर रही हैं ।

---

1. उर्वशी, पृ० 50,
2. वही, पृ० 5
3. वही, पृ० 6

(ख) या वसन्त के स्वप्नों की तस्वीरें घूम रही हैं
तारों भरे गगन में फूलों भरी धरा के भ्रम से ।"[1]

अन्ततः हम कह सकते हैं कि दिनकर की उर्वशी में अलंकार रूप में प्रकृति का प्रभावशाली और भाव समृद्ध चित्रण हुआ है । इसमें व्यापकता और पूर्णता भले ही नहीं है लेकिन नवीनता और भास्वरता है ।

(5) <u>प्रकृति का रहस्यात्मक रूप</u> : 'दिनकर' के काव्य में प्रकृति का रहस्यात्मक रूप भी यत्र-तत्र दृष्टव्य है । 'दिनकर' की प्रारंभिक कृतियों पर छायावाद का प्रभाव है । अत: उनके प्रकृति वर्णन में रहस्य की झलक स्वत: आ जाती है ।

रेणुका की मिथिला में शरत, विश्वछवि की प्रारंभिक पंक्तियों में रहस्यमयी नायिका के साथ प्रकृति का रहस्यात्मक रूप भी जैसे अवतरित होता है । प्रकृति से अधिक तो उसकी नायिका ही रहस्यमय लगती है ।

रसवंती की अगरू-धूम, रास की मुरली, रहस्य आदि कविताओं में कवि ने प्रकृति के रहस्यात्मक रूप को ही अंकित किया है-

"रही बज आमंत्रण के राग, श्याम की मुरली नित्य नवीन
विकल सी दौड़-दौड़ की प्रतिकाल, सरित हो रही सिन्धु में लीन।"[2]

उर्वशी में भी प्रकृति का रहस्यात्मक रूप यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है । प्रकृति के अंग-सूर्य, चन्द्र, उषा, मेघ आदि उस विराट सत्ता का भान कराते हैं । तृतीय अंक में पुरूरवा ईश्वर की लीला का

---

1. सामधेनी (बटोही धीरे-धीरे गा नामक कविता से), पृ० 18
2. रसवन्ती (रास की मुरली नामक कविता से) पृ० 44.

वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

"जिसकी इच्छा का प्रसार, भूतल, पाताल, गगन है
दौड़ रहे नभ में अनन्त, कन्दुक जिसकी लीला के
अगणित सविता - सोम अपरिमितग्रह, उडु मंडल बनकर ।"[1]

उर्वशी भी ईश्वर का प्रसार और विस्तार प्रकृति के अवयवों में देखती है । उर्वशी और पुरूरवा के ईश्वर-माया सम्बन्धी कथोपकथनों में ईश्वर के रहस्य के साथ-साथ कवि ने प्रकृति को रहस्यात्मक रूप में ही ग्रहण किया है ।

जब प्रकृति अपनी विराटता में अव्यक्त सत्ता अथवा ईश्वर का बोध कराने लगती है, तब वह रहस्यरूपा हो जाती है । उर्वशी में इसी के सहारे लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक बनाया गया है, अत: रहस्यरूपा प्रकृति की उर्वशी में बड़ी महिमा है । तृतीय अंक में अनेक स्थलों पर इसका संकेत मिलता है । एक दो स्थल दृष्टव्य हैं -

"शिखरों में जो मौन, वही झरनों में गरज रहा है
ऊपर जिसकी ज्योति, छिपा है वही गर्त के तम में ।"[2]

कवि ने अत्यन्त रहस्यात्मक चित्रण किया है कि शिखरों में जो मौन है, वही झरनों में आवाज कर रहा है, आकाश में जिसकी ज्योति है, वही अंधकार में भी है अर्थात् सर्वत्र ईश्वर ही है ।

"जिसे खोजता फिरता है तू, वह अरूप, अनिकेतन,
किसी व्योम पर कहीं देह धर बैठा नहीं मिलेगा ।
वह तो स्वयं रहा वह अपनी ही लीला धारा में,
कदम कहीं, कहीं पंकज बन, कहीं स्वच्छ जल बनकर ।"[3]

---

1. उर्वशी : तृतीय अंक, पृ0 67. 2. वही, पृ0 78.
3. वही, पृ0 82.

इन पंक्तियों में ईश्वर का ही वर्णन है कि तू जिसे खोजता फिर रहा है, न कोई उसका रूप है, न रंग है, न उसका कोई घर है, वह तो संसार की अनेक चीजों में अनेक रूप धारण करके बैठा हुआ है ।

"समतामयी उदार शीतलांचल जब फैलाती है
जाते भूल नृपति मुकुटों को, बन्दी निज कड़ियों का
नक्षत्रों में खचित, फूल-कीलित झालरें विभा की
गूँथे हुए चिकुर में सुरभित दाम श्वेत फूलों के ।"[1]

(4) प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप : 'दिनकर' के काव्य में प्रकृति के प्रतीक रूप के भी अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं । प्रकृति प्रतीकों का अधिकांश उपयोग उर्वशी में हुआ है ।

उदाहरणतः निपुणिका और मदनिका में पुरूरवा तथा उर्वशी के प्रेम को लेकर संवाद चल रहा है । निपुणिका उर्वशी के सौन्दर्य का वर्णन कर रही है और मदनिका उर्वशी के भाव जानना चाहती है । वह पूँछती है -

"पर तुम कहो कथा आगे की पूर्ण चन्द्र जब आया,
अचल रहा अथवा मर्यादा छोड़ सिन्धु लहराया ।"[2]

इन पंक्तियों में उर्वशी के लिए पूर्णचन्द्र और पुरूरवा के लिए सिन्धु का प्रतीक प्रयुक्त हुआ है । पूर्णचन्द्र को देखकर सागर अचल नहीं रह सकता । अपनी लहरों की बाहें फैलाकर उसके आलिंगन के लिए वह लहराता ही है । यहाँ इन दो प्रकृति प्रतीकों द्वारा उर्वशी और

---

1. उर्वशी, पृ० 68.
2. वही, पृ० 54.

पुरूरवा के पारस्परिक आकर्षण भाव की व्यंजना की गई है ।

एक दूसरा उदाहरण भी दृष्टव्य है -

"एक ही आशा मरूस्थल की तपन में
ओ सजल कादम्बिनी सिर पर तुम्हारी छाँह है
एक ही सुख है उरस्थल से लगा लूँ,
ग्रीव के नीचे तुम्हारी बाँह है ।"[1]

इस उदाहरण में मरूस्थल प्रतीक है निराशा, अभावग्रस्त और पिपासाकुल प्रेमी पुरूरवा का और कादम्बिनी प्रतीक है उर्वशी की।

प्रकृति प्रतीक का एक अन्य उदाहरण सुकन्या केसंवाद से लिया जा सकता है । सुकन्या नारियों का उपदेश देती हुई कहती है कि जब तक यौवन का आकर्षण है, तभी तक उसका स्थान पुरूषों की नजर में है । इसी हेतु इस आकर्षक वय में ही एक की बनकर जीवन का सुख सुरक्षित कर लेना चाहिए -

"इसीलिए कहती हूँ जब तक हरा भरा उपवन है,
किसी एक के साथ बाँध लो तार निखिल जीवन का
न तो एक दिन वह होगा जब गलित म्लान अंगों पर
क्षण भर को भी किसी पुरूष की दृष्टि नहीं विरमेगी
बाहर होगा विजन निकेतन भीतर प्राण तजेंगे
अन्दर के देवता तृषित भीषण हाहाकारों में ।"[2]

प्रथम और पंचम पंक्ति में क्रमशः यौवनावस्था के लिए हरे-भरे उपवन तथा बुढ़ापे के लिए विजन निकेतन का प्रतीक बड़ा ही भाव व्यंजक है ।

---

1. उर्वशी, पृ० 55.   2. वही, पृ० 101.

'दिनकर' जी के काव्य में प्रकृति के प्रति एक स्वाभाविक आकर्षण है। वे समस्त प्राकृतिक व्यापारों में एक आत्मीयता का अनुभव करते हैं, इसलिए जहाँ भी उन्होंने प्रकृति-वर्णन किया है, वह मार्मिक और सजीव है। 'दिनकर' जी उन्होंने सभी जगह प्रकृति को स्वाभाविक रूप में ही ग्रहण किया है। उन्होंने कहीं भी बलात् उसे थोपने का प्रयास नहीं किया।

निष्कर्ष : दिनकर ओज और पौरूष के कवि हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से जन-चेतना जगाना चाहते हैं। प्रकृति का उपयोग भी वे प्राय: इसी अर्थ में करते हैं। उनकी कुछ रचनाएँ छायावादी प्रकृति-चित्रण के ढर्रे पर लिखी गई हैं ; किन्तु अधिकांश रचनाओं में प्रकृति मानवीय अस्मिता का बोध कराने के लिए प्रयुक्त हुई है। अन्याय और अनाचार की जंजीरें तोड़कर दिनकर की प्रकृति सूर्य की तरह अपना आलोक विकीर्ण करती प्रतीत होती है -

"हटो तमीचरो कि हो चुकी समाप्त रात है,
कुहेलिका के पार जगमगा रहा प्रभात है,
लपेट में समेटता ; रूकावटों को तोड़ के,
प्रकाश का प्रवाह आ रहा दिगन्त फोड़ के।"[1]

कवि अनीति के विरुद्ध शंखनाद करता है। उसकी गर्जना सिन्धु की उत्ताल तरंगों की तरह चतुर्दिक फैल जाती है। उसकी भुजा फड़कने लगती है। वह संघर्ष के लिए कमर कसकर तैयार है। प्रलय की उसे परवाह नहीं है। वह तो प्रकृति के एक-एक क्षण से जीने का

---

1. सामधेनी (जवानियाँ शीर्षक कविता से) पृ० 82.

सन्देश प्राप्त करता है -

"संग्राम सिन्धु लहराता है,

सामने प्रलय घहराता है ।

रह-रह कर भुजा फड़कती है,

बिजली सी नसें कड़कती हैं ।"[1]

कवि विजय के प्रति आश्वस्त है । वह जानता है कि यही समय है, जब अन्याय का डटकर विरोध किया जाना चाहिए । स्वतंत्रता की राह पर चलने वालों का आह्वान करता हुआ कवि कहता है कि-

"मंगल मुहूर्त्त, कवि ! उगो हमारे क्षण ये बड़े निराले हैं

हम बहुत दिनों के बाद विजय का शंख फूंकने वाले हैं,

मंगल मुहूर्त्त तरुगण ! फूलों, नदियों अपना पयदान करो

जंजीर तोड़ता है भारत, किन्नरियों ! जय-जय गान करो।"[2]

दिन की रचनाएँ मानवीय स्वतन्त्रता और समानता की पक्षधर हैं । वे आशा और विश्वास के साथ दावा करते हैं कि अब अंधकार का कोई काम नहीं है । चारों ओर प्रकाश फैलने वाला है । हर तरफ शुभ संकेत मिल रहे हैं । प्रकृति के कण-कण में, चप्पे-चप्पे में उजाला फैल रहा है -

"अब्दों, शताब्दियों, सहस्त्राब्द का अंधकार

बीता गवाक्ष अम्बर के दहके जाते हैं

---

1. रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, पृ० 44-45.
2. नीम के पत्ते :, पृ० 14.

यह और नहीं कोई, जनता के स्वप्न अजय
चीरते तिमिर का पक्ष उमड़ते आते हैं ।"[1]

सूर्योदय की कल्पना कवि के उदात्त चिन्तन का स्पष्ट संकेत है । प्रगतिशील कवि का मन अँधेरे को चीरकर प्रकाश की ओर ताकता है । आकाश से फूटती हुई लालिमा कवि के स्वप्नों को खुलासा करती है । प्रकृति का यह रूप दिनकर जी की प्रगतिशील चेतना को मुखरित करता है -

"नई ज्योति से भींग रहा उदयाचल का आकाश
जय हो आँखों के आगे यह सिमट रहा खग्रास
है फूटी लालिमा तिमिर की, टूट रही घन कारा है
जय हो, कि स्वर्ग से छूट रही, आशिष की ज्योतिर्धारा है।"[2]

दिनकर के लिए प्रकृति मनोरंजन का साधन नहीं है । वह कवि की प्रेरणा का अक्षय स्रोत है । प्रकृति के माध्यम से कवि जीवन के गम्भीर प्रश्नों के उत्तर खोजता है । इसीलिए उसके प्रकृति चित्रण में प्रगतिशील जीवन दर्शन की अमिट छाप दिखाई देती है ।

xxxxxxxxxxxx
xxxxxxxxxx
xxxxxxxx
xxxxxx
xxxx
xx
x

---

1. नीलकुसुम : पृ० 67.
2. धूप और धुआँ (अरुणोदय नामक कविता से), पृ० 30.

चतुर्थ अध्याय

xxxxxxxxxxxxxxxxx

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति-चित्रण

बचपन से ही केदार जी का झुकाव प्रकृति की ओर रहा है। कभी प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य ने इन्हें अपनी ओर खींचा है, तो कभी मानव-जीवन के हर्ष-विषाद को रूपान्तित करने के लिए इन्होंने प्रकृति का उपयोग किया है, बल्कि मानव-जीवन के परिपार्श्व में ही केदार ने प्रकृति के अधिकांश चित्र खींचे हैं। प्रकृति के जिन रूपों ने कवि को सबसे अधिक प्रभावित किया है, उनमें प्रातः संध्या, दिन-रात, सूरज - चाँद - सितारे धूप- किरणें, हवा- पानी, बादल-बिजली, नदी, पेड़ पौधे और विभिन्न ऋतुएँ प्रमुख हैं।

'केदार' जी की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता की ओर संकेत करते हुए डॉ० रणजीत ने लिखा है कि "उन्होंने प्रकृति को किसी मध्यमवर्गीय, रुग्ण और कुण्ठाग्रस्त दृष्टि से नहीं, एक किसान की स्वस्थ, सरल, ग्राम्य और रूमानी दृष्टि से देखा है।"[1]

प्रकृति 'केदार' को काव्य-सृजन के लिए निरन्तर प्रेरित करती रही है। तभी तो उनकी कविताओं में प्रकृति के अनूठे सौन्दर्य को, गहरी आत्मीयता के साथ अंकित किया गया है। "प्रकृति के अछूते सौन्दर्य को सहज लोक बिम्बों के माध्यम से केदार इस तरह उजागर कर देते हैं कि एक तीव्र प्रभाव मूर्त हो उठता है, इन प्रकृति छबियों को ये जीवन-सौन्दर्य में ही देखते हैं, इसलिए छोटी-बड़ी सभी कविताओं में प्रकृति का सौन्दर्य एकान्त सौन्दर्य न होकर सामाजिक

---

1. केदार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं० श्रीप्रकाश, पृ०-106.

सौन्दर्य-बोध सम्पन्न दृष्टि ही देख सकती है ।"[1]

केदार के काव्य में प्रकृति के परम्परागत सभी रूप-आलम्बन, उद्दीपन, पृष्ठभूमि, मानवीकरण, प्रतीक, अलंकार आदि मिल जाते है -

(1) प्रकृति का आलम्बन रूप : प्रकृति का शुद्ध नैसर्गिक रूप में चित्रण करना आलम्बन के अन्तर्गत आता है । इसमें कवि के लिए प्रकृतिसाधन न बनकर साध्य बन जाती है । कवि प्रकृति का निरीक्षण करता है और उसके सूक्ष्मतम तत्वों के प्रति आकर्षित होता है । 'वसन्ती हवा' नामक कविता में कवि ने हवा को अत्यन्त स्वच्छंद विचरण करने वाली एक अल्हड़ नायिका की तरह चित्रित किया है -

"हवा हूँ, हवा हूँ, मै बसन्ती हवा हूँ
वही हाँ, वही जो युगों से गगन को
बिना कष्ट श्रम के सम्हाले हुए हूँ,
हवा हूँ, हवा, मैं बसन्ती हवा हूँ
वही हाँ,वही जो धरा का वसन्ती
सुसंगीत, मीठा गुँजाती फिरी हूँ,
हवा हूँ,हवा मै बसन्ती हवा हूँ ।"[2]

पवन-सौरभ, सुमन-सुरभि, जलज-भौरे,चाँदनी-चन्दा आदि सभी का सौन्दर्य कवि को मुग्ध करता है और वह अपनी रूमानी रूझान के अनुरूप प्रकृति के इन रूपों के प्रति आत्मवत् संवेदना अनुभव करते

---

1. हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम,डॉ0रामदरश मिश्र,पृ07।
2. फूल नहीं रंग बोलते हैं(युग की गंगा की बसन्ती हवा नामक कविता से) पृ0 20.

हुए इनके सौन्दर्य का निरूपण करता है -

"पवन का है सौरभ से संग,
सुरभि का सुमनों से मद - मेल
जलज का है भौरों से साथ,
चाँदनी - चन्दा कब अनमेल ।"[1]

अपनी काव्य-यात्रा के प्रारम्भिक दिनों में कवि ने छायावादी ढर्रे की रहस्यवादी रचनाएँ भी प्रकृति के माध्यम से प्रस्तुत की हैं । प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों में किसी अज्ञात सत्ता का आभास पाया है । उदाहरण के लिए केदार की निम्नलिखित पंक्तियों में उनकी इस जिज्ञासा वृत्ति को देखा जा सकता है -

"अरे वहाँ तारों की कोई,
होगी अनुपम सुन्दर प्यारी ।
जिसे गगन में घेर घेर कर
झिलमिल करते हैं उजियारी ।"[2]

प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन करते समय भी कवि उसे निरा जड़ पदार्थ मानकर नहीं चलता । प्रकृति का हर रूप उसके लिए मानवीय संवेदना में जुड़कर प्रत्यक्ष होता दिखाई देता है । रात हो या दिन सबमें एक जीवंतता का दृश्य कवि के हृदय को स्पर्श करता है और वह उसी सद्भाव के साथ चाँद-चाँदनी और पृथ्वी के आपसी केलि क्रीड़ा का चित्र अंकित करने लगता है -

---

1. गुलमेंहदी (नींद के बादल की उन्नीसवीं कविता से):पृ0 83.
2. वही (नींद के बादल की पचीसवीं कविता से):पृ0 89.

"विश्व के वट वृक्ष के ऊँचे शिखर पर चाँद चढ़कर
चाव से नीचे निरखकर, दूध की बाँहें पसारें
मानवी मधुरा धरा को भेंटता है
और यौवन यामिनी की
चाँदनी का
फूल फेनिल चूमता है ।"[1]

केदार किसान जीवन के कवि है, इसलिए उन्हें प्रकृति के ये रूप अधिक आकृष्ट करते हैं जो किसानों के पौरूष से अभिसिक्त होते हैं । उनके यहाँ खेत और खलिहान किसानों के साथ मिलकर फागुन की मस्ती में झूम उठते हैं और हवा के झोंके संगीत की मीठी तान छेड़ देते हैं । पक्षी फाग-गीत गाने लगते हैं -

"आसमान की ओढ़नी ओढ़े
धानी पहने फसल घँघरिया
राधा बनकर धरती नाची
नाचा हँसमुख, कृषक साँवरिया
माती छाप हवा की पड़ती
पेड़ों की बज रही ढुलकिया
जी भर फाग पखेरू गाते
ढरकी रस की राग गगरिया ।"[2]

केदार को बाँदा से होकर बहने वाली केन नदी से बहुत प्यार है । वे घण्टों उसके किनारे बैठे रहते हैं । पानी का

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं (चाँद-चाँदनी नामक कविता से):पृ0 29.
2. वही : (खेत का दृश्य नामक कविता से):पृ0 31.

बहाव देखते हैं । पत्थरों से पानी की लुका-छिपी का दृश्य देखते हैं। यह सब देख-देखकर मुग्ध होते हैं और आश्चर्य चकित होकर इस प्राकृतिक सौन्दर्य की झाँकी अपनी कविता में उतारने का प्रयास करते हैं -

"केन किनारे पल्थी मारे, पत्थर बैठा गुमसुम
सूरज पत्थर सेंक रहा है गुमसुम
साँप हवा में झूम रहा है गुमसुम
पानी पत्थर चाट रहा है गुमसुम
सहमा सहा ताक रहा है गुमसुम ।"[1]

प्रकृति का उद्दीपन रूप : उद्दीपन रूप में प्रकृति मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करती हुई चित्रित की जाती है । प्रकृति संयोग-वियोग सुख-दुःख दोनों ही स्थितियों में मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करती है ।

सावन आता है / फुहार पड़ती है / धरती का रंग बदल जाता है / पुरवाई के झोंके युवा मन को मस्त कर देते हैं / उसकी सोयी हुई आदिम वासना जाग उठती है / वह स्वप्नों की दुनिया में खो जाता है ।

ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर कवि ने प्रकृति के इस उद्दीपन रूप का मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किया है -

"सावन की गुदगुदी हवा से,
मस्त हुआ पट्ठे का चोला
पेड़ तले महुए के बैठा,
लगा बजाने महुअर मन की

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं : पृ0 123.

सागर की अनगिन लहरों की
अन्तर की सैलानी ध्वनियाँ
आर-पार वन के अन्तर में
व्याप गईं उठ-उठ कर ऊँचे
बेकाबू हो गईं बिजलियाँ ।"[1]

बसन्त का आगमन सारी दुनिया को मदमस्त बना देता है । कोयल की कूक कवि के हृदय में हूक जगाती है । वह वासंतिक वैभव में अपनी प्रिया का आमंत्रण अनुभव करता है । उसका मन हर्ष और उल्लास से पुलकित हो उठता है - का यह उल्लासमय मादक चित्र अनूठा है ।

(3) प्रकृति का पृष्ठभूमि रूप : प्रकृति-चित्रण पृष्ठभूमि या वातावरण को उपस्थित करने में भी सहायक होता है । जहाँ गम्भीर वातावरण की आवश्यकता होती है, वहाँ कवि प्रकृति को गंभीर रूप में चित्रित करता है । जहाँ उसे उल्लासपूर्ण वातावरण पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत करना होता है, वहाँ वह प्रकृति को आनन्द एवं उल्लास के रूप में प्रस्तुत करता है ।

समाज में फैली गुलामी की मानसिकता और अन्ध विश्वासों की काली छाया को रूपायित करने के लिए कवि प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में अंकित करता है और शिशिर का घना कोहरा धीरे-धीरे पूरी धरती में फैल जाता है और प्रकाश का गला घोंट देता है । इस भयानक स्थिति को प्राकृतिक प्रतीकात्मकता प्रदान करके कवि लिखता है कि-

---

1. गुलमेंहदी (युग की गंगा की सावन का दृश्य नामक कविता से) पृ0 22.

"शिशिर निशा के दुर्दम घोर तिमिर में
यह परदेसी भारी लम्बा कोहरा
धीरे-धीरे प्रिय धरती पर उतरा
यहाँ-वहाँ फिर ठौर-ठौर पर ठहरा
घनीभूत हो गया अधिक ही ऐसा
नहीं दिखाई देता है, अब आगे
प्यारे धन, वन, खेत, गाँव सब खोए
निज स्वत्वों की नहीं निशानी मिलती ।"[1]

केदारनाथ अग्रवाल आस्थावादी कवि हैं । वे जीवन की जटिल परिस्थितियों से घबराकर निराश नहीं होते : बल्कि उन्हें पूरा विश्वास रहता है कि एक न एक दिन परिस्थितियाँ अवश्य बदलेंगी तथा जीवन में हर्ष और उल्लास का संचार होगा । अपने इसी विश्वास को उन्होंने प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है-

"पर निश्चय है, दृढ़ निश्चय है इतना
दिनकर जन्मेगा लपटों से लिपटा,
भस्मीभूत करेगा कोहरा क्षण में,
प्यारी धरती को स्वाधीन करेगा ।"[2]

प्रिया के सौन्दर्य का चित्रण करने के लिए कवि प्रकृति के नाना रूपों को आधार बनाता है और तुलनात्मक रूप से प्रिया को अधिक सुन्दर पाता है । प्रकृति की पृष्ठभूमि में प्रिया की सुन्दरता का यह चित्र दृष्टव्य है -

---

1. गुलमेंहदी (युग की गंगा की कोहरा नामक कविता से):पृ0 24.
2. वही.

"दिखलाती हो अरूणोदय में बिम्बाधर मुस्कान
संध्या में जावक, रजनी में अद्भुत केश-विलान
हिमकर में, मैने अवलोका तब मुख आभावान,
किन्तु कहाँ उसमें बतलावो अधर-प्रवाल समान ।"[1]

अमावस्या के अंधकार में जैसे पेड़ होते हुए भी दिखाई नहीं देते, इसी प्रकार आज के शोषणग्रस्त समाज में सामान्य जन का होना न होना अर्थहीन बनकर रह गया है । उसकी कोई भी कीमत नहीं रह गई । वह नाम भर के लिए है, पर उसकी पहचान करने वाला कोई नहीं है । वह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में अपना स्वत्व खो चुका है । प्रकृति की आड़ लेकर कवि इसी तथ्य को उद्घाटित करना चाहता है-

"पेड़ अमावस के अंधकार में लोप,
जमीन पर खड़े जरूर हैं
जैसे हम शोक के समुद्र में डूबे
अतल में पड़े मजबूर हैं ।"[2]

<u>§4§ प्रकृति का मानवीकरण रूप :</u> प्रकृति को मानव की तरह चेतनावस्था मेंदेखना हीमानवीकरण है । चंद्रगहना से लौटते हुए केदार खेत की मेड़ पर बैठकर देखते हैं कि वहाँ तो मानों स्वयंवर रचा जा रहा है -

"एक बीते के बराबर यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरैठा शीश पर छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खड़ा है ।
बीच में अलसी हठीली, देह की पतली, कमर की है लचीली,
नील फूले फूल को सिर पर चढ़ाकर, कह रही है,

---

1. गुलमेंहदी §युग की गंगा की चौंतीसवीं कविता से§पृ0 94.
2. फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ0 178.

जो छुये यह, दूँ हृदय का दान उसको ।"[1]

यहाँ चना, अलसी आदि का मानवीकरण किया गया है, और लोक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में प्रकृति का मनोरम दृश्य अंकित किया गया है ।

'बसन्ती हवा' का गत्यात्मक चित्र खींचते समय भी कवि आंचलिक वातावरण को बराबर याद रखता है और हवा का मानवीकरण करते हुए उसकी किशोर मानसिकता का अनूठा चित्र उपस्थित करता है -

"खड़ी देख अलसी लिए शीश कलसी
मुझे खूब सूझी,
हिलाया-झुलाया, गिरी पर न कलसी !
इसी हार को पा, हिलायी न सरसों, झुलायी न सरसों
मज़ा आ गया तब, न सुध-बुध रही कुछ
बसन्ती नवेली भरे गात में थी
हवा हूँ, हवा मैं बसन्ती हवा हूँ ।"[2]

केदार की मार्क्स दर्शन के प्रति अटूट निष्ठा है । वे प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों में मार्क्स-चेतना का आरोपण कर लेते हैं और फिर उनकी प्रकृति पूरे उत्साह के साथ लाल-क्रान्ति के मार्ग पर चल पड़ती है। गेहूँ का खेत लाल फौज बन जाता है और अपने अधिकारों के लिए हिम्मत के साथ जूझने का मन बना लेता है -

"आर-पार चौड़े खेतों में,
चारों ओर दिशाएँ घेरे

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं, मैं संग्रहीत: युग की गंगा की चंद्रगहना से लौटती बेर नामक कविता से, पृ0 27.

लाखों की अगणितसंख्या में,
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है ।
ताकत से मुट्ठी बाँधे है
हिम्मत वाली लाल फौज का
मर मिटने को झूम रहा है ।"[1]

अपनी प्रारंभिक रचनाओं में कवि प्रकृति को कभी-कभी रहस्यात्मक सत्ता के रूप में भी पहचानने की कोशिश करता है । आकाश की तारिका उसे एक बाला के रूप में दिखाई देती है और वह उससे सवाल करता है कि-

"नील नभ की ओ मनोरम तारिका लघुबाला ।
क्यों तुझे भाया सुविस्त्रत व्योम का अधिवास ?
हैं वहाँ पर तो सुशोभित चन्द्र - राज्य विशाल
ज्योत्स्ना करती अलौकिक रूप का उल्लास
और अगणित ग्रह, उपग्रह, कान्ति, कौस्तुभवान
हर्ष के आलोक में जाज्वल्य है अविराम । "[2]

जीवन में जब उदासी आती है, तो प्रकृति भी उदास दिखाई देती है । कवि के साथ-साथ उसके आसपास की प्रकृति में भी वैसे ही मनोभाव प्रकट होने लगते हैं। कवि के अहाते में खड़ा नीम का पेड़ कवि के दु:ख-सुख का साथी है । वह भी उसी तरह व्यथित होता है, जिस तरह कवि का मन रोता है । एक जीते-जागते मनुष्य की तरह नीम की यह उदासी देखने लायक है -

"यह उदास सा नीम खड़ा है मन को बिल्कुल डाले,
डाल-डाल की बाँह बिछी है तोते निर्मम छाले ।

---

1. युग की गंगा : पृ0 21,
2. गुलमेंहदी में संग्रहीत : नींद के बादल की तीसवी कविता सेपृ0-9।

नहीं झूमता एवर-ग्रीन ले लाल कुसुम केप्याले
खड़ा हुआ है जैसे-तैसे अपनी साँस सम्हाले ।"[1]

नीम ही नहीं कनेर का छोटा पौधा भी कवि के दु:ख से दु:खी होता है और संकट की घड़ी में सन्न हो जाता है और तो और दूब भी सन्नाटे में डूब जाती है । सारी प्रकृति मानवीय राग से ओत-प्रोत दिखाई देती है -

"मेरा छोटा सा कनेर प्यारा चुपचाप खड़ा है,
आज लड़कपन, भूल न जाने क्यों बन गया बड़ा है
नन्हीं घास, हृदय की प्यारी मुझसे ही घबराती
नहीं लिपटकर पाँव चूमती, प्यार नहीं दरसाती ।
आती आयु-नहीं गाती है मीठी प्राण प्रभाती
जाती है चुपचाप चली वह हमसे ही कतराती ।"[2]

सूर्य की अनन्त यात्रा को कवि जीवन्त रूप में चित्रित करता है और उसे एक यात्री का रूप देकर उसमें मानवीय क्रिया-कलापों का आरोपण कर देता है -

"महाकाश का यात्री दिनकर
अस्ताचल की ओट चला
करके स्वर्ण - विभूषित जगती का
नभ उन्नत भाल चला ।"[3]

छायावादी कवियों की तरह कभी-कभी, विशेष रूप से अपनी

---

1. गुलमेंहदी में संग्रहीत, नींद के बादल की इकतीसवीं कविता से, पृ-92
2. गुलमेंहदी में संग्रहीत, नींदकेबादल की इकतीसवीं कविता से, पृ0-92
3. वही, बत्तीसवीं कविता से, पृ0 92-93.

काव्य यात्रा के प्रारंभिक दौरे में केदार ने प्रकृति को रति-राग की भाव-भूमि में अंकित किया है। सन्ध्या सुन्दरी उनके यहाँ एकनायिका की तरह सबका मन मोहती आती है। सन्ध्या रूपी नायिका का यह लज्जासिक्त मुखमण्डल केदार के शब्दों में कुछ इस प्रकार लगता है-

"आई सन्ध्या सुन्दर सुवेश
खोले रेशम के स्वर्ण केश
अपनी लज्जा से आप लाल
अग-जग को करती लाल-लाल
पश्चिम प्रदेश का रंग राग
उसके आनन का है पराग

x x x x

सब ओर यही सन्ध्या सुहाग
बिम्बित था प्रतिबिम्बित सुहाग।"[1]

प्रात:काल के नैसर्गिक सौन्दर्य को चित्रित करने के लिए कवि सूर्य, प्रकाश, पवन, फूल आदि का सजीव चित्रांकन करता है और ऐसा लगता है कि, मानों, सबके सब मनुष्योचित क्रिया-व्यापार कर रहे हों-

"रवि मोर सुनहरा निकला, पर खोल सवेरा नाचा
भू-भार कनक गिरि पिघला, भूगोल मही का बदला
नवजात उजेला दौड़ा, कन-कन बन गया रूपहला
मधु-गीत पवन में गाया, संगीत हुई यह धरती
हर फूल जगा मुस्काया।"[2]

केदार रूमानी रूझान के कवि हैं, अत: उनके प्रकृति-चित्रण में

---

1. गुलमेंहदी में संग्रहीत : नींद के बादल की छत्तीसवीं कविता से पृ० 100 - 101.
2. फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ० 30.

भी रूमानियत की छाप सर्वत्र देखी जा सकती है । प्रात:काल पूर्व में बालारुण मुस्काता है, तो उसकी कंचन किरणें ग्रामीण धरती को कितना सुहावना और मादक बना देती हैं, यह केदार की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"धीरे से पाँव धरा धरती पर किरनों ने
मिट्टी पर दौड़ गया लाल रंग तलुवों का
छोटा सा गाँव हुआ केसर की क्यारी सा
कच्चे घर डूब गए कंचन के पानी में
डालों की डोली में लज्जा के फूल खिले
ऊषा ने मस्ती से फूलों को चूम लिया ।"[1]

केदार जी के प्रकृति चित्रण में एक खास बात यह है कि वह प्रकृति को किसी निर्जीव पदार्थ की तरह व्यवहृत नहीं करते । प्रकृति का एक-एक अंग चाहे वह पत्थर हो या पानी, धरती हो या आसमान के चाँद-सितारे, सभी कवि के आत्मीय बंधु-बांधव बनकर अपने सचेतन रूप में कवि से हँसते-गाते-बातें करते हैं । चाँद-चाँदनी की धरती के साथ रति-विषयक आँखमिचौनी का यह मानवीकृत रूप सचमुच बेजोड़ है-

"विश्व के वटवृक्ष के ऊँचे शिखर पर, चाँद चढ़कर
चाव से नीचे निरखकर
मानवी मधुरा धरा को भेंटता है
और यौवन यामिनी की
चाँदनी की फूल फेनिल चूमता है ।"[2]

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ0 33.
2. फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ0 29.

(5) प्रकृति का प्रतीक रूप : केदार को प्रकृति से प्रगाढ़ प्रेम रहा है, इसलिए उनके काव्य में प्रतीकों का चयन अधिकांशत: प्रकृति के क्षेत्र से किया गया है । सामाजिक यथार्थ की वाणी देने के लिए कवि ने प्राय: प्राकृतिक प्रतीकों का ही चुनाव किया है।-

(6) प्रकृति का अलंकार रूप : केदार ने अपने काव्य के लिए उपमान अधिकतर प्रकृति के असीमित कोष से ही लिए हैं । जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए उन्होंने प्राकृतिक दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए उन्होंने प्राकृतिक अप्रस्तुत विधान का ही सहारा लिया है-

"जीवन तप्त प्रकाश - सूर्य है
जो गहरे सागर से उभरे
लाल अग्नि-सा पहले दहके
जड़-चेतन, सम्पूर्ण प्रकृति के
रोम-रोम में ज्वाल उगल दे
x x x x
अम्बर अवनी जो ऐसा आलोकित कर दे
जीवन ही बन जाये उजाला
और ढले फिर धीरे-धीरे
अस्ताचल की ओर अकेले
हिमांचल को जैसे तपसी
गेरुआ वस्त्र पहनकर जाता ।"[1]

इन पंक्तियों में रूपक और उपमा अलंकार का सौन्दर्य दृष्टव्य है ।

---

1. गुलमेंहदी में संग्रहीत (युग की गंगा की मोमबत्ती और सूरज नामक कविता से.प0 57

चाहे दिन हो या रात सभी को केदार ने ग्रामीण परिवेश के साथ जोड़कर चित्रित किया है । रात होने पर एक स्वस्थ रूमानी चित्र देखिये -

"दिन हिरण सा चौकड़ी भरता चला
धूप की चाद सिमटकर खो गई
खेत, घर, बन, गाँव का दर्पण किसी ने तोड़ डाला
शाम की सोना चिरैया नीड़ में जा सो गई
पेड़ पौधे बुत गए जैसे दिये
केन ने भी जाँघ अपनी ढाँक ली, रात यह रात
अंधी रात, और कोई कुछ नहीं है बात ।"[1]

केदार को केन नदी बहुत प्रिय रही है । केन के अनेक रूपों की छवि कवि उतारता है । ग्रीष्मकाल में केन की क्षीणधारा ऐसी लगती है, जैसे आकाश में बादल से बिछुड़ी हुई बिजली -

"रवि के खरतर शर से मारी
क्षीण हुई तन-मन से हारी
केन हमारी तड़प रही है
गरम रेत पर जैसे बिजली
बीच अधर में घन से छूटी
तड़प रही है ।"[2]

दिन की उदासी और नीरसता का चित्र खींचने के लिए कवि उसे एक मौन और स्तब्ध पक्षी से उपमित करता है और इस तरह मानवीय भावनाओं का स्पर्श देकर चित्र को जीवन्त बना देता है-

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ० 58.
2. वही, पृ० 154.

" मौन पक्षी सा बड़ा दिन नीम पर बैठा रहा
मारने पर भी बड़ा ढेला, उड़ा पक्षी नहीं
नीम ने भी तो नहीं नीचे ढकेला
आज यह कितना अकेला, निलज, नीरस आज का दिन।"[1]

समाज में व्याप्त अन्धविश्वास और दिशाहीनता का अंकन करने के लिए कवि अनेक उपमान जुटाता है, जिनमें से अधिकांश प्रकृति के क्षेत्र से चुने गए हैं। इस रूपायन में कवि की प्रगतिशील चेतना का स्वर स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है -

"अंधकार की चुप्पी, बँधा हुए जूड़े सी चुप है
और तरल है अतल सिन्धु सी मै, इस चुप्पी के जलतल में
पूरा डूबा, खोज रहा हूँ, बिछुड़ी मछली, वह जो मुझसे
छूट गई है जैसे घन से, लिपटी बिजली छूट गई है।"[2]

निम्नलिखित पंक्तियों में दिन की उपमा उस फूल से की गई है, जो आकाश के अन्धकार रूपी तरू से झर गया है और जिसकी गंध पृथ्वी पर नहीं रह गई है और रात ऐसी आ रही है जैसे बरसात की सघन घटा -

"दिन झर गया जैसे फूल, संध्या समय, आकाश के
श्याम तरू से, धरातल पर न रही गंध, न रही छटा
आई रात, जैसे घटा उमड़ आई बरसात की।"[3]

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं : पृ0 59.
2. वही, पृ0 60
3. वही, पृ0 164.

निष्कर्ष :

केदार प्रकृति से जानदार जीवों की तरह प्रेम करते हैं। वे जीवन संघर्षों से हार मानकर प्रकृति की गोद में ~~प्रकृति की गोद में~~ मुँह छिपाने नहीं जाते, मानव जीवन के सन्दर्भ में ही उन्होंने प्रकृति के प्रति अपना प्रेम निवेदित किया है । इसलिए प्रकृति के उन्हीं रूपों ने उसे सबसे अधिक प्रभावित किया है, जो उनके गाँव या नगर के आसपास फैले हुए हैं और जिनसे उसका घनिष्ठ सम्बन्ध भी है । कवि इस सुपरिचित प्रकृति के साथ आत्मवत् संवेदना अनुभव करता है और उससे मिलकर एक रूप, एक रस हो जाता है । बुन्देलखण्ड की प्रकृति और वहाँ के जन-जीवन का यथार्थ उनकी कविता के मुख्य विषय हैं । 'केदार' जी को बुन्देलखण्ड की आँचलिक प्रकृति से बहुत लगाव है । केदार के प्रकृति चित्रण में उनकी प्रगतिशील चेतना सर्वत्र देखी जा सकती है । प्रकृति चित्रों में लोक संस्कृति का स्पर्श केदार की एक उल्लेखनीय विशेषता है।

xxxxxxxxxxx
xxxxxxxxx
xxxxxxx
xxxxx
xxx
x

पंचम - अध्याय

शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में प्रकृति-चित्रण

शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण किया गया है । वे कभी प्रकृति को आलम्बन रूप में चित्रित करते हैं तो कभी प्रकृति मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करने का कार्य करती है । कभी प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से कवि अपनी बातकहता है, तो कभी अपनी कविता का श्रृंगार करने के लिए वह प्रकृति से उपमान खोजता है । प्रकृति पृष्ठभूमि का भी कार्य करती है, सुमन जी के यहाँ प्रकृति के कोमल और परूष दोनों ही रूपों का चित्रण मिलता है । प्रकृति उनके यहाँ मानवीय राग-रंग में रंगकर आती है और मानवोचित आचरण करते हुए दिखाई देती है ।

(1) प्रकृति का कोमल एवं भव्य रूप-

सुमन जी प्रगतिवादी कवि हैं, किन्तु उन्होंने वाद की अपेक्षा काव्य को अधिक महत्व प्रदान किया है । वे भावावेग के कवि रहे हैं । प्रणय व प्रकृति के सन्दर्भ में उन्होंने अनेक भावगीतों की रचना की है -

"इस सुषमा का अन्त नहीं है,
पतझर यहीं वसन्त यहीं है ।
यहीं कोयलिया कूक-कूक कर,
कर देती हैरान
अभी कहाँ मैं गा पाया हूँ
अपने जीवन गान ।"[1]

'जीवन के गान' संग्रह में 'कैसा मधुर सुप्रभात था' कविता

---

1. जीवन के गान : सुमन, अभी कहाँ मैं गा पाया हूँ अपने जीवन गान कविता से, पृ0 11.

में कवि ने प्रकृति के रम्य चित्रों को कल्पना की रेखाओं से चित्रित किया है -

"अति स्पष्ट पड़ती थीं सुनाई
निर्झरों की ध्वनि विकल
थीं मल रहीं पलकें उषा
मुख धो रहे थे सुमनदल
तरु, लता, कुसुम, कलि पल्लवों का गात सद्य: स्नात था
कैसा मधुरसुप्रभात था ।"[1]

प्रकृति सम्बन्धी कुछ कविताएँ प्रतीकों के रूप मेंहै । 'निर्झर' कविता में निर्झर यौवन का प्रतीक है । 'सूरज ढल रहा है' में कवि ने सन्ध्या के समय का चित्र खींचा है । कवि के शब्दों में -

"विहग आकुल नीड़ मुखरित
रागपथ लज्जित दिशायें
थके हारे श्रमिक सुस्थिर
दिग्वधू लेती बलायें ।"[2]

'पर आँखें नहीं भरी', संग्रह में भी प्रकृति के चित्र यत्र-तत्र मिल जाते हैं । प्रकृति के चित्र प्रस्तुत करते समय कवि ने कभी-कभी लोकशैली के आधार पर भी कविताओं का निर्माण किया है । उदाहरण के लिए-

"ताल-तलैया भरे चहुँ ओर
झकोर हिलोर में डोले हिया

---

1. जीवन के गान : सुमन, कैसा मधुर सुप्रभात था नामक कविता से, पृ० 20.
2. वही, सूरज ढल रहा है नामक कविता से, पृ० 36.

दूब की चादर फैली दिगंत लौ
मोर को शोर भयो रे जिया ।"[1]

कवि को प्रकृति चारों ओर हरी-भरी समृद्ध दृष्टिगोचर हो रही है । कवि को आकाश में सोने-चाँदी की फसलें दिखाई दे रहीं है और पृथ्वी पर ज्वार-बाजरे की खेती लहराती हुई दिखाई दे रही है । जब पूर्ण चाँदनी रात होती है तो सागर में सैकड़ों ज्वार-भाटे आते हैं-

"हर सरिता की लचकीली लहरें डसती हैं
हर अंकुर की आँखों में कोर समाती है
हर किसलय में अधरों की आभा खिलती है
हर कली हवा में मचल-मचल इठलाती है ।
अम्बर में उगतीं सोने-चाँदी की फसलें
ये ज्वार बाजरे की खेती लहराती है
अन्तर में इसका बिम्ब उभरता है
चाँदनी सिन्धु में सौ-सौ ज्वार लगाती है ।"[2]

सुमन जी के प्रकृति चित्रों में उनकी प्रगतिशील दृष्टि का जगह-जगह दर्शन होता है । आकाश मेघाच्छादित है । चन्द्र को राहु ग्रस रहा है । यह सब कोरा प्रकृति-चित्रण नहीं है, इसके पीछे कवि के मन में समाज की दुर्गति का चित्र नाचता है और वह उसे प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से वाणी देने के लिए व्याकुल है -

---

1. ~~विश्वास~~ पर आँखें नहीं भरी :सुमन, आज की साँझ सलोनी बड़ी मन भावनीरी, पृ0 27.
2. विन्ध्य हिमालय : सुमन, युगवाणी नामक कविता से, पृ0 30.

"चिर-अनादि चिर - अनन्त की परम्परा
मेघ घिर रहे हैं क्योंकि उर्वरा धरा
आज पूर्ण चन्द्र-बिम्ब राहु-ग्रस्त है
थरथरा रहा है किन्तु तम घिरा-घिरा ।"[1]

कवि का मन जीवन के आघातों से हार नहीं मानता । वह प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण करता है और पूरे उत्साह के साथ जीवन-पथ पर आगे बढ़ता ही जाता है । उसे पूरी आशा है कि एक न एक दिन वसन्त का वैभव धरती पर अवश्य आएगा । उसकी यही आशा उसके जीवन का सबसे बड़ा सम्बल है -

"मुड़कर नहीं देखते जीवन के रस से संचालित निर्झर
झंझा की संदेशवाहिका वायु नहीं रूकती है पथ पर
सुमनों की मधु-गंध मलय बन चल देती सौरभ बिखराने
लौट उसी में फिर आने के गाती फिरती नहीं तराने
जब तक कली-कली उपवन में सुरभि ग्रन्थियाँ खोल रही है
सौ-सौ पतझारों के बल पर सूख नहीं सकते, मधु के कन
छोटे मोटे आघातों से हार नहीं सकता मेरा मन ।"[2]

'सुमन' जी छोटी-मोटी असफलताओं से घबराते नहीं है । वे प्रकृति के एक-एक कण-कण से जीवनशक्ति अर्जित करते हैं और पूरी निष्ठा के साथ अपने गन्तव्य की ओर बढ़ते रहते हैं । उन्हें विश्वास है कि सावन के बादल धरती को उर्वरा करने से कभी चूक नहीं सकते -

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया : सुमन, मै मनुष्य के भविष्य से नहीं निराश, नामक कविता से, पृ० 9.
2. वही; छोटे-मोटे आघातों से हार नहीं सकता मेरा मन, पृ० 12.

"हमीं अकेले नहीं तपा करती हैं, सारी सृष्टि यहाँ पर
बूँद एक दो नहीं, उमड़ते हैं, सावन-भादों के जलधर
लूक-लपट-संहार, हृदय, उर्वर करने के ही साधन हैं,
जन-जन के उच्छ्वास किसी वर्षा के उमड़ घुमड़ते घन हैं
जब तक बूँद-बूँद रवि की, ज्वाला पर जीवन तोल रही है
ऊसर को उर्वर करने से, चूक नहीं सकते सावन घन ।"[1]

कवि के मन में आशा का भाव इतना प्रबल है कि वह कभी निराश नहीं होता । जीवन की बाधाओं से उसे अपनी दिशा खोजने में सहायता मिलती है । प्रकृति उसका मार्ग प्रशस्त करती है-

"अन्तर में साँसों का उभार
साँसों में स्वप्नों का प्रसार
दाएँ-बाएँ ऊँचे कगार
लघु-लघु लहरों की कल-कल में कुछ कहता
सुनता जाता है

x x x

जब घनी बदलियाँ छाती है
पथ पर बाधाएँ आती है
आँखें सूनी हो जाती हैं
कुछ सोच-समझ अपनी गति में बह नई
प्रखरता लाता है ।"[2]

कभी कभी अपनी भावनाराशि को मूर्त्त रूप देने के लिए कवि

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया : सुमन, छोटे-मोटे आघातों से हार नहीं सकता मेरा मन, पृ० 13.
2. वही, जीवन बहता ही जाता है नामक कविता से, पृ० 15-16

प्रकृति से उपमान जुटाता है और आलंकारिक तरीके से अपनी अभिव्यक्ति को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करता है -

"आकुल तृषित मृग-अंध को
मरु में दिखा जो सिन्धु सा
आतुर-अधर की चाह पर
जब उड़ गया हिम बिन्दु सा
तब भूल के इतिहास पर
विश्वास बढ़ता ही गया ।"[1]

'सुमन' जी प्रकृति के कण-कण में जीवन की दार्शनिक व्याख्या देखते हैं । जीवन के उतार-चढ़ाव, सुख-दुःख सब प्राकृतिक संवेदनाओं की सच्ची संवाहक है -

"पृथ्वी के कण-कण में उलझे हैं, जन्म मरण के बन्धन
रोई तो पल्लव-पल्लव पर, बिखरे हिम के दाने
विहँस उठी तो फूल खिले, अलि गाने लगे तराने
लहर उमंग हृदय की आशा-अंकुर, मधुस्मित कलियाँ
नयन ज्योति की प्रतिछवि, बनकर बिखरी तारावलियाँ
रोमपुलक, वनराजि, भावव्यंजन, कल-कल ध्वनि निर्झर
घन उच्छ्वास, श्वास, झंझा, नव-अंग-उभार गिरि-शिखर
सिन्धु चरण धोकर कृतार्थ, अंचल थामे छिति अम्बर
चन्द्र-सूर्य उपकृत निशदिन, करकिरणों से छू-छू कर
अन्तस्ताप तरल-लावा, करवट, भूचाल, भयंकर ।"[2]

प्रकृति - चित्रों में वासन्तिक वैभव का विशेष महत्व है ।

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया; सुमन, विश्वास बढ़ता ही गया नामक कविता से, पृ0 20.
2. वही, आज देश की मिट्टी बोल उठी है नामक कविता से, पृ0 46.

बसन्त का आगमन होते ही सारी धरती का रंग-रूप बदल जाता है । हर ओर एक नया उत्साह दिखाई देने लगता है । प्रकृति का श्रृंगार हो जाता है और वह मन-भावन लगने लगती है -

"आया बसन्त कोंपल फूटी, नव सृजन शक्ति सी लाल-लाल
डाली-डाली पर किलक उठे, नवजात मांसल शिशु - प्रवाल
पल्लवित लता, पुलकित-मनोज, आशा हरीतिमा गई फैल
बौरे रसाल पर मुग्ध, कुहुकने लगी कोयलिया गैल-गैल ।"[1]

सुमन जी प्रकृति के उदार चरित्र को उद्घाटित करते हैं । प्रकृति का एक-एक अंग सार्थक है और उसकीसार्थकता मानव जीवन को नई-स्फूर्ति प्रदान करती है । वृक्ष हों या हरी-भरी दूब-सबमें लोकोपकार की भावना निहित है -

"नव विकसित शाखाओं पर, अलि-कलि हिलमिल कर सकें खेल"
या हरियाली इसलिए कि, तन, आतप की लपटें सकें झेल
हे विश्व ! तुम्हारे लिए सादा, मै सहूँ शीश पर जलन-घाम
मेरी छाया में श्रान्त-पथिक, खोएँ थकान, पाएँ विराम ।"[2]

कवि जब मौज-मस्ती की मनःस्थिति में होता है तो उसे प्रकृति के विभिन्न रूपों में राग-रंग का प्रत्यक्ष दर्शन होता है । प्रकृति का चप्पा-चप्पा, हँसता-खिलखिलाता दिखाई देता है । सर्वत्र जवानी की उमंग हिलोरे लेती है -

"क्षितिज में मेघ फटते थे, उषा भी खिलखिलाती थी
नए पत्तों, पंखुरियों पर नए मोती ढलाती थी

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया; सुमन, आश्रय नामक कविता से, पृ0 78.
2. वही, पृ0 79.

कि दिन में दीप जलते थे, कि तन में दीप जलते थे
निशा में दीप जलते थे, दिशा में दीप जलते थे

x x x

पवन - नर - नारी - निर्झर में रवानी ही रवानी थी
कली-अरू-अलि-तरू-लता सब में जवानी ही जवानी थी।"[1]

प्रकृति का सौन्दर्य कवि को मुग्ध कर देता है और वह घण्टों, प्राकृतिक छटा निहारता रहता है। उसके मन पर प्रकृति के सौम्य-रूपों का अमिट प्रभाव अंकित हो जाता है और वह लुटा-लुटा सा प्रकृति-सौन्दर्य का रसपान करता रहता है -

"महुओं से मदमाते मनसूबे मन बीते
गाफिली ही गाफिली में कोयलिया लूट गई
दहकन पलाशों की चुपके से गई जला
श्रवणों से सरके शिरीषों का अता पता
अमलतासी भौरों की झालर सी झलक बता
सरगम के पददों में घुटते वातासों सी
साँस कहीं छूट गई।"[2]

सुमन जी का प्रकृति-प्रेम निरर्थक नहीं है। वे प्रकृति की रीति-नीति से आन्दोलित होकर जीवन को एक स्वस्थ दिशा देते हैं और कुछ नया रचनात्मक अभियान छेड़ते हैं। कर्मशील जीवन की तड़प उनके अन्दर तक कुरेद जाती है -

"घनघोर घटाओं की जब दरकी छाती
फूटे किरनों के अरूण बान अनियारे

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया; सुमन, जल रहे हैं दीप जलती है जवानी नामक कविता से, पृ० 103.

2. वाणी की व्यथा ; सुमन, नए गीत लिखने की आदत सी छूट गई नामक

कलियों का पोंछ पसीना मलमल मचला
बिखरे किसलय के केस गहन गभुआरे
कुछ नई क्यारियाँ हमने गोड़ी सींचीं ।-[1]

जलाशय का सौन्दर्य कवि को द्रवित कर देता है । वह सागर की अतल गहराइयों में डुबकी लगाने के लिए व्याकुल हो जाता है । सागर की लोल लहरों के बीच जल-जीवों की आँख-मिचौनी कवि को मोहित कर लेती हैं । वह एक-टक इस अनुपम सौन्दर्य को देखता रह जाता है -

"सुनते आये थे अमर लोक में नंदन वन
सागर के अन्तर में विलसित सुषमा उपवन
पुरइन के पाँतों से आच्छादित निविड़ कुंज
मरकत अधरों से समुच्छ्वसित माधुर्य पुंज
नीली-पीली-बैंगनी-कपिश चल शफरी दल
लहरिया दुपट्टे सी लहराती मचल-मचल ।-"[2]

सामाजिक हलचल की छाया कवि प्रकृति के विशाल प्रांगण में देखता है । सामान्य जन भी जागरूकता और अपने अधिकारों के प्रति कमर कसकर खड़ा होना कवि की प्रगतिशील चेतना को उद्घाटित करता है -

"उठी जल दिशाएँ, जलें या बुझाएँ
कि सोना निशा का गला जा रहा है
कि मोती उषा का ढला जा रहा है
मची लूट अब कौन किसको सँभाले

---

1. वाणी की व्यथा : नया वर्ष नयावर्ष नामक कविता से, पृ० 50.
2. वाणी की व्यथा : 'सुमन' सिन्धु गर्भ दर्शन नामक कविता से, पृ-3।.

मलिन मुख सितारे
बनी बूँद धारा, कि सागर पुकारा
पहाड़ों के अन्तर अचानक हिले हैं
पिघलते हैं पत्थर कि सोते मिले हैं
इसी बेसुधी में गए खो किनारे हुए सिन्धु खारे ।"[1]

जनकवि प्रणय की उमंग में होता है तो उसे प्रकृति की गोद में सर्वत्र उत्साह ही उत्साह दिखाई देता है । संध्या का मन-भावन रूप कवि के हृदय की इन्हीं अनुभूतियों का साक्षी है -

"ताल तलैया भरे चहुँ ओर
झकोर हिलोर में डोले हिया
दूब की चादर फैली दिगंत लौं
मोर को शोर मरोरै जिया
आ रही काजर आँजे निशा
पुतलो में घिरी घटा साँवरी री
आज की साँझ सलोनी बड़ी मन भावनी री ।"[2]

यही संध्या प्रिया वियोग के क्षणों में कवि के हृदय को उद्वेलित करने लगती है । फाल्गुन की मस्ती सावन की घटाओं में बदल जाती है । रह-रहकर पुरानी बातें याद आने लगती हैं । आँखें सजल हो उठती हैं -

"आज कहाँ से फिर आ पहुँचा, फागुन में सावन
सुबह उड़ी थी धूल, शाम को घिर आए बादल ।

---

1. पर आँखें नहीं भरी, 'सुमन', कई बार नामक कविता से, पृ0-9.
2. वही, आज की साँझ सलोनी बड़ी मन भावनी री, पृ0 25.

वासन्ती रातों में बरसा किन आँखों का जल
पतझर की नंगी डालों में, पुलक उठा यौवन ।"[1]

वर्षा के दिनों में तो अन्तर्वासी मन और भी व्यथित हो जाता है । प्रिया की याद आती है । सब कुछ हरा-भरा दिखता है, किन्तु कवि का मन सूना-सूना लगता है । प्रकृति का सौन्दर्य भी कवि की मन: स्थिति को विश्राम नहीं दे पाता । ~~वह~~ उसके प्रेमभाव को और भी उद्दीप्त करता है -

"मुक्त हृदय कर रहा यहाँ नभ व्यथा विसर्जन
विश्व भ्रमण परिश्रान्त-क्लान्त सुस्थिर विथकित - मन
जीवनदाता जलद वियोगी अन्तर्वासी
लौट रहे घर लुटे-लुटे से पथिक प्रवासी
दिन-दिन बरस रहे हैं बादल आड़े तिरछे
उतर रहे यानों से डगमर पर घर नीचे
यह पर्वत पर्यंक हरित मखमली सुहावन
घेरे खड़े विमुग्ध इन्द्र सहचर जीवन-धन ।"[2]

सुमन जी प्रगतिशील जीवन-दर्शन के पक्षधर कवि हैं । किन्तु कभी उन्हें प्रकृति के बीच किसी अदृश्य शक्ति का आभास भी मिलता हुआ दिखाई देता है । यह रहस्याभास प्रकृति की विविध मुद्राओं में अपनी उपस्थिति की सूचना देता है । इसी भाव-भूमि को कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में अंकित करने का प्रयास किया है ।

---

1. पर आँखें नहीं भरी :सुमन, फागुन में सावन नामककविता से, पृ0 36
2. वही, घेरापूँजी नामक कविता से, पृ0 38.

"तिनकों-तिनकों में जो मोती ढलते हैं
चंदा - ग्रह - तारे - ज्योति- बीज बोते हैं
ऊषा - संध्या जिनमें जगते सोते हैं
जिसका चटकीलापन चपला में ढलता
जिसका मटमैलापन बहार में पलता
जो सोनजुही में चुप-चुप फूल गया है
जो चम्पक अपनी गमक उँडेल गया है
चाँदी के झूले में जो झूल गया है ।"[1]

कवि बादल के जीवनदायक करूणार्द्र रूप से बहुत प्रभावित है । वह बार-बार बादलों की जीवन-दायिनी प्रकृति को सराहता है और मानव समाज के लिए उसके इस स्वभाव की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है । पीड़ित मानवता के लिए बादलों से बड़ा उपकारी और कौन हो सकता है ? वह तो नवजीवनदाता है -

"हे करूणाधन ! तुम कहाँ नहीं कब बरसे
कलियाँ चटकीं, किसलय मर्मर, ऊसर उर्वर
नवजीवन लाली, शान्ति सुधामय हरियाली बरसी भू पर

x x x

राका के सपने बिछा दिये, सागर की क्षुब्ध तरंगों पर
चिर दग्ध उपेक्षित जीवन में, शतदल का बिजना हाथ लिए
मधु मलय वात बन तुम डोले, हिंसक पशुओं के घावों को
नवनीत अहिंसा की उँगली से, सहलाया हौले-हौले ।"[2]

सन्ध्याकालीन चित्रण है, पक्षी व्याकुल होकर अपने नीड़ की ओर लौट रहे हैं । श्रमिक भी शाम को थककर अपने घर लौट रहा

---

1. पर आँखें नहीं भरी; सुमन, कलाकार के प्रति नामक कविता से, पृ० 66
2. वही ; युगसारथी गाँधी के प्रति नामक कविता से, पृ० 87-91.

है दिन का प्रकाश समाप्त हो रहा है । शाम का दीपक जल रहा है । संसार का कोलाहल समाप्त होता जा रहा है । कमल बन्द हो रहे हैं । कुमुद खिल रहे हैं, विशाल सिन्धु बड़ी-बड़ी लहरें ले रहा है -

"विहग आकुल नीड़ मुखरित, रागमय लज्जित दिशाएँ
थके हारे श्रमिक सुस्थिर, दिग्वधू लेती बलायें
उधर ज्योति विहीन होती, इधर दीपक जल रहा है
सूरज ढल रहा है
शान्त होता जा रहा है, विश्व कोलाहल अनियमित
उधर सकुचाता जलज, इस ओर कुमुदिनि विहँस गर्वित
सिन्धु बाहु विशाल फैला, बार-बार उछल रहा है ।"[1]

इस प्रकार का एक चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"खिल रही कली, हँस रहे सुमन, थपकी देती मंथर बयार
पल्लव-पल्लव से फूट रहा, सुखमय सुहाग का आकर्षण

x x x

फिर बोलीं ठहरो देखो तो सरिता विलीन है सागर में
यों ही उठ-उठ गिर बार-बार ये साथ-साथ बहने वाले
खिलते ही रहे फूल उपवन में सौरभ बात चले हिलमिल
दो पक्षी चहक रहे हों अपनी अमर किलोलों में हिलडुल
कोयल भी निशदिन रहे कूकती कर बसन्त का आह्वान
फैला हो नभ के प्रांगण में ऊषा सुहागिनी का अंचल ।"[2]

प्रकृति का उन्मुक्त रूप में चित्रण है, कली और फूल खिल रहे है जिन्हें हवा थपकी सी दे रही है । पल्लव-पल्लव से सुहाग फूट रहा

---

1. पर आँखें नहीं भरी ; सुमन, सूरज ढल रहा है नामक कविता से, पृ0 36
2. हिल्लोल : सुमन, मिलन नामक कविता से, पृ0 77-78

है । सरिता सागर में विलीन हो जाती है । कवि कह रहे हैं कि फूल उपवन में हमेशा खिलते रहें । सौरभ हमेशा वायु में मिलकर बहती रहे । पक्षी चहकते रहें । कोयल हमेशा वसन्त का आह्वान करती रहे और हमेशा नभ के प्रांगण में ऊषा सुहागिनी का अंचल फैला रहे ।

प्रकृति का मानवीकरण करते हुए कवि जिज्ञासा करता है कि रात्रि के समय आकाश में चन्द्रमा क्यों भटकता है ? क्या इस भटकन के पीछे अज्ञात सत्ता कार्य करती है ? यह क्रम तो अनादिकाल से चला आ रहा है । प्रकृति की यह माधुरी आखिर हमें क्या सन्देश देती है -

"अम्बर ब्रज बनवीथी की, मधुघट छलकाती ग्वालिनि
मेरे नभ-मन मानस की, मंथर गति मंजु मरालिनि
चल पंखों से नीला जल, पल-पल प्रतीक्षित करती
सूने अम्बरतट पर क्यों, एकाकी सदा विचरती
सुख सरिता की लहरों पर, पंखों की कोर भिगोती
क्यों भटक रही हो सुन्दरि, चुगती तारों के मोती ।"[1]

कवि के लिए गौरैया और तितली जैसे प्रकृति के मनोरम जीवभी कम आकर्षण का केन्द्र नहीं हैं । वह इन्हें सम्बोधित करते हुए अपनी हृदय की स्नेहधारा प्रवाहित करता है और इनके सौन्दर्य से मुग्ध होकर अपनी कविता का श्रृंगार करता है -

"मेरे मटमैले अँगना में फुदक रही गौरैया,

x x x

सूक्ष्म बायवी लहरों पर संचरण कर रही सर-सर
हिला-हिला सिर तुझे बुलाते, पत्ते कर-कर, मर-मर

---

1. हिल्लोल : सुमन, शशिबाला नामक कविता से, पृ0 85.

तू प्रति अंग उमंग भरी सी, पीती फिरती पानी
निर्दय हिलकोरों से डगमग फिरती मेरी नइया ।"[1]

(2) ओ इन्द्रधनुष के रंगवाली, सतरंगी, बहुरंगी तितली
तेरी साँसों में मलयवास, तेरी गति मेंअगणित कंपन
खिलने के पहले कलिका के, अधरों की मोद भरी सिहरन
प्रस्फुटित अबोध कामना सी, तू ही सजीव अधखिली कली।"[2]

सुप्रभात आती है, तो लगता है मानों कोई नई - नवेली नायिका ही सज-धज कर धरती पर उतर रही हो । कवि इस अनुपमेय सौन्दर्य से अभिभूत होकर वाह - वाह कर उठता है ।

"प्राची क्षितिज के द्वार पर
जब चार आँखें हो गई,
देखा सितारेदार साड़ी झिलमिलाती थी नई
जिससे झलक उठता उषा का
राग रंजित गात था
कैसा मधुर सुप्रभात था ।"[3]

गुलाब के फूल की तरह ही मनुष्य की भी जिन्दगी है । एक सच्चा आदमी काँटों में पलकर ही बड़ा होता है और फिर अपनी सुरभि से दिक-दिगन्त को सुरभित कर देता है । कवि की उदात्त और निष्कपट भावना का यह प्रकृति-चित्र अनुपम है -

"बचपन से ही मलयानिल ने मुझको काँटों में दुलराया
काँटों की गोदी में ही पल मैंने मादक यौवन पाया

---

1. हिल्लोल ; सुमन, गौरैया नामक कविता से, पृ० 97.
2. वही, तितली नामक कविता से, पृ० 99
3. जीवन के गान : सुमन, कैसा मधुर सुप्रभात था नामक कविता से, पृ० 28.

पर बेंध नहीं पाते मुझको मेरी डाली के मूल सखे
मैं हूँ गुलाब का फूल सखे ।"[1]

(2) प्रकृति का ग्रामीण एवं कठोर रूप :

सुमन जी ने अपने काव्य में प्रकृति को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा - परखा है । उन्होंने सिर्फ प्रकृति के कोमल रूपों को ही नहीं, अपितु उसके ग्रामीण एवं कठोर रूपों को भी कभी-कभी देखा है और अपनी उर्वर कल्पना के माध्यम से उसे कविता का विषय बनाया है ।

कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकृति के इसी भयावह रूप का अंकन किया है ; पर वे निराश नहीं है । भयमुक्ति का उपाय उनके पास है । वे नीलकण्ठ बनकर जीवन का सारा गरल पी जाना चाहते हैं, ताकि मनुष्यता को भीषण संत्रास से बचाया जा सके -

"व्योम क्षुब्ध, धरणि त्रस्त, भीत चल-अचल
सुर-असुर-मथित जलधि उगल रहा गरल
चाहिएनवीन नीलकंठ अवतरण
पी सके, पचा सके, विषम तरल- अनल
हे सुधाचयी कहाँ विराम, फिर भयो
द्वार-द्वार कामधेनु, त्रस्त भूख प्यास ।"[2]

इसी प्रकार का एक और चित्र दृष्टव्य है, जिसमें कवि अभावग्रस्त मानव समाज की दुर्दशा को प्रकृति - बिम्बों के माध्यम से अनावृत करता है -

"ब्यालू बिना किए,
सई साँझ ही जो सो गई थी

---

1. जीवन के गान, सुमन; मैं हूँ गुलाब का फूल सखे, नामक कविता से, पृ050.
2. विश्वास बढ़ता ही गया; सुमन, मै मनुष्य के भविष्य से नहीं निराश

सहसा उठ बैठी है शय्या पर अस्तव्यस्त
निर्निमिष नभ के नयनमूक, भ्रू भंगिमा का
प्रकंपन समेट चुके
चारों ओर घोर तिमिराच्छन्न व्योम
फैल गया है किसी काली मसहरी सा
कहीं-कहीं लटक रही है सफेद झाग, धुनी रूई
अजगर ज्यों निगल गया हो
समूचा भोज्य , लहरें सा मारता ।"[1]

भूख और बेगार की जिन्दगी ढोते-ढोते यह समाज अब थक चुका है । इसे भाव चाहिए, जीवन का नया आधार चाहिए । कवि आश्वस्त है कि अब नवयुग की गंगा का पदार्पण इस धरती पर अवश्य होगा, जो जीवन के सभी पाप-ताप को धो डालेगी -

"युगों - युगों से आकुल - व्याकुल, सागर सँघाती
हिली हिमालय की जड़ काया, दरक गई छाती
विहँसा मरूस्थल, पुलका ऊसरभरवा अधनंगा,
वही सरसता की सरिता-सी, नवयुग की गंगा ।"[2]

सुमन जी क्रान्ति और संघर्ष के मार्ग पर चलकर समाज का काया-कल्प करना चाहते हैं । आज सारा विश्व अँगड़ाई ले रहा है । कोई किसी की तानाशाही सहने के लिए तैयार नहीं है । जन-जन में चेतना जाग उठी है । अधिकारों के लिए संगम छिड़ चुका है । सारी प्रकृति इस बात की गवाही दे रही है -

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया ; सुमन, ~~मैं-मनुष्य-के-भविष्य-से-नहीं~~ ग्रीष्म रात्रि का प्रभंजन नामक कविता से, पृ० 21.
2. विश्वास बढ़ता ही गया ; सुमन, दे दो अपने अश्रु मुझे प्रिय मधुमय

"लौह पदाघातों से मर्दित
हय-गज-तोप-टैंक से खौंदी
रक्तधार से सिंचित पंकिल
युगों - युगों से कुचली रौंदी
व्याकुल वसुन्धरा की काया,
नव-निर्माण नयन में छाया
कण-कण सिहर उठे, अणु-अणु ने सहस्त्राक्ष अम्बर को ताका
शेषनाग फूत्कार उठे
साँसों से निःसृत अग्नि शलाका
धुआँधार नभ का वक्षस्थल,
उठे बवण्डर आँधी आई
पद मर्दिता रेणु अकुलाकर
छाती पर, मस्तक पर छाई।"[1]

गुलामी का जीवन जीते-जीते मानव समाज तंग आ चुका है। अब वह एक क्षण भी इस अन्याय को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है। उसे अपनी सोयी हुई शक्ति का अन्दाज हो गया है। वह एक जुट होकर न्याय के लिए संघर्ष करने को तत्पर है। चारों ओर क्रान्ति का शंखनाद सुनाई पड़ता है -

"आज विदेशी बहेलिये को, उपवन ने ललकारा
कातर-कण्ठ-क्रौंचिनी चीखी, कहाँ गया हत्यारा
कण-कण में विद्रोह जग पड़ा, शान्ति क्रान्ति बन बैठी
कोकिल कुहुक उठी, चातक की चाह आग सुलगाए
शान्ति - स्नेह - सुख-हंता, दंभी, पामरभाग न जाए

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया ; सुमन, आज देश की मिट्टी बोल उठी है, नामक कविता से, पृ० 4।

सन्ध्या - स्नेह - संयोग - सुनहला, चिर वियोग सा छूटा
युग - तमसा - तट - खड़े, मूक कवि का पहला स्वर फूटा ।"[1]

कवि का विद्रोही स्वर जब फूटता है, तो थमने का नाम नहीं लेता है । वह असफलताओं से जरा भी निराश नहीं होता । उसे अपनी शक्ति पर अटूट विश्वास है । वह हर कीमत पर अपना अधिकार पाना चाहता है । अकेलेपन से उसे कोई घबराहट नहीं है । उसकी जाग्रत चेतना पूरी शक्ति के साथ अन्याय और अनाचार को चुनौती देती है -

"एक दिन निष्ठुर प्रलय को दे चुनौती
हँसी धरती मोतियों के बीज बोती
सिन्धु हाहाकार करता, भूधरों का गर्व हरता
चेतना का शव चपेटे, तृष्टि धाड़ें मार रोती ।
एक अंकुर फूटकर बोला कि मैं हारा नहीं हूँ
एक उल्का पिण्ड हूँ, तारा नहीं हूँ
मृत्यु पर जीवन-विजय उद्घोष करता
मै अमर ललकार हूँ, चारा नहीं हूँ ।"[2]

प्रकृति के माध्यम से कवि वर्ग - संघर्ष का सजीव चित्रांकन करता है । वह भीषण लड़ाई में भी डटकर लोहा लेता है । हर तरफ न्याय की पुकार है । अन्याय का अन्त होने ही वाला है । क्रान्ति का बिगुल बज चुका है । कोई अब चुप बैठने वाला नहीं है । सबके मन में एक ही उमंग है कि जल्दी - जल्दी इसी सड़ी-गली व्यवस्था का अन्त करके

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया ; सुमन, आज देश की मिट्टी बोल उठी है, नामक कविता से, पृ0 42.
2. वही, जल रहे हैं दीप जलती है जवानी नामक कविता से, पृ0 95.

नई जीवन -ज्योति प्रज्ज्वलित की जाये -

"जल उठा अम्बुज सनातन, जल उठा अंबुधि मगन मन
और उस दिन चल पड़े थे, साथ उन्चासी प्रभंजन
और उस दिन घिर बरसते साथ उन्चासी प्रलयघन
अंधड़ों में वेग भरते, वज्र बरबस टूट पड़ते
धकधकाते धूम केतों की बिखर जातीं चिनगियाँ
रौद्र घन की गड़गड़ाहट, फड़फड़ाती थीं बिजलियाँ

x x x

हर तरफ तूफान, अन्धड़ के बगूले ।"[1]

कवि यथार्थ - द्रष्टा है। वह जिस संघर्ष की बात करता है, वह बड़ा कठिन है। पता नहीं किस क्षण क्या हो जाये। परिणाम आना अभी शेष है। क्षण-क्षण में स्थितियाँ बदल रही है। पर कवि निराश नहीं है। वह इस लड़ाई में जीतेगा - ऐसा उसे पक्का विश्वास है क्योंकि यह लड़ाई एक - दो - की नहीं समूची मानवता की है। प्रकृति के इस भीषण रूप में सुमन जी ने इसी सच्चाई को शब्द-बद्ध करने का प्रयास किया है -

"हर अमा में, सर ग्रहण की ध्वंसपूर्ण विभीषिका में
एक कसकन, एक धड़कन, बार-बार मचल रही है।
बर्फ की छाती पिघलकर गल रही है, ढल रही है,
आज भी तूफान आता सरसराता
आज भी ब्रम्हांड फटता थरथराता

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया ;सुमन, जल रहे हैं दीप जलती है जवानी, नामक कविता से, पृ0 96.

आज भी भूचाल उठते कहर ढलता
आज भी ज्वालामुखी लावा उगलता
एक क्षण लगता कि जीत गया अँधेरा
एक क्षण लगता कि हार गया सवेरा
सूर्य, शशि, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह सभी को
ग्रस रहा विकराल, तम का घोर घेरा ।"[1]

कवि मानव इतिहास का स्मरण करता है और सोचता है कि अन्धकार और प्रकाश के बीच का यह द्वन्द्व तो शाश्वत है । पर अन्ततः विजय प्रकाश की ही होती है । अन्धकार का सीना चीरकर एक - न एक दिन प्रकाश की किरणें अवश्य फूटती हैं । आखिर कब तक अँधेरा अपनी मनमानी कर सकता है -

"युगों पहले एक दिन यों ही, अँधेरा हो गया था
सूर्य, शशि, तारे छिपे सहसा, सवेरा खो गया था
एक काला हाथ ऊषा की ललाई धो गया था
गरज जो वह कुछ न होना चाहिए था हो गया था ।"[2]

कभी-कभी कवि प्रकृति को ग्रामीण परिवेश के साथ जोड़कर मानवीय भावनाओं का उद्घाटन करता है । वर्षा की बूँदें प्रिया-वियोग के क्षणों में तीर की तरह चुभती हैं । सारी-सारी रात प्रकृति के इस व्यवहार को कवि भीगी पलकों से झेलता है । निम्नलिखित पंक्तियों में अपनी इसी पीड़ा को कवि ने चित्रित किया है -

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया ; सुमन, जल रहे हैं दीप, जलती है जवानी नामक कविता से, पृ0 98.
2. वही, पृ0 99.

"अमराई, अकुलाई, सिहरी नीम हँस पड़े चलदल
मुखरित मूक अटारी, शापित यक्ष हो उठे चंचल
गमके मृदंग, बज उठी रिमझिम-रिमझिम पायल

x x x

खिड़की से झीनी-झीनी, बौछार बिखरती आई
अनायास ही किसी निठुर की याद दृगों में छाई
पानी बरसा कहीं किसी की बहा आँख का काजल
आज रात भर बरसे बादल ।"[1]

सुमन जी मार्क्सवादी जीवन-दर्शन को आधार बनाकर समाज बदलने की बात करते हैं । उन्हें प्राकृतिक दृश्यों में भी लालसेना का दृश्य दिखाई देता है और वे पूरे उत्साह के साथ उसका अभिनन्दन करते हैं । लाल-क्रान्ति ही हमारी, सामाजिक दुर्व्यवस्था का सटीक हल हो सकती है इसलिए लाल-फौज का स्वप्न सुमन जी की आँखों में उस समय भी तैयार रहता है, जब वे प्रकृति का अवलोकन करते हैं ।-

"युगों की सड़ी रूढ़ियों को कुचलती
जहर की लहर सी लहरती मचलती
अँधेरी निशा में मशालों सी जलती
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना
कुहू की निशा में उदित पूर्णिमा सी
जिधर डग उधर फट रही कालिमा सी
क्षितिज पे उषा की तरूण लालिमा सी
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना ।"[2]

---

1. पर आँखें नहीं भरीं ; सुमन, आज रातभर बरसे बादल नामक कविता से, पृ0 24.
2. वही, चली जा रही है बढ़ी लाल सेना नामक कविता से, पृ0 73.

सुमन जी के प्रकृति - चित्रों में उनका अटल विश्वास सर्वत्र दिखाई देता है। वे चाहे प्रकृति के कोमल रूपों का चित्रण करें अथवा उसके रौद्र रूप का उनका विश्वास जीवन के प्रति और भी दृढ़ होता जाता है। क्षण प्रतिक्षण भी वे हार से विचलित नहीं होते। उनकी शक्ति का स्रोत सूखता नहीं है। आशा और विश्वास का स्वर टूटता नहीं है -

"आँधी आई, तूफान उठा, काँपे दिग्गज, दहला अम्बर
मेरे तरू की डाली टूटी, नीड़ों के तिनके गए बिखर
भय क्या जब तक यह नीला नभ
जब तक मेरे डैनों में बल
फिरभी मेरा विश्वास अटल।"[1]

निष्कर्ष :

सुमन जी मूलत: प्रकृति और मानव - जीवन की पारस्परिक संगति के कवि हैं। वे जब मानव जीवन की परिधि से बाहर निकलकर प्रकृति के विशाल क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तब भी उनके हृदय में शोसित - दु:खित मानवता का दर्द बराबर बना रहता है। वे प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से प्राय: मनुष्य जीवन का यथार्थ ही चित्रित करते हैं। मनुष्य की प्रगति का स्वप्न उनकी आँखों से पलभर के लिए भी ओझल नहीं होता। प्रकृति का मनोरम रूप भी उन्हें मुग्ध करता है और उसका परूष रूप भी उन्हें

---

1. पर आँखें नहीं भरी ; सुमन, फिरभी मेरा विश्वास अटल नामक कविता से, पृ0 84.

संघर्ष की प्रेरणा देता है । वे प्रकृति के बीच प्रिया की मुस्कान भी खोज लेते हैं और लाल - क्रान्ति का संकेत भी पा लेते हैं । कुल मिलाकर सुमन जी का प्रकृति - चित्रण एक प्रगतिशील कवि की साफ सुथरी तस्वीर को ही उजागर करता है और जीवन में गतिशील होने की प्रेरणा देता है ।

x x x x x x x x x x x

x x x x x x x x x

x x x x x

x x x

x

षष्ठ - अध्याय

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की रचनाओं में प्रकृति-चित्रण

अंचल जी बहुत सहृदय कवि हैं । इनके काव्य में प्रकृति के सामान्य,उदात्त एवं भव्य - सभी रूप देखने को मिलते हैं ।

(क) प्रकृति का सामान्य रूप :

अंचल जी ने प्रकृति को विविध दृष्टिकोण से देखा है, परखा है । उनके जीवन का काफी हिस्सा गाँव के खेतों, खलिहानों, अमराइयों, बाँस के कुंजों, पोखरों, तालाबों और यमुना के खुले, चौरस, पथरीले, जंगली घाटों में बीता है । इन सबने और मन में अंकित इनकी उन्मादक छाया-मूर्तियों मे कितनी ही बार उन्हें प्रेरणा और उनके काव्य को प्रदीप्ति प्रदान की है । प्राकृतिक सौन्दर्य और समृद्धि का उन्होंने अधिकतर वातावरण की सृष्टि और सज्जा में ही प्रयोग किया है । उनकी कुछ कविताओं में गाँव के दृश्यों और ऋतु-कालीन सौन्दर्य का वर्णन है ।[1]

प्रकृति ने कवि को निरन्तर काव्य-रचना की प्रेरणा दी है -

"मैं वन का क्रीड़ातुर पंछी बोल उठा मधुवन में
छलक उठा है प्राणों का उद्दीपन विजन-विजन में ।"[2]

अंचल जी सामाजिक अन्याय और अनाचार से बहुत दु:खी है । उनकी चिन्ता का मुख्य कारण सामाजिक-विसंगतियाँ हैं । वे सारे समाज के ऊपर मँडराती हुई काली छाया से परिचित

---

1. आधुनिक कवि ; अंचल, पृ0 40-41.
2. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ; अंचल में संग्रहीत मधूलिका नामक काव्य संग्रह की तृष्णा नामक कविता से, पृ0 ।.

हैं । अपनी व्यथा को प्रकृति-बिम्बों के माध्यम से उन्होंने बहुत सटीक अभिव्यक्ति प्रदान की है -

"काजल की हैमी रजनी में सॉय-सॉय स्वर छाया,
मलिन पीत तारों में कैसा स्वर-ज्वर-ताप समाया ।"[1]

कवि को वर्ग-संघर्ष का स्वर सुनाई दे रहा है । वह उस भयानक दृश्य की कल्पना करता है, जहाँ आपस में बादल टकराते हैं, बिजलियाँ कौंधती हैं, और तेज आँधी में सबकी आँखें किरकिराने लगती हैं -

"आज झंझावात घिर आये करीलों के विजन में
आज उत्कापात होते हैं तृषा के श्याम घन में
दग्ध उर में नीर बरसाती चली वह फिर हिमानी
फिर विकल हैं प्राण धू - धू उड़ चली जलती निशानी ।"[2]

केवल सामाजिक संघर्ष ही नहीं, कवि की आप बीती मधुर स्मृतियाँ भी वर्षा के दिनों में मन को व्याकुल कर देती है । वर्षा का चित्रण करने के बहाने कवि अपने मधुर प्यार को कहानी याद करना चाहता है । वर्षा ऋतु उसकी स्मृतियों को और भी उद्दीप्त करने का कार्य करती हैं -

"पूर्व दिशा में घिरी बदरिया फिर बरसेगी पीर घनेरी
प्राणों के भीतर से निकलेगी बरसाती तृष्णा मेरी
फिर उमंग में उमंग उठे हैं मन के सपने कोने-कोने

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ;अंचल में संग्रहीत मधूलिका नामक काव्य संग्रह में अब न सताओ नामक कविता से, पृ0 8.
2. वही; जलती निशानी नामक कविता से, पृ0 13.

यह मेघों का रैन बसेरा आज न देगा जी भर रोने
पूरे ताल-तलैया नीले खेतों पर सावन का पानी,
आज पर्णिका में घिर आई कब की मीठी याद पुरानी।"[1]

कभी-कभी जब कवि का मन निराश होता है तो वह प्रकृति के शान्त और अवसन्न रूप की आराधना करता है । जीवन के गम्भीर प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए वह अपनी नाव को श्मशान की ओर मोड़ लेता है -

"तू वहाँ नौका न ले चल जल जहाँ अवसन्न बहता
डोलता दक्षिण - पवन सूनी कथा दिन रात कहता
झूमती मोती लड़ी-सी तारिका आयी गगन में
फूँक डाली थी चिता उस दिन इसी तट पर विजन में ।"[2]

कवि प्रिया की स्मृतियों में खो जाता है । प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है । उसके मन में बीते दिनों की याद ताजा हो उठती है । उसका मन गीत गाने के लिए व्याकुल हो जाता है -

"ज्योति जगाती है अन्तर में सन्ध्या तारा चितवन
धुँधली किरणों में उलझा है शारदमेघ - सा आनन
मुग्ध मधुकरी के गुंजन में पुलकित श्यामा का तन
आज न भी भरने आता है कितनी सुषमा गाऊँ ।"[3]

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें : अंचल में संग्रहीत अपराजिता काव्य संग्रह की सावन-भादों नामक कविता से, पृ० 17.
2. वही ; सान्ध्य स्मृति नामक कविता से, पृ० 22
3. वही ; मनुहार नामक कविता से, पृ० 28.

जब कवि का मन प्रसन्न होता है, तो प्रकृति का हर रूप उसे जीने की प्रेरणा देता है और वह अपने अन्दर स्फूर्ति अनुभव करने लगता है । ऐसी स्थिति में प्रकृति को आधार बनाकर कवि अपनी भावनाओं का तन्मयतापूर्वक प्रकाशन करता है -

"आज मधुपाकुल चपल वनबाल
आज पुलकावृत समीकरण कर गया अंग-अंग उन्मन
आज शेफाली-सुवासित पीतिमा से भर गया वन
आज कलियों पर चमकता है सुरभि का रंग धानी
आज केसर की कसक से गति-शिथिल,झंकृत हिमानी ।"[1]

बालारूण जब मुस्कराता है,तो वह कवि के मन में उल्लास और आशा का संचार होने लगता है । सूर्य की किरणें नई उमंग भर देती है । अन्धकार की समाप्ति और प्रकाश के आगमन का अभिनन्दन करने के लिए कवि आकुल हो उठता है । चारों ओर नई दीप्ति दिखाई देती है -

"आज आगत का कुहासा चीरता आलोक रोता,
हो नहीं निस्तेज बिछुड़न की घड़ी, नभ व्यग्र होता
लो,उठीं जय बोल नव किरणें, तरणि ने नाव खोली
उल्लसित लहरें उठीं,नव दीप्ति ले वातास डोली ।"[2]

समाज में दबी पड़ी क्रान्ति-चेतना का विस्फोट ग्रीष्म ऋतु के इस चित्र में देखा जा सकता है, जहाँ कवि ने प्रकृति को मानवीकृत रूप में चित्रित किया है । थम-थम कर उठने वाले बवंडर किसी

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ; अंचल में संग्रहीत,अपराजिता नामक कविता से, पृ0 29
2. वही ; मूर्ति पुजारी से नामक कविता से, पृ0 40.

आने वाले व्यापक बदलाव की ओर संकेत करते हैं -

"घूम-घूम कर उड़ते सूखे पत्ते
दबे-दबे आते हैं क्षुब्ध बवंडर
लाठी लेकर थका काबुली बैठा
गली के कोने पर
करता जैसे किसी भूली शैल संध्या की याद
धूल के ये अंबार
और शून्यता सी भर देते
गंदी, स्तब्ध कोठरी में अनजान ।"[1]

पावस की रिमझिम में नहाकर कवि का मन प्रफुल्लित हो उठता है । वह धुले हुए पत्तों वाले वृक्षों को देखकर पुलकित होता है । सम्पूर्ण प्रकृति रसमग्न प्रतीत होती है । कवि उल्लसित होकर इस प्राकृतिक छटा पर मुग्ध हो जाता है -

"आज पुलकावृत प्रकृति है, मुक्त है उन्मत्त वनश्री
ये धुले, निखरे सुपल्लव कर रहे हैं आरती सी
भर गया आकाश नीला झर रहा पावस विरह में
होउठी श्यामल सजल सुफला धरा इस दुःख असह्य में
आज झीनी रेशमी तृष्णा उड़ाती मान चलती ।"[2]

यह सृष्टि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त पर आधृत है । उतार-चढ़ाव, सुख-दुःख, हार-जीत जीवन के अपरिहार्य

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ; अंचल में संग्रहीत, किरण बेला नामक काव्य संग्रह की दोपहर की बात नामक कविता से, पृ0 50.
2. वही; करील नामक काव्य संग्रह की अपरिचिता नामक कविता से, पृ0 76.

तत्व हैं । कवि इन विषमताओं से घबराता नहीं है । वह निरन्तर अपनी प्रकृति के अनुरूप आगे बढ़ते रहने पर विश्वास करता है । अपनी सत्ता से च्युत होकर जीने में कोई रस नहीं रहता । संघर्ष में ही प्रकृति के बीज निहित होते हैं । कवि संघर्ष का समर्थन करता हुआ कहता है कि -

"जो अडिग रहता अड़ा तूफान में, बरसात में
टूट जाता है वही तारा शरद की रात में
मुक्त जीवन की प्रगति भी द्वन्द्व में संघात में
फूल काँटों में खिला था सेज पर मुरझा गया ।"[1]

समाज का रूप विकृत हो चुका है, अब यह कहना हास्यास्पद लगने लगा है कि भारत सारी-स्रष्टि का सिरमौर है । आर्थिक - सामाजिक विसंगतियों ने आम आदमी का सुख-चैन समाप्त कर दिया है । सब कुछ उजड़ा-उजड़ा सा प्रतीत होता है । लगता ही नहीं है कि यह उन्नत सांस्कृतिक परम्पराओं वाला भारत है । अपने मन की इस पीड़ा को कवि प्रकृति बिम्बों के माध्यम से व्यक्त करता है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"ऊँघती रहती लिए श्रंगार उजड़ा वीथिकाएँ
टहनियों में झाड़ियों में व्यक्त पतझड़ की व्यथायें
शुष्क मुरझाए कुसुम, वीरान है सारा बगीचा
था जिसे निज रक्त से कितनी बहारों से न सींचा
श्वेत पादों पर कमल की जल न सरसों का छलकता
है, वही प्यारा चमन-कोई भला कह आज सकता ।"[2]

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ; अंचल में संग्रहीत, लाल चूनर नामक काव्य संग्रह की वन-फूल नामक कविता से, पृ0 85.
2. वही ; विपर्यय नामक कविता से, पृ0 90.

कवि उल्लास से भरकर बसन्त के आगमन का अभिनन्दन करता है । पतझड़ के बाद बसन्त का शुभागमन निश्चय ही बहुत मोहक और प्रभावपूर्ण लगता है । वासन्तिक वैभव का चित्र कवि की निम्न लिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"कोयलों के भार से नतफुल्ल पीपल - डाल
तरू-शिखर पर कीर बोला, मत्त मोर, मराल
आज मोमी मोतियों से, गुँथे वन के तार
फिर लजाई तरू-टहनियाँ, रहीं भूमि निहार
मस्त नींबू की महक से विहगियों के प्राण
मधु-श्रवा उड़ती तितलियाँ सुन पिकी के गान
मंजरित मधुमास
आ गया बहता कहीं से चीर शिशिराकाश "।

वर्षान्त के बादलों की विदाई होते देख कवि का मन भाव - विह्वल हो उठता है । अपनी उदार, लोकोपकारी भावना के अनुरूप इन बादलों ने धरती को शस्य - श्यामला बनाकर, और नदी - निर्झर और तालाबों को जल से परिपूर्ण करके अब जा रहे हैं । यह दृश्य कवि के मन में छिपे पड़े प्रकृति-प्रेम को उजागर कर देता है। और वह मुक्त कंठ से गा उठता है -

"जा रहे आलोक - पथ से मंद गति
वर्षान्त के बादल
है सलिल प्लावित नदी-नद-ताल पोखर
वेग-विह्वल झर रहे गिरि-श्रोत-निर्झर

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ; अंचल में संग्रहीत, लाल चूनर नामक काव्य संग्रह की, मधुमास नामक कविता से, पृ० 93.

दे भरे मन से विदा, कर कुसुम किरणों से नमन
छोड़कर अंकुरित – नूतन फुल्ल खेत
छोड़ उत्सुक बन्धुओं के नेत्रों का प्यार
छोड़ लघु पौधे व्यथातुर शस्य-शालि अपार
जा रहे वर्षान्त के बादल ।"[1]

कवि जब संध्या का चित्र खींचता है तो, उसमें ऊषा के आगमन की प्रतीक्षा अवश्य संनिहित रहती है । कर्मशील दिवस का अवसान संध्या के समय हो जाता है किन्तु पुन: जागरण – काल आएगा, यह विश्वास बराबर कवि के मन में बना रहता है । अँधेरा स्थायी नहीं होता । यह आशा और विश्वास ही प्रगतिशील कवि की सबसे बड़ी पूँजी हैं, जिसके बल पर वह अंधकार का सीना चीरकर, प्रकाश का आह्वान करता है । प्रकृति कवि के यहाँ निरा प्रकृति नहीं है, वह मानवीय भावनाओं के साथ ओत-प्रोत होकर आती है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

"मेघ – रंध्रों में दफ्न होती अरूणिमा पीतिमा के
सूर्य किरणों की करूण अन्तिम क्रिया के
सान्ध्य गीतों में तुम्हारे उच्चरित हो तरूण आशा
जागती जो अहर्निश की प्राण-पूरित झलकियों में
है निहित रहती कि उसमें नवल ऊषा की पिपासा
यदि गया है बीत दिन कर्मान्दोलित
बीत जायेगी निशा भी वेदना-रंजित, स्वप्न सिंचित
देख संगिनि ! सान्ध्य नभ में फैलकर लेटी

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ; वर्षान्त के बादल नामक काव्य संग्रह की वर्षान्त के बादल नामक कविता से, पृ0 98.

रोगिणी-सी क्लान्त और विवर्ण
जर्जरित, कृश यह कुँवारी ऊसरी संध्या ।"[1]

मेघ गर्जना की तरह सारे समाज में अराजक ताकतों का गर्जन-तर्जन हो रहा है । सामाजिक अन्याय और अनाचार का बोलबाला है । जीवन-मूल्यों का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है, किन्तु कवि निराश नहीं है । वह पूरे साहस के साथ जूझने के लिए तैयार है । उसे आशा है कि मानवाधिकारों के लिए किया जाने वाला संघर्ष कभी असफल नहीं हो सकता । इस तथ्य को प्रकृति के माध्यम से अंचल जी ने सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है -

"तूफानी झंझा में दो पतवार न कभी झुकेंगी
नौका लहरों से टकराये, पालन कभी झुकेंगे
कुचल रहा मन के साहस को मेघों का घन गर्जन
भरा ध्वंस के अँधियारे में भयकारी आवर्तन
भँवरे उल्टी साँस ले रही घुटनभरी अकुलाकर
सब प्रदीप नक्षत्र बुझ गए जैसे नभ में जलकर ।"[2]

प्रकृति कवि को संघर्ष की प्रेरणा देती है । वह जानता है कि यह संघर्षों की वेला है । सब मिलकर, एक होकर यदि संघर्ष करें तो, विजय सुनिश्चित है । हर तरफ नए समाज का स्वप्न साकार करने की अकुलाहट है । लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ; अंचल में संग्रहीत, वर्षान्त के बादल नामक काव्य संग्रह की शारदी संध्या नामक कविता से, पृ० 100.
2. वही: विराम चिन्ह नामक काव्य संग्रह की जीवन नौका नामक कविता से, पृ० 112.

रहे हैं । प्रकृति - बिम्बों के माध्यम से कवि इसी संघर्ष -कथा को व्यक्त करना चाहता है -

"नभ में क्रंदन करते नील सितारे
भू के जलतेसब बिखरे स्वर मिल-मिल कर बढ़ चलते
मग में जलती बाधाओं के अगणित स्फुलिंग उभरते
बढ़ते चलते नव जीवन के वेग सम्भलते
अन्धकार में मग न सूझता
बढ़ा जा रहा धरती का स्वामी
संघर्षों की बेला है यह प्रलय रात अँधियारी ।"[1]

कवि आश्वस्त है कि सूर्य की किरणें अंधकार का नाश करने में सक्षम हैं और अब वह समय आ गया है जब सूर्योदय होने ही वाला है । प्रकाश फैलते ही सारा अन्धकार स्वत: नष्ट हो जाता है । जीवन का सहज मार्ग दिखाई देने लगता है । समाज में गतिशीलता आ जाती है -

"दमकेगी अब उषा विभा की
फूट-फूट लहरायेंगी किरणों के निर्झर
स्वतन्त्रता की अरूणाई से लोहित दिनकर
नष्ट करेगा दिग्भ्रम मार्ग-मलिनता निशि की
पंथदान गति पा जायेगी ।"[2]

अंचल जी प्रकृति को जड़-रूप में नहीं, बल्कि सचेतन प्राणियों का तरह हँसती - बोलती चित्रित करते हैं । चाँदनी का

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ; अंचल में संग्रहीत, प्रलय रात अँधियारी नामक कविता से, पृ० 128.

2. वही ; पृ० 128.

यह मानवीकरण किसी अज्ञातनायिका की याद दिलाता है -

"चाँदनी अँसुवा उठी पिछले प्रहर
रंग खिलौनों का उतरता जा रहा
बुझ गया आकाश गिरि शिशिरा रहा
हंसमाला धुल गई वातास में
ज्योति का कंकाल बहता आ रहा
फिर प्रतीक्षा-भीत सरिता की लहर ।"[1]

इसी प्रकार धूप का मानवीकरण करते हुए कवि ने उसे मानवोचित आचरण की रेखाओं में समेटने का प्रयास किया है । ऐसा करते समय प्रकृति का रूप किसी जीवन्त प्राणी की तरह लगने लगता है । उसके सौन्दर्य में अद्भुत बढ़ोत्तरी हो जाती है ।

"कुसुम्भी झिलमिलाती जालियाँ आलोक की गुमसुम
सिमटकर रह गई धौली दुपहरी स्तब्ध कुसुमा सी
दिशाओं की मुँडेरों पर टिकाकर किंशुकी मुखड़ा
खड़ी है शून्य रंगों में विरमती धूप मधुमासी ।"[2]

शरद ऋतु का वर्णन करते समय कवि धान के पके श्वेतों की याद करता है । उसके मन पर किसानों की मेहनत का फल, लहराती हुई धान मंजरियाँ बराबर नाचती रहती हैं । प्रकृति का यह चित्र ग्रामीण परिवेश की पृष्ठभूमि में अंकित किया गया है और कवि की प्रगतिशील चेतना का परिचय देता है -

"रूपहली धूप की पकती फसल फैली पड़ी कटकर
घुँघरता धान में हरिताभ किरणों का कुँवारा तन

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें : अंचल में संग्रहीत, अनुपूर्वा नामक काव्यसंग्रह की चाँदनी अँसुवा उठी नामक कविता से, पृ0 146.
2. वही, वही; एक शाम नामक कविता से, पृ0 147.

शिशिर की शस्यवासित हंसपंखी गीत भी लय में
ढला जाता घने सरिता दुकूलों का उनींदापन
विभा की नील में तिरते बुझे निष्प्रभ क्षितिज जागे
अडूबी अनमनी गिरिपंखियों की पाँत चमकाकर
बधूकों के रुंधे आलोक के समवेत रंगों में
झलक देता शरद का पारदर्शी गंध-गुंजित मन ।"[1]

अंचल जी को अपनी धरती से सच्चा प्यार है । वे जी भरकर जीना चाहते हैं और धरती की हर धड़कन को अपने अन्दर अनुभव करना चाहते हैं । पुनर्जन्म का कोई भरोसा नहीं होता, इसलिए वे इसी जन्म में प्रकृति के एक-एक अंग को गले लगाकर जीना चाहते हैं-

"फिर कदाचित मैं न इस आकाश से गुजरूँ
इसलिए भाता मुझे हर रंग का बादल
सुनगुनी नीलाभ आधो साँझ तक उड़ते
अधपकी जामुन सरीखे पंखियों के दल
फिर न पाऊँ रज धरा के कल्प कुसुमों की
हर पवन की साँस लगती कोख की माटी
फिर न पाऊँ ये विभा के पंख उड़ने को
इसलिए भाती मुझे हर धूप की घाटी ।"[2]

कवि जीवन की कठिन परिस्थितियों से ऊबकर संघर्ष का मार्गत्याग नहीं देता । वह हर परिस्थिति में संघर्ष करता हुआ जीना चाहता है । अँधेरे से वह घबराता नहीं है क्योंकि उसे बराबर

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ; अंचल में संग्रहीत, अनुपूर्वा नामक काव्यसंग्रह की सुलगती धूपदानी सी अबोली दीप्त दोपहरी नामक कविता से, पृ० 148.
2. वही : इन आवाजों को ठहरा लो नामक काव्य संग्रह की धूप की घाटी नामक कविता से, पृ० 179.

यह विश्वास रहता है कि सूर्य की तीखी किरणें एक न एक क्षण । अन्धकार का समूल नाश कर देंगी । इसलिए वह इन प्रकाश किरणों के लिए अपने हृदय के सभी खिड़की दरवाजे खुला छोड़ देता है और उनकी आशा में संघर्ष करता रहता है -

"डूबा जाता कौआपंखी प्रात - डूब जाने दो
नभ तमाल पर्वत सा भूपर उतर रहा आने दो
तुम सूरज-प्यासी किरणों की खिड़की खोले जाओ
गाढ़े रूंधे धुंध में अपने दहके पंख धँसाओ ।"[1]

हर तरफ अराजकता का वातावरण है । भीषण शोषण और अन्याय के बावजूद अभी उतनी जन-चेतना नहीं जाग सकी, जितनी एक सफल क्रान्ति के लिए आवश्यक होती है । घुटन और ऊबन अपनी चरम सीमा पर है, फिरभी इन कठिन परिस्थितियों का सामना करना तो करना ही पड़ेगा । कवि प्रकृति के माध्यम से यही पीड़ा और सन्देश व्यक्त करना चाहता है -

"साथ चलता है घिरा आवर्त फेनों का डसा
दूर तक डूबे क्षितिज के पार सूरज चल बसा
इस अराजक स्तब्धता का टूटना क्या है सरल
पंख डूबी छाँह सी जल-श्रेणियाँ ऊबीं विकल ।"[2]

सारी प्रकृति विश्व-वेदना से पीड़ित है । यहाँ जो कुछ भी अप्राकृतिक - अनियमित घट रहा है, वह प्रकृति को स्वीकार

---

1. मेरी श्रेष्ठ कविताये : अंचल में संग्रहीत, इन आवाजों को ठहरा लो नामक काव्य संग्रह की, ढले पखेरू नामक कविता से, पृ0 186.
2. वही : अनुपूर्वा नामक काव्य संग्रह की; मैं अप्रस्तुत नामक कविता से, पृ0 152.

नहीं है । प्रकृति स्तब्ध है । उसका हृदय अगाध करूणा से भरा हुआ है । कवि भावी कल्पनाओं में खो जाता है । उसे आशा है कि प्रकृति की यह स्तब्धता एक दिन टूटेगी और सब कुछ सामान्य हो जायेगा -

"ऊपर निरभ्र आकाश, सामने था प्रवाह नद के जल का
रह-रह कर मुखरित हो उठता था कलरव जल-विहगों के दलका
है एक-एक कर दूट रहे तटवर्ती विजन खंड, जनपद
सब नीले सागर के राही, सिंहल है सतत् प्रेरणाप्रद
उज्जवल नयनों से देख रहे केवल आगे अविदित अगाध
है विश्व वेदना से विगलितसबकी अथाह करूणा अबाध ।"[1]

सारी सृष्टि परिवर्तनशील है । सुख-दुःख आते - जाते रहते हैं । एक सी स्थिति कभी नहीं रहती है । कवि इस सत्य को जानता है । इसलिए उसके मन में निराशा घर नहीं कर पाती । निराशा के क्षणों में भी आशा की कोई न कोई न कोई किरण कवि का मार्ग प्रशस्त करने के लिए कहीं न कहीं से आ ही जाती है -

"नहीं"ऐसा कि हर आकाश बादल से न सहमाहो
कुछ ऐसा भी नहीं कि हर चाँद दूधों से नहाता हो
नहीं ऐसा कि सब परछाइयों के पर निकलते हों
नहीं ऐसा कि हर नक्षत्र जलकर बुझ न पाता हो ।"[2]

---

1. शीलजयी : अंचल, पृ0 80.
2. इन आवाजों को ठहरा लो : काव्य संग्रह की, कुछ ऐसा भी नहीं नामक कविता से, पृ0 56.

कवि का मन सामाजिक विषमता से बेहद चिन्तित है । उसकी समझ में मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी प्रकार का भेद-भाव करना मनुष्यता का सीधा अपमान करना है । हर व्यक्ति को जीने की समान सुविधाएँ और अधिकार मिलना चाहिए । प्रश्नवाचक शैली में कवि इन्हीं सवालों को उठाता है । यहाँ प्रकृति का प्रतीकात्मक उपयोग किया गया है -

"फूल के सहजात काँटें भी पले मधुवात में
जीन पाते क्यों बहारो ! ये तुम्हारे सामने
खून है इनकी रंगों में भी टहनियों का उन्हीं
हैं इन्हें भी तो रचा पोसा उसी उद्यान ने ।"[1]

(ख) प्रकृति का उदात्त एवं भव्य रूप :

अंचल जी ने अपने काव्य में प्रकृति को विभिन्न दृष्टि-कोणों से देखा-परखा है । सिर्फ उन्होंने ग्रामीण प्रकृति का ही चित्रण नहीं किया अपितु उन्होंने पूर्ण तन्मयता और अनुभूति के साथ प्रकृति के सभी रूपों को निहारा है और उसके बाद सुन्दर तथा सक्षम कल्पना के माध्यम से वहाँ की जीवन्त प्रकृति की छवि को उतारा है -

"सुबहहोने वाली है । तारों के दीप बुझने लगे हैं, धीरे-धीरे अँधेरा छट रहा है । प्रकृति का यह चित्र कवि की प्रगतिशील जीवन दृष्टि से ओत-प्रोत है । प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से कवि

---

1. इन आवाजों को ठहरा लो : काव्य संग्रह की, तुम्हारे सामने नामक कविता से, पृ० 69.

जीवन में आ रहे बदलाव की ओर संकेत करना चाहता है । कवि का आशा और विश्वास से भरा हुआ स्वर इन पंक्तियों में सुना जा सकता है -

"प्राण निकलते हैं तारों के दीपों का दम टूट रहा
नभ की सड़कों पर अँधियारा, अधजकड़ी सी पड़ी धरा
इन विधवा दु:खभरी दिशाओं का जैसे पानी उतरा
पर्वत की साँवली शिलाएँ तम में एकाकार हुई
गाढ़ी जमी उदासी का बरसाती धुँधलापन बिखरा ।"[1]

कवि जिस ज्वाला की बात करता है, वह क्रान्ति की ज्वाला है । अरूणाई उसी क्रान्ति का प्रतीक है । सारा वातावरण रक्तिम पलाश से भर उठा है । नई चेतना जाग उठी है। परिवर्तन अवश्यम्भावी है । निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकृति का यही रूप अंकित किया गया है -

"आज जगी रजनी के मन में जवाकुसुम की ज्वाला
नग्न अरूणिमा ने मुखरित हो दिग् दिगन्त रंग डाला ।"[2]

जब रात्रि होती है तो कवि का मन प्रिया-वियोग की स्मृतियों में खो जाता है । वह रह-रह कर तड़प उठता है । रात्रि की व्याकुलता वस्तुत: कवि के मन की ही तड़प है, जो किसी न किसी बहाने कविता में ढलकर प्रकट हो जाती है । प्रात:काल

---

1. इन आवाजों को ठहरा लो : नामक काव्य संग्रह की, पास न जाओ नामक कविता से, पृ0 58.

2. मेरी श्रेष्ठ कवितायें : अंचल में संग्रहीत, मधूलिका नामक काव्य संग्रह की तृष्णा नामक कविता से, पृ0 ।.

की प्रतीक्षा में मिलनातुर कवि का मन प्राकृतिक परिवेश से उद्वेलित होकर इस प्रकार फूट पड़ता है -

"दूर - सुदूर क्षितिज में उज्ज्वल फेनिल राका छाई
दरस-परस की सिहरन-सुषमा दिशि-दिशि में घिर आई
एक भयानक दु:खद स्वप्न-सा जीवन प्रतिपल होता
मधुवासित रजनीगन्धा से जब आकुल मन रोता
अभी-अभी तो चपल अरूण अस्ताचल में है सोता
कैसे बीतेगी यह लम्बी रात, प्रभात न होता
कौन सजा देता है तुमको नैश-वियोगिनि वाले
क्यों पड़ जाते हैं रजनी में दरस-परस के लाले ।"[1]

बादलों से आच्छादित आकाश कवि की प्रेमभावना से और भी उद्दीप्त करता है । उसे प्रिया की याद आती है । ग्राम कन्याओं की याद आती है । उसका रोम-रोम सिहर उठता है -

"दूर तक छाई घटा-आँसू भरे ये मेघछाये
नाचती किरणें क्षितिज में क्यों प्रिया की सुधि जगाये
मौन-मंथर बोलतीं जलसिक्त कहि आनत लजातीं
आज केशर-श्वेत-सी वे ग्रामकन्याएँ न आतीं ।"[2]

कवि प्रकृति का चित्रण अलंकार विधान के लिए भी करता है, पर उसकी दृष्टि प्रकृति-चित्रण करते समय मानव-निरपेक्ष नहीं हो पाती । वह मनुष्य जीवन के सुख-दु:ख के साथ जोडकर ही प्रकृति-छवि अंकित करता है । प्रकृति के विभिन्न रूप कवि की भाव-

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें ;अंचल में संग्रहीत, मधूलिका नामक काव्यसंग्रह की कुहून्कोकी नामक कविता से, पृ0 9.
2. वही, अपराजिता नामक काव्य संग्रह की सान्ध्यस्मृति नामक कविता से, पृ0 22.

नाओं को उद्दीप्त करते हैं और वह मधुर स्मृतियों के अथाह सागर में गोते लगाने लगता है -

"डोलती हो रैन अस्थिर, शशि-किरण कहती कहानी
दूर हरियाले वनों में फूट छा जाती जवानी
अन्ध हो जाता समीकरण चैत की चिनगारियों में
एक कुचली आरजू-सी भींगती शबनम उफानी
मेघ-रन्ध्रों से चली आती निकलती कौन आँधी-सी
किरण आलेष स्नाता ।"[1]

प्रकृति का मानवीकरण रूप कवि को सर्वाधिक प्रिय है। वह प्रकृति को मानवीय क्रिया-कलाप के साथ सम्बद्ध करके चित्रित करता है । रूपक और उपमा के सहारे प्रकृति के सुन्दर चित्र अंकित करने में अंचल जी खूब दक्ष हैं -

"भीग चला संध्या कादामन, थक सागर-पक्षी अकुलाया
संगीहीन गगन में उड़ते-उड़ते आज अँधेरा छाया ।"[2]

रात्रि के समय धरती और चाँद की परस्पर बातचीत का चित्रण कवि इतने जीवन्त रूप मेंं करता है कि लगता है जैसे वे सचमुच के प्राणी हैं । प्रकृति का श्रृंगारपरक चित्रण करते समय कवि तन्मय हो जाता है । कभी उसे करधनी की खनक सुनाई देती है, तो कभी डालों का मस्ती भरा नर्त्तन -

"नील गगन में चाँद तैरता
नाच रही है मस्त हवा में डालें

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें : अपराधिता नामक काव्य संग्रह की अन्तर्गान नामक कविता से, पृ0 3।
2. वही ; अंचल में संग्रहीत, किरण बेला नामक काव्य संग्रह की सागर-पक्षी नामक कविता से, पृ0 4।

झरने की करधनी बज रही छाया-म्लान दूर पर्वत पर
ताराओं से धरा कहानी कहती
जो अपलक निःशब्द अचंचल सुनते ।"[1]

प्रसन्नमुद्रा में जब कवि प्रकृति का अवलोकन करता है, तो उसे सारी प्रकृति हँसती हुई दिखाई पड़ती है । रवि, शशि, तारे, अम्बर, मेघ, निकुंज, उद्यान सभी हँसते हुए प्रतीत होते हैं-

"हँसते निकुंज उद्यान
हँसते रवि, शशि, तारक, अम्बर अम्लान
हँसता मेघों का बिजली - सा अरमान
तू हँस न सकेगा द्वार-द्वार जाने वाले ।"[2]

मधुमास में प्रकृति की यह हँसी और भी मादक हो उठती है । सभी मधु का दान चाहते हैं । कवि भी मधुपायी भ्रम र की तरह मस्ती में डूब जाता है । वन का सारा समीकरण हर्षोल्लास से भर उठता है । केतकी के पास आकर अलि मँडराने लगते हैं और भी न जाने इस मधुमास में क्या-क्या होता है -

"मंजरित मधुमास
आ गया सहसा कहीं से चीर शिशिराकाश
आज छवि की स्वर्ण-परियों का हरित मधुमास
द्रुमों में चित्रित-सुरभि का ह्रास
पल्लवित हो फूलता वन-वल्लरी का गात

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें : करील नामक काव्य संग्रह की मानव की राह नामक कविता से, पृ० 73.
2. वही : वही, बोल अरे कुछ बोल नामक कविता से, पृ० 68.

नीम में नव बौर आए, ले बसन्ती रात
जाल परिमल के बुने, गूँथे सिरिस ने मौर
केतकी से माँगता मधुदान अलि-"दो और" ।"[1]

मधु ऋतु का प्रभाव ही कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि सभी का जीवन पुलकित हो उठता है । तट सरिता को पास आने का आमंत्रण देते हैं, समीर को जल-पाश मतवाला कर देता है, आकाश धरती को चूम लेना चाहता है, सर्वत्र उन्मुक्त हास-परिहास का दृश्य दिखाई देता है -

"कह रहा तट आज सरिता से तनिक आ पास
कह रहा जल से समीरण - मदिर तेरा पाश
चूम लेगा आज जैसे अवनि को आकाश
उड़ रही भू के कुसुंभी चीर सी वातास
युक्त नव-ऋतु का तरंगित मास ।"[2]

वर्षा-ऋतु भी जब आती है, तो सौभाग्यवती नायिका के रूप में कवि उसका स्वागत करता है । उसके उलझे हुए बादलों रूपी बालों से खेलता है । कवि का रोम-रोम हर्षातिरेक से झूमने लगता है -

"हरी चूनर पहनकर आ गई वर्षा सुहागिन फिर
कहीं वन बीच फूलों में पड़ी थी स्वप्न में सोई
उलझते बादलों की लट पिया छलका गया कोई
तिमिर ने राह कर दी - राह कच्ची धूप की धोई

---

1. मेरी श्रेष्ठ कविताये : अंचल में संग्रहीत लाल चूनर नामक कविता काव्य संग्रह की मधुमास नामक कविता से, पृ० 93.

2. वही.

पवन की रागिनी मोती भरे आकाश में खोई
पहन धानी लहरिया आ रही वर्षा सुहागिन फिर ।"[1]

अंचल जी अपने सपनों की दुनिया प्रकृति-बिम्बों में खोजते हैं । प्रकृति के सुन्दर रूपों में उन्हें अपनी प्रिया का आमंत्रण मिलता है । उनकी नींद उड़ जाती है ।वे किसी अज्ञात लोक की कल्पना में डूब जाते हैं । सारी प्रकृति उनकी मनोभावना का उद्दीप्त करने का काम करती है -

"बादल के संग आ-आ कर ओ सपनों पर छा जाने वाले
अकुलाए आकाशी मरू में सिकता-दीप जलाने वाले
भीगे मन्द्र स्वरों में झलमल करता आशय का गोरा जल
झुक आया है मेरी छत पर सुख का नया चन्द्रमा श्यामल
मन सरिता के बिंधे कूल-सा, तिरती जिस पर छाँह गगन की
तन जामुन के फूले वन-सा घेरे बाँहें नीलेपन की
धुरवा के पंखों पर ले ओ संध्या को तरसाने वाले
रंगों की संगीतभरी लपटों से नींद चुराने वाले ।"[2]

कवि का चिन्तन व्यक्तिवादी नहीं है । उसे अपने से अधिक जग की चिन्ता सताती है । वह संसार की जड़ता कोदूरकर उसे स्फूर्तिवान बनाना चाहता है । उसका स्वप्न समाज को जागरूक करना है । इसलिए उसे प्रकृति के वे रूप अधिक भाते हैं, जो मनुष्य समाज को जागृति का सन्देश देते हैं । वह जड़ता तो तोड़कर समाज को गीतशील करना चाहता है । पाषाण में भी जान डालना चाहता

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें : वर्षान्त के बादल नामक काव्य संग्रह की वर्षा नामक कविता से, पृ0 108.
2. वही ; अंचल में संग्रहीत, अनुपूर्वा नामक काव्य संग्रह की ओ

चाहता है । बड़े-से-बड़े विरोध का सामना करने की हिम्मत जुटाना चाहता है । प्रकृति के निम्नलिखित चित्र से कवि की यही मनःस्थिति उजागर होती है -

"बन्द कारा में अहर्निश ऊँघते आकाश ने
फिर थके स्वर में पुकारा गर्भिणी बरसात को
जन्म भर की कैद के अभियुक्त सा निस्पंद जग
उठ पड़ा पाषाण मेघों के घने प्रणिपात को ।"[1]

निष्कर्ष :

प्राणों की सारी कसक और वेदना अंचल जी के काव्य में पुंजीभूत मिलती है । उन्होंने छायावाद की जटिल अस्पष्टता और कोरी काल्पनिकता के प्रति विद्रोह किया है और कविता को ठोस धरातल पर स्थापित किया है । अंचल जी की कविताओं में नूतन, सामाजिक दृष्टि और जीवन - दर्शन दिखाई देता है । उनकी कविताएँ उग्र - यथार्थवादी हैं । प्रेम और प्रकृति के अक्षत-अक्षय सौन्दर्य बोध को मर्म के स्तर पर कुछेक रचनाओं में ध्वनित करने में विधापति के बाद खड़ी बोली के कवियों में अंचल जी का नाम लिया जा सकता है।

प्रकृति उनके काव्य की मूल प्रेरणा रही है । प्रकृति बिम्बों के माध्यम से उन्होंने जीवन के गहरे सन्दर्भों को अभिव्यक्ति प्रदान की है । उनका प्रकृति-चित्रण गाँव की धरती से जुड़ा हुआ है । ऋतुएँ कवि को सर्वाधिक आकृष्ट करती हैं । वसन्त के चित्र

---

1. मेरी श्रेष्ठ कविताएँ ; मेरी आवाजों को ठहरा लो, नामक काव्य संग्रह की, कीर पंखी साँझ नामक कविता से, पृ० 178.

उनकी कविताओं में बहुतायत से मिलते हैं । वर्षाऋतु का वर्णन भी कवि ने बड़े मनोयोग के साथ किया है । प्रकृति आलम्बन रूप में भी चित्रित की गई है, किन्तु अधिकांशतः प्रकृति-चित्रण मानवीय हर्ष-विषाद की पृष्ठभूमि में किया गया है । मनुष्य जीवन के सुख - दुःख से जुड़कर प्रकृति की जड़ता अपने आप टूट गई है और वह मानवोचित क्रिया-कलाप करते हुए दिखाई देने लगती है । प्रकृति के साथ कवि का सम्बन्ध आत्मीयतापूर्ण है । वह कभी तो कवि की व्यक्तिगत भावनाओं को कुरेदती है, और कभी सामाजिक विसंगतियों का चित्रण करने के लिए कवि उसका उपयोग करता है । कवि की सदैव यही इच्छा परिलक्षित होती है कि मनुष्य समाज को शोषण और अन्याय से शीघ्रातिशीघ्र मुक्ति मिलना चाहिए । यह कार्य प्रगतिवादी जीवन-दर्शन के आलोक में ही सम्भव है । इसलिए अंचल जी के प्रकृति-चित्रों में उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण सर्वत्र उपस्थित रहता है ।

x x x x x x x x x x x

x x x x x x x x x

x x x x x x x

x x x x x

x x x

x

सप्तम - अध्याय

नागार्जुन के काव्य में प्रकृति - चित्रण

नागार्जुन प्रारंभ से ही यायावरी वृत्ति के रहे हैं। लंका, तिब्बत, हिमालय की तराई और भारत के अनेक स्थानों का उन्होंने भ्रमण किया है। यही कारण है कि उनके द्वारा किया गया प्रकृति-चित्रण बड़ा ही सजीव बन पड़ा है। नागार्जुन के काव्य में प्रकृति की ताजा छवियों को देखा जा सकता है - गाँव की भी और नगर की भी। ये प्रकृति छवियाँ युग की भयंकरताओं से गुजरते-गुजरते कवि के मन को कभी बाँधती हैं और कभी लुभाती रही हैं। इस तरह यथार्थ का दारूण विष पीने के बाद भी उनके कवि को ताजगी मिलती रही है। आरंभ से ही नागार्जुन की कविताओं का एक बड़ा हिस्सा प्रकृति से सम्बन्धित रहा है। प्रकृति उन्हें आकर्षित करती रही है और उनका यात्री मन उसमें रमता रहा है। प्रकृति से इस गहरे जुड़ाव के कारण नागार्जुन ने उससे एक नया रचनात्मक रिश्ता बनाया है। वे प्रकृति का महज दृश्य वर्णन नहीं करते बल्कि उसे मानवीय संवेदना से सीधे जोड़कर देखते हैं। यह संवेदनात्मक जुड़ाव इस हद तक है कि प्रकृति नागार्जुन के जीने में शामिल है। यही कारण है कि प्रकृति के विविध रूप उनकी मनः स्थितियों के बदलाव के भी कारण बनते हैं।

नागार्जुन की कविताओं में प्रकृति की अद्भुत, सस्मित और मधुर-मादक छवियों के मनहरण बिम्बों को उतारने वाली कल्पनाएँ मिलती हैं। उनके प्रकृति बिम्ब आकर्षक और सौन्दर्यसिक्त होने के कारण हृदय को गहरे छूते हैं। उनकी समस्त छवियाँ आकर्षक, मनहरण और बिम्ब की श्रृंखला में बँधी हुई होने के कारण उन्हें प्रकृति की

राग चेतना का कवि प्रमाणित करती हैं । प्रकृति के कोमल और परूष दोनों रूपों ने नागार्जुन के कवि मानस को आन्दोलित किया है।

(क) प्रकृति का सामान्य और सहज रूप :

कवि को प्रकृति से गहरा प्रेम है, इसलिए प्रकृति उसकी कविताओं में अपने सारे रंग रूपों में, सारी मुद्राओं में आई है । नागार्जुन जी के यहाँ प्रकृति रोमानी नहीं, काल्पनिक नहीं, अलंकारों से सजी सजाई नहीं, वायवी नहीं, एक वास्तविकता है । प्रकृति के साधारण-असाधारण सारे रूप उनके यहाँ हैं । उसका सौन्दर्य और उसकी कुरूपता दोनों ही उन्हें प्रिय हैं । उसके मनोहारी रूपों के प्रति भी उनकी अनुरक्ति है और उसके रौद्र रूपों के प्रति भी उनमें दुराव नहीं है ।

नागार्जुन की प्रकृति-चेतना ग्राम्य को आधार मानकर प्रस्तुत हुई है, क्योंकि किसानी एवं गँवई संविदना ही उनकी कविता का मेरूदण्ड है । नागार्जुन जी की प्रकृति-चेतना जीवन से पलायन का नहीं वरन् कोमल कल्पनाओं के साथ मनुष्य को जीवन सन्देश देने वाली है ।[1]

नागार्जुन जी को अपनी आँचलिक प्रकृति से गहरा प्रेम है । कवि को प्रवास की स्थिति में जहाँ अपने परिवार की याद आती है, वहाँ मिथिला के रूचिर भू-भाग भी उसकी स्मृति चेतना का स्पर्श करते हैं -

"याद आता मुझे अपना वह तरउनी ग्राम
याद आती लीचियाँ वे आम

---

1. प्रगतिशील कविता - कल और आज:डॉ0रतनकुमारपाण्डेय,पृ0 16.

याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू भाग
याद आते धान, याद आते कमल-कुमुदिनी और तालमखान
याद आते शस्य श्यामल जनपदों के
रूप गुण अनुसार ही रखे गए वे नाम
याद आते वेणु वन वे नीलिमा के निलय अति अभिराम ।"[1]

कवि जब काफी दिनों बाद अपने गाँव लौटता है तो उसका हृदय अपने आँचलिक सौन्दर्य से उत्फुल्ल हो उठता है -

"बहुत दिनों के बाद
अबकी मैंने जीभर देखी
पकी सुनहली फसलों की मुस्कान
अबकी मैं जीभर छू पाया
अपनी गँवई पगडंडी की चन्दनवर्णी धूल
बहुत दिनों के बाद ।"[2]

ऋतुओं में वसन्त का सौन्दर्य सर्वाधिक आकर्षक लगता है । वृक्षों, लताओं में किसलय फूट-फूट कर निकलते हैं । कुसुम खिल-खिलाकर चारों ओर हर्ष का विस्तार करते हैं । सुगन्धित सौरभ वायु के सहारे चतुर्दिक विकीर्ण हो रहा है । कोकिल के आलाप में और भ्रमरों की गुंजार में मानों प्रकृति का मुखरित स्वर सबके लिए कर्णप्रिय बन रहा है । अनेक प्रकार के रंग प्रकृति के अंगों से छिटककर संसार में मादकता का संचार कर रहे हैं । हिमालय भी मुखरित होकर पिघले हुए तुषार के रूप में द्रवित दिखाई दे रहा है । प्रकृति

---

1. सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन , पृ0 47
2. वही, पृ0 22.

का यह रूप निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है -

> "पग-पग पर ऋतुपति का छवि - संभार
> दिशा - दिशा में किसलय कुसुम प्रसार
> विविध गंध, बंधुर समीर संचार
> पिकरव अलि-गुंजन, झिल्ली-झंकार
> स्निग्ध, सुकोमल, सतरंगी संसार
> मुखर हिमालय, पिघले तरल-तुषार
> प्रकृति परी ने सजा हरित श्रृंगार
> त्वरा भरित झरने हो उठे उदार ।"[1]

कवि केवल प्रकृति के कोमल, कमनीय रूपों पर ही मुग्ध नहीं है, वह संघर्षशील जीवन पर आस्था रखता है इसलिए प्रकृति के रौद्र रूप का चित्रण भी वह पूरे उत्साह के साथ करता है -

> "मैने तो भीषण जाड़ों में
> नभचुंबी कैलाश शीर्ष पर
> महामेघ को झंझानिल से,
> गरज-गरज भिड़ते देखा है ।"[2]

उक्त प्रकृति चित्रण पर कालिदास का प्रभाव स्वीकार करते हुए डॉ० शिवकुमार मिश्र ने इसके मूलांश को कवि के अपने निरीक्षण का अंश माना है ।[3]

नागार्जुन का प्रकृति-चित्रण ऋतुओं से भरपूर है, वैसे तो

---

1. नए प्रतिनिधि कवि : नागार्जुन बाबूराम गुप्त, पृ० 26.
2. काव्य संकलन राज्य सरकार के प्राधिकार से प्रकाशित उत्तर प्रदेश शासन, पृ० 197.

शिशिर, शरद, बसन्त सभी ने कवि को अपनी ओर खींचा है, पर पावस के प्रति कवि का लगाव सर्वाधिक दिखाई देता है, शिशिर की दुपहरी कवि में एक नई ताजगी भर देती है और कवि का हृदय हर्षोन्मत्त होकर गुनगुनाने लगता है -

"यह कपूरी धूप
शिशिर की यह दुपहरी
यह प्रकृति का उल्लास
रोम-रोम बुझा लेगा ताजगी की प्यास ।"[1]

नागार्जुन के प्रकृति-चित्रण की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे प्रकृति के चित्र स्वानुभूति के आधार पर खींचते है और अपने व्यक्तिगत अनुभवों की मद्धिम आँच में पकाकर उन्हें प्रस्तुत करते हैं । शरद पूर्णिमा की सुहावनी छटा ग्रामांचलीय परिवेश के साथ अपने समुन्नत रूप में इस प्रकार उतारी गई है -

"पके धान की कनक मंजरी एक नहीं सौ बनी झालरें
उड़द-मूँग की कलियों वाली बेलों की बिछ गई चादरें
चौकस खेतिहरों के पास ऋद्धि-सिद्धि के आकुल चुम्बन
शरद पूर्णिमा धन्य हुई जन-लक्ष्मी का करके अभिनन्दन
कुमुद मुदित हैं कहीं-कहीं कमलों के कानन सुकुचित हैं
श्वेत घनों से प्रतिबिम्बित हैं श्याम,सलिल झीलों के आनन
लाख-लाख नक्षत्र टँक गये नीली चादर बनी अनूठी
शरद जुन्हाई के आगे दुनिया की सुषमा लगती झूठी ।"[2]

बसन्त ऋतु ने आम्र-मंजरियों और उन पर सुरीली तान छेड़ने वाली कोयल ने कवि को सबसे अधिक प्रभावित किया है ।

---

1. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ० 116.
2. नागार्जुन रचनावली : पृ० 220

वासंतिक वैभव के बीच जब कवि कोयल को पहली बार बोलते हुए सुनता है, तो उसका हृदय पुलकित हो उठता है -

"अब के इस मौसम में
 कोयल आज बोली है पहली बार
कुसों को उमगे कई दिन हो गए
 टेसू को सुलगे कई दिन हो गए
अलसी को फूले कई दिन हो गये
 बौरों को महके कई दिन हो गए ।"[1]

वसन्त में कोयल की कूक कवि के मन में हूकजाती है तो पावस में चातकी की रट प्रियतम की याद दिलाती है । चातकी एक निष्ठभाव से अपने प्रियतम स्वाती के जलद की प्रतीक्षा करती है । अपने प्रियतम की अमृतमयी चार बूंदे ही उसके लिए पर्याप्त हैं, वह अपने प्रियतम के ध्यान में ही मग्न रहती है, उसे अन्य किसी से क्या लेना-देना है -

"सुहाई न मुझको काली घन घटा
सुहाई मुझको न पावस की छटा
जलधि सातों ही मुझे खारे लगे
लगी फीकी उमड़ती नदियाँ सभी
चित्त पर मेरे न चढ़ पाया कभी
वह सरोवर भी धवल कैलाश का
टुकड़ियों में बँटे और बिखरे हुए
धन्य स्वाँती के जलद तुम धन्य हो

---

1. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने नामक काव्य संग्रह की, अब के इस मौसम में नामक कविता से, पृ0 149-50

विकल थी चिर प्यास से यह चातकी
आ गए तुम अब कमी किस बात की ।"[1]

पावस ऋतु के प्रारम्भ में 'बलाका' पक्षी आकाश में तैरते हैं, मानों ये पावस के आगमन की सूचना देने के लिए हर्षोन्मत्त होकर उड़ रहे हों । कवि ने अपनी उर्वर कल्पना के सहारे इस मनहर दृश्य की झाँकी इस प्रकार उतारी है -

"उड़ी जा रही नील गगन में
पवन पंख पर विमल पताका
मानों विस्तृत कालिन्दी के
श्याम सलिल में अविरल गति से
बहती चली जा रही कोई
श्वेत सहस्त्र पत्र पद्मों की
बनी बनाई लम्बी माला
पावस की आगमन सूचना
देने आई प्रकृति सुन्दरी
फहरा कर निज धवल पताका ।"[2]

प्रवास काल में उमड़ते हुए आषाढ़ी बादल कवि के अन्तर्मन में प्रिया की याद ताजा कर देते हैं और वह प्रिय मिलन के लिए आकुल हो उठता है । 'ऋतु संधि' का यह चित्र प्रकृति के उद्दीपन को उजागर करता है -

"प्रतीक्षा थी बहुत जोहा बाट
x x x

---

1. सतरंगे पंखों वाली, नागार्जुन, पृ0 42
2. सरस्वती : सितम्बर, 1944, श्री शोभाकान्त जी की पाण्डुलिपि से

आज है आषाढ़ बदि षष्ठी
उठा था जोर का तूफान
उसके बाद सावन की काली घन घटा से
हो रहा आच्छन्न यह आकाश
आज होगी सजनि वर्षा हो रहा विश्वास
आज उमड़ी घन घटा को देख
मन यही करता कि मैं भी प्रियतम में
उसका करूँ आह्वान, कालिदास समान ।"[1]

बादलों के विविधरूप कवि देखता है । कभी वह उसके प्रसन्न रूप के प्रति आसक्त हो उठता है, तो कभी उनके उपयोगी स्वरूप पर मुग्ध हो जाता है । मेघ-गर्जन में कवि वाद्य संगीत की सुमधुर ध्वनि सुनता है और प्रकृति से इस संगीतमय वातावरण में विद्युत का मनचाहा नृत्य देखकर हर्षित होता है -

"धिन-धिन धा धमक-धमक, मेघ बजे
दामिनि यह गई दमक, मेघ बजे
दादुर का कंठ खुला, मेघ बजे
धरती का हृदय खुला, मेघ बजे
पंक बना हरिचन्दन, मेघ बजे ।"[2]

बादलों के शैशव रूप पर अनुरक्त कवि इनकी क्रीड़ा देखते-देखते अतीत की स्मृतियों में डूब जाता है । प्रकृति आलम्बन बनी-बनी एकाएक उद्दीपन का कार्य करने लगती है । बरसते हुए बादलों से कवि कर्मशील जीवन की प्रेरणा पाता है । बरसाती मौसम

---

1. तालाब की मछलियाँ ; नागार्जुन, पृ0 39-40.
2. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नागार्जुन :डॉ0 प्रभाकर माचवे, पृ0 53.

का चित्र खींचते हुए कवि लिखता है -

"तना है वितान
भला, इनकी महिमा का कौन करे बखान
इनकी घटाओं से लदा है आसमान
पता नहीं चलता रात्रिमान या कि दिनमान
सुन रे, अभागे, फुहारों से रिमझिम गान

x x x

यह वो ऋतु है ऋतुओं में सबसे महान् ।"[1]

बरसात में जब बादल छाते हैं तो कई-कई दिनों तक लगातार मूसलाधार वर्षा होती रहती है । कभी-कभी तो जी भी ऊब जाता है, पर कवि इस घेराव में एक प्रकार की गुदगुदी का अनुभव करते हैं और उसके मन प्राण पुलकित बने रहते हैं -

"अच्छीतरह घिरा हूँ, घिरा हूँ बुरी तरह
ऊँचे-ऊँचे बादलों ने डाल दिया है घेरा
कभी मूसलाधार, कभी रिमझिम
कभी टिप-टिप कभी फुहारें, कभी झीसियाँ
कभी बरफ की सी····हीरे की चूरन की सी महीन कनियाँ
सावनी घटाओं के अविराम हमले
झेल रहा हूँ पिछले चार दिनों से
बड़ा ही अच्छा लगता है,
काले-काले, झुके-झुके मेघों का यह घिराव ।"[2]

कवि प्रकृति को कई बार प्रतीक रूप में प्रयोग करता है,

---

1. तुमने कहा था : नागार्जुन, पृ० 90.
2. वही, पृ० 92.

और प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से अपनी प्रिया के सामीप्य का सुख भोग करता है -

"सिकुड़ गई रग-रग
झुलस गया अंग-अंग
बनाकर ठूँठ छोड़ गया पतझर
उलंग असगुन का खड़ा रहा कचनार
अचानक उमँगी डालों की सन्धि में
छरहरी टहनी पोर-पोर में गँसे थे टूसे
यह तुम थी ।"[1]

इन पंक्तियों के सन्दर्भ में डॉ० शिवकुमार मिश्र की यह टिप्पणी कितनी सटीक है -"कचनार प्रतीक है मनुष्य की वृद्धावस्था का जबकि सौन्दर्य तथा सरसता के सारे उपकरण उसे मुँह बिराने लगते हैं । इस उपेक्षित और अवहेलना से भरे जीवन को सरस बना देती है, समूचे जीवन के सुख-दु:ख की संगिनी, सहधर्मिणी की एक मीठी बात, एक तरहम स्पर्श । सरसता का यह सन्दर्भ एक साथ कितना मानवीय और मार्मिक है ।"[2]

चीन की लाल-क्रान्ति और तद्जन्य साम्यवादी समाज की स्थापना से कवि इतना प्रसन्न होता है कि उसकी गन्ध उसे हिमालय के इस पार भारत में भी मिलने लगती है । चीन की सफल क्रान्ति से कवि आशान्वित होता है कि शीघ्र ही यहाँ भी साम्यवाद की स्थापना होगी । इस प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए कवि प्राकृतिक प्रतीकों

---

1. सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ० 18.
2. भस्मासुर, नागार्जुन, पृ० 25.

का उपयोग करता है । लाल कमल-खूनी क्रान्ति का प्रतीक है । वह वृक्ष पूँजीपतियों का और सूखी दूब दबी पड़ी बेवस जनता का प्रतीक है। प्रकृति का यह प्रतीकात्मक उपभोग निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"खिल गए चीन की धरती - तल पर लाल कमल
आ रहा हिमालय पर यहाँ उनका परिमल
शंकित वट वृक्षों की इस कंपित छाया में
हर्षाकुल है यह सूखी दूबों का अन्तस्ल ।"[1]

हिमालय की ऊँची पहाड़ियों पर बैठकर कवि जब प्रकृति छवि का अवलोकन करता है, तो उसे प्रकृति में एक विलक्षण सौन्दर्य दिखाई पड़ता है । देवदास और चीड़ के वृक्षों का सौन्दर्य अद्भुत छटा बिखेरता प्रतीत होता है । प्रकृति का आलम्बन रूप कवि को इतना मुग्ध करता है कि वह कालिदास के प्रकृति-चित्रण की गहराइयों में झाँकने लगता है और प्रकृति-वैभव के पद गुनगुनाने लगता है -

"रंग बिरंगी फूलों वाली,
हरियाली से ढकी पहाड़ी
देवदारू की सरो-चीड़ की,
कोसों फैली हुई कतारें
उन ऊँचे हिममय शिखरों के
अद्भुत और विचित्र नजारे
इन दृश्यों के बीच बैठ जब,
कालिदास के पद गाता हूँ ।"[2]

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस : नागार्जुन, में संग्रहीत लाल कमल नामक कविता से, पृ० 3।
2 परानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन में संग्रहीत, तब मै तुम्हें भूल

आकाश के विशाल प्रांगण में फैले हुए तारे कवि का ध्यान आकृष्ट करते हैं और वह उनकी मोहक छवि अपनी कविता में उतारकर इस प्रकार प्रस्तुत करता है -

"फीके-फीके से ये तारे
पहर रात है, ऊँघ रहा यह फीका शशि धौली चँदैदस का
चित्रा अनुसंधान कर रही नील गगन में, निर्मल रस का
.... झिलमिल-झिलमिल
थके हुए पग, पका हुआ दिल
क्या न मिलेंगे कभी, अभी जो
दूर-दूर हैं पर बेचारे
फीके-फीके से ये तारे ।"[1]

नागार्जुन के प्रकृति-चित्रण में क्षेत्रीय प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है । वे अपने घुमक्कड़ी वृत्ति के कारण देश भर में चक्कर लगाते रहे हैं । ट्रेन से यात्रा करते समय जब उन्हें कोई प्राकृतिक-दृश्य अपनी ओर खींचता है, तो वे तन्मय होकर उसके विशिष्ट सौन्दर्य पर अपनी कविता रच डालते हैं । ऐसी ही कितनी पहाड़ी नदी का दृश्य छोटा नागपुर के आसपास उनकी नजर के सामने आ पड़ता है और वे भाव-विभोर होकर लिखने लगते हैं -

"पहाड़ी प्रदेश, ऊभड़ - खाभड़
छोटा नागपुर या मध्यप्रदेश का कोई ऐसा ही इलाका
छोटी सी एक नदी

---

1. पुरानी जुतियों का कोरस : नागार्जुन में संग्रहीत, तारे नामक कवता से, पृ0 111.

अपने आपमें मस्त
हाँ, पहाड़ी नदी
हरे -भरे किनारे
इधर भी जंगल, उधर भी जंगल
जामुन, गूलर, पलाश, आम, महुआ, नीम······
सभी देखते हैं अपना-अपना चेहरा
नदी के पानी में ।"[1]

कवि को बादलों से सर्वाधिक स्नेह है । बादल करुणा और परोपकार का प्रतीक हैं । वे मानवीय संवेदना को जाग्रत करते हैं। नागार्जुन ने बादलों के विविध रूपों का चित्रण किया है । उन्हें बादलों का लोकोपकारी रूप विशेष प्रिय है । हेमन्त के बादल कैसे लगते हैं -यह देखना हो तो नागार्जुन की कविता पढ़ना जरूरी है । उदाहरण के लिए उनकी कविता से निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"हेमन्ती बादल हैं
इनकी अगवानी में दादुर नहीं बोले
कोयलों ने कूक नहीं भरी, पर नहीं तोले
चातक तक मौन रहे, मोर नहीं डोले
हेमन्ती बादल हैं
जाने कहाँ, जाने किधर
बरसाकर आये हैं बरफ के गोले
सुलभ है
तटवर्ती द्रुमों का सहारा
रूपहली सीपियों ने अधरपुट
क्यों नहीं खोले ।"[2]

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस में संग्रहीत, वह फिर जी उठी नामक कविता से, पृ0 115.
2 वही, हेमन्ती बादल हैं नामक कविता से, पृ0 159.

सीखचों के पार झाँकती हुई 'नीम की दो टहनियाँ' कवि का मन जीत लेती है। शिशिर ऋतु की दोपहर में धूप मन को ताजगी प्रदान करती है। कवि प्रसन्न होकर लिखता है -

"नीम की दो टहनियाँ
झाँकती है सीखचों के पार
यह कपूरी धूप
शिशिर की यह दुपहरी, यह प्रकृति का उल्लास
रोम-रोम बुझा लेगा ताजगी की प्यास।"[1]

बसन्त तो ऋतुराज है, भला बासन्तिक उल्लास से नागार्जुन का हृदय अछूता कैसे रह सकता है? वसन्त के आते ही प्रकृति हरी-भरी हो उठती है और कुसुमाकर के आशीर्वाद से जन-जन के तन मन पर रंगीनी छा जाती है। 'बसन्त की अगवानी' कविता में कवि ने इसी वैभव की झाँकी उतारी है -

"दूर कहीं अमराई में कोयल बोली
परत लगी चढ़ने झींगुर की शहनाई पर
वृद्ध वनस्पतियों की ठूँठी शाखाओं में
पोर-पोर टहनी-टहनी का लगा दहकने
टूसे निकले मुकुलों के गुच्छे गदराये
अलसी के नीले फूलों पर नभ मुस्काया
मुखर हुई बाँसुरी, उँगलियाँ लगीं थिरकने
छूट पड़े भौंरे रसाल की मंजरियों पर
झुक न जायें सहजन की ये तुनक टहनियाँ
मधुमक्खी के झुण्ड भिड़े है डाल-डाल में

---

1. सतरंगे पंखों वाली, नागार्जुन, पृ० 35.

जौ - गेहूँ की हरी-हरी बालों पर छाई
स्मित-भास्वर कुसुमाकर की आशीष रंगीली
शीत समीर, गुलाबी जाड़ा, धूप सुनहली
जग वसन्त की अगवानी में बाहर निकला ।"[1]

नागार्जुन प्रकृति को किसी निर्जीव सत्ता के रूप में नहीं देखते अपितु प्रकृति उनकी कविता में मानवीय संवेदना के साथ कूदती इठलाती - बतियाती किसी नायक या नायिका की तरह आती है । उपर्युक्त चित्र में आम्र-मंजरियों का मानवीकृत रूप ही अपने सहज आकर्षण के साथ ही मुखरित हुआ है । हम इसे प्रकृति का गत्यात्मक बिम्ब कह सकते हैं । 'बादल को घिरते देखा है' - नामक कविता से 'छायावादी सौन्दर्य पंक्तियों की ओट से सलज्ज नायिका की तरह झाँकता हुआ दिखाई देता है । कवि की सहृदयता, सौन्दर्याभि-रूचि और विशिष्ट रागात्मक संवेदना की पहचान कराने वाली ये पंक्तियाँ देखिये -

"अमल धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है
छोटे-छोटे मोती जैसे उसके शीतल तुहिन कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर गिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है ।"[2]

---

1. सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ0 33.
2. वही ; बादल को घिरते देखा है नामक कविता से, पृ0 29.

वृक्ष के सूखे पत्ते कवि को इसलिए याद आते हैं क्योंकि वे शीघ्र ही झर जायेंगे और उनके स्थान पर नई कोंपले निकल आयेंगी। ये पत्ते पुरानी परम्पराओं, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का प्रतीक हैं। नई कोंपलें, नई समाज रचना का प्रतीक हैं। कवि की प्रगतिशील विचारधारा का सटीक अंकन इस प्रकृति चित्र में देखा जा सकता है -

"खड़-खड़ - खड़ - खड़ करने वाले
ओ पीपल के पीले पत्ते
अब न तुम्हारा रहा जमाना
शकल पुरानी, रंग पुराना
सीख पुरानी, ढंग पुराना
अब न तुम्हारा रहा जमाना
आज गिरो, कल गिरो कि परसों
तुमको तो अब गिरना ही है।"[1]

सिन्धु के असीम विस्तार को देखकर कवि का हृदय गद्‌गद हो उठता है। वह भाव-विभोर होकर उसके रूप का चित्र खींचता है और उसकी अमृतधारा से उल्लास का अनुभव करता है -

"हे सिन्धु देख तव अमियधार गद्‌गद होता हूँ बार-बार
तुम आये कल-कल, छल-छल कर उस मानसरोवर से चलकर
पच्छिम छटकर फिर उत्तर से हिमगिरि के वक्षस्थल पर से
हे सिन्धु देख तब अमियधार, गद्‌गद होता हूँ बार-बार।"[2]

शरद ऋतु की प्रात:कालीन छटा कवि को जागरण का

---

1. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने; नामक काव्य संग्रह की, ~~पीपल~~ पीपल के पीले पत्ते नामक कविता से, पृ० 19
2. वही, सिन्धु नद नामक कविता से, पृ० 33.

सन्देश देती है । वह ओस की बूंदों से लदी धान-मंजरियों के रूप पर मोहित हो जाता है । इन मंजरियों पर जब बाल-रवि की किरणें पड़ती हैं,तो उनका रूप और भी अभिराम हो उठता है । धान की मंजरियों में उस किसान की मेहनत का फल कवि को दिखाई देता है, जो भरी बरसात में खेत जोतकर अपनी फसल रोपता है । खेत का यह अद्भुत सौन्दर्य कवि की निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है -

"शुरू-शुरू कार्तिक में
निशा शेष ओस की बूंदियों से लदी है
अगहनी धान की बुढी मंजरियाँ
पाकर परस प्रभाती किरणों का
मुखर हो उठेगा इनका अभिराम रूप

x x x

करेगा मेरा स्वागत शरद का बाल-रवि
चमकता रहेगा घड़ी आधी घड़ी
पूर्वांचल प्रवाही परमान की,
द्रुत विलम्बित लहरों पर ।"[1]

बरसात के बाद दूसरी प्रकृति निर्मल हो जाती है । वृक्षों वनस्पतियों के पत्ते धुल जाते हैं । उनका मैल साफ हो जाता है । धुले हुए पत्तों का सौन्दर्य कवि को उसी तरह भाता है, जिस तरह स्वस्थ निर्मल समाज - व्यवस्था में आदमी का जीवन भला लगता है । पत्तों का आकर्षण कवि के शब्दों में कुछ इस प्रकार का रूप ग्रहण करता है -

"धूप में खिले पात
वर्षा में अनावृत धुले पात

---

1. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने ; नामक काव्य संग्रह की, पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने नामक कविता सेपृ0 155.

फीके थे कल आज खुले पात
मस्तानी हवा में हिले पात
जादुई साँचे में ढले पात
भूल गए दाह-दिन भले पात ।"[1]

नागार्जुन प्रखर प्रगतिशील कवि हैं । उनकी कविताओं में जर्जर समाज व्यवस्था को समाप्त कर, नई साम्यवादी समाज-संरचना का स्वप्न व्यक्त हुआ है । प्रकृति के माध्यम से भी उन्होंने अधिकांशतः अपने प्रगतिशील विचारों को ही अभिव्यक्ति प्रदान की है । कोहरा उसी शोषणयुक्त समाज व्यवस्था का प्रतीक हैं । पर कवि को पूरी आशा है कि शीघ्र ही स्वतन्त्रता और समानता का सूरज निकलेगा और सारा संसार खुशियों से भर जाएगा -

"अभी-अभी कोहरा चीरकर चमकेगा सूरज
चमक उठेंगी ठूँठ की नंगी भूरी डालें
अभी-अभी थिरकेगी पछिया बयार
झरने लग जायेंगे नीम के पीले पत्ते
अभी-अभी खिलखिलाकर हँस पड़ेगा कचनार
गुदगुदा उठेगा उसकी अगवानी में
अमलतास की टहनियों का पोर-पोर
करवटें लेंगे बूँदों के सपने
फूलों के अन्दर, फलों - कलियों के अन्दर ।"[2]

बादलों का छाना और फिर रिमझिम-रिमझिम बरसना

---

1. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने : नामक काव्य संग्रह की, धूप में खिले पात नामक कविता से, पृ० 158-59.
2. वही : करवटें लेगें बूँदों के सपने नामक कविता से, पृ० 149-60.

कवि को बहुत अच्छा लगता है । बरसात के पानी में भींगकर कवि का मन प्रसन्न हो जाता है । सबकी प्यास बुझ जाती है । सबके जीवन में हर्षोल्लास आ जाता है । बादलों का यह बरसना माँ के ममत्व जैसा लगता है । मिट्टी की सोंधी गंध कवि को जीवन का सन्देश देती है । एक प्रकार से जीवन का नवीनीकरण सा हो जाता है-

"लो यह उमड़-उमड़ आया
धन-धन के मन में तरंगित घन सागर
रग-रग जुड़ा गई, पुलकित है रोम-रोम
माँ के ममत्व का झुक आया स्नेही व्योम
भीगी, झुरझुरी मिट्टी की सोंधी सुवास
भर देगी बूढ़े हाथियों में भी जीवन का एहसास
खाली-खाली चुपचाप उदास-उदास
देखेंगे तमाशा गुलमुहर, अमलतास ।"[1]

वसन्त का शुभागमन सभी को रस-राग में डुबो देता है । कवि कुसुमाकर के अमर वरदान स्वरूप निकली आम्र मंजरियों की छवि पर मुग्ध हो जाता है । बुढ़ापे में भी उसके जीवन में ये मंजरियाँ नई ताजगी भर देती हैं । उसका तन मन झूमने लगता है -

"रंग - बिरंगी, खिली - अधखिली
किसिम - किसिम की गंधों वाली
ये मंजरियाँ तरूण आम की डाल-डाल पर, टहनी-टहनी पर
झूम रही हैं, चूम रही हैं, कुसुमाकर को
ऋतुओं के राजाधिराज को

---

1. आखिर ऐसा क्या कर दिया मैने नामक काव्य संग्रह की: लो यह उमड़-उमड़ आया नामक कविता से, पृ0 169.

तरूण आम की ये मंजरियाँ
रंग - बिरंगी, खिली-अधखिली ।"[1]

आकाश से धरती तक फैली हुई चाँदनी का दृश्य कवि को एक विशाल नर्त्तन समारोह जैसा दिखता है । चाँदनी की उछल-कूद कवि को मंत्र-मुग्ध कर देती है । वह घण्टों तक इस दृश्य को निहारता रहता है और इस प्रकृति नर्तकी का नृत्य देख - देखकर प्रसन्न होता रहता है -

"पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी
नाच रही, कूद रही, उछल रही चाँदनी
दूरउधर बुर्जी पर उछल रही चाँदनी
आँगन में दूबों पर गिर पड़ी
अब मगर किस कदर चमक रही चाँदनी ।"[2]

(ख) प्रकृति का भव्य और अलंकारिक रूप : प्रकृति की सुन्दर छवियों को देखकर कवि - हृदय उल्फुल्ल हो उठता है । नागार्जुन जी प्रकृति के मुग्ध आराधक रहे हैं, उनकी कविताओं में नागरिक प्रकृति के कतिपय बड़े आकर्षक चित्र प्रणीत हुए हैं । उनकी कविताओं को देखने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि कवि ने प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण और निरीक्षण किया है । इस प्रकार के चित्र कवि के जीवन की सौन्दर्य चेतना को उद्‌घाटित करते हैं । कवि जीवन की उन्मुक्त किलकारियाँ

---

1. आखिर ऐसा क्या कर दिया मैने नामक काव्य संग्रह की : बसन्त की अगवानी नामक कविता से, पृ0 236.
2. वही, फिसल रही चाँदनी नामक कविता से, पृ0 238.

लेता हुआ, लोरियों में झूलता हुआ, तृण, तरु, लता को हरियाली में बिहँसता हुआ सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को देखना चाहता है -

ग्रीष्म ऋतु में नदी सूख जाती है । सब तरफ रेत ही रेत दिखाई देती है । लगता है कि जैसे नदी मर गई हो । उसका पानी ही तो उसके प्राण हैं । जब वह सूख जाता है, तब नदी निरर्थक हो जाती है ; किन्तु वह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रहती । परिवर्तन सृष्टि का नियम है । फिर बरसात आती है । बादल घिरते हैं। पानी बरसता है और नदी में पुन: जल प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है । नदी की इस व्यथा - कथा को कवि भाव - विभोर होकर अंकित करता है, मानों वह कोई जीती-जागती नायिका हो -

"फिर से आ गई जान नदी केअन्दर
बादलों से कहा था सूरज की किरणों ने
सूरज की किरणों से कहा था हवा ने
हवा से कहा था मेढकों ने
झेलना पड़ा था नदी का घमण्ड बेचारे मेढकों को....
डाल दिया बादलों ने
नदी के अन्दर जीवन चुपचाप एक रात
x x x
फिर से हो गया चालू पानी का प्रवाह ।"[1]

कवितान्त में कवि - हृदय का यथार्थ प्रकृति की मनोरमता के न मिल पाने के कारण क्षण भर के लिए विक्षुब्ध भी होता है, किन्तु एक झटका

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस में संग्रहीत : यह फिर जी उठी नामक कविता से, पृ0 120.

देकर पुनः चेतना में आकर कह देता है -

"जाने दो यह कवि कल्पित था ।"[1]

शिशिर के शीत की प्राणलेवा तेजी तीर की तरह चुभती है और वह इसीलिए कवि को विषकन्या की तरह दिखाई देती है -

"हजार - हजार बाहों वाली शिशिर विषकन्या
उतरी लेकर साँसों में प्रलय की वन्या
हिमदग्ध होठों के प्राण शोषी चुंबन
तन-मन पर लेप गए ज्वालामय चंदन ।"[2]

'कुहरा क्याछाया' कविता में जब शिशिर की तीव्रता बीस गुना बढ़ जाती है तो कवि को लगता है कि रात - दिन सभी कुहरे में डूब गए हैं । ऐसी स्थिति में कवि मानवीकरण शैली का प्रयोग करता हुआ लिखता है -

"रवि - शशि दुबक गए
ओढ़कर झीनी-झीनी नीहारिका का लिहाफ ।"[3]

'कोयल आज बोली है' कविता में नागार्जुन ने बसन्त की मदमस्त प्रकृति का वर्णन किया है । कोयल की कूक के साथ टेसू भी लाल हो जाता है, अलसी फूल उठती है, आम्र मंजरियों का सेहरा आम के पेड़ों पर बँधा होता है, दोपहर में रवि रश्मियों की प्रखरता

---

1. नए प्रतिनिधि कवि : नागार्जुन, बाबूराम गुप्त, पृ0 25.
2. वही, पृ0 27
3. वही, पृ0 28.

से हरी भरी प्रकृति त्रस्त हो जाती है -

"दरक गये केलों के पात, लेते ही करवट
तेजाब की फुहारें, छिड़कने लगा सूरज ।"[1]

'भस्मांकुर' खण्डकाव्य में जो प्रसंग वर्णित है, उसमें प्रकृति का योगदान न केवल विशिष्ट है,अपितु अविस्मरणीय भी है । बसन्त के वैभव के अनगिनत मादक चित्र इस काव्य को कवि की रागात्मक चेतना का प्रसाद प्रमाणित करती हैं । कवि ने शिव और पार्वती के भावी मिलन और आलिंगन को बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से अभिव्यक्त किया है । इस मिलन की सांकेतिक व्यंजना प्रकृति के उपादानों द्वारा कराई गई है -

"शाखाएं हो उठीं खूब कतीर
रोक न पाई, आलिंगन की चाह,
लतिकाओं ने पकड़ी सुख की राह,
दीर्घ प्रलंबित थाम लिए भुजदण्ड ।"[2]

नागार्जुन प्रकृति केजिन अंगों का स्पर्श करते हैं, वे सार्वभौमिक होते हुए भी अपनी आंचलिक विशेषताओं के साथ उद्‌घाटित हुए हैं । वे प्रकृति का चित्रण प्राय: ग्रामीण परिवेश के साथ जोड़कर करते हैं,इसीलिए उसमें स्वाभाविकता अधिक रहती है । प्रकृति के सामान्य रूपों में -रात, चाँदनी, तारे, वर्षा, बादल, बाढ़, बसन्त तथा शिशिर के दृश्यों ने कवि मन को सबसे अधिक प्रभावित किया है । अँधेरी रात में आकाश में टिमटिमाते हुए तारे कवि को जागरण का सन्देश देते हैं -

---

1. नए प्रतिनिधि कवि : नागार्जुन,बाबूराम गुप्त, पृ0 27

2. वही, पृ0 27

"सो गया तो स्वप्न में तारे मुझे कहने लगे
जागो, नयन खोलो, अजी दिन में जगे तो क्या जगे ?
अचकचा कर उठा, देखा, गगन में नक्षत्रगण
श्रांत, श्यामल हृदय पर जो ढलमलाते स्वेद कण
ओढ़ मणि-मुक्ता जड़ित नवनील चीनांशुक निशा
मानों विराट् विधान की परिकल्पना में लीन थी ।"[1]

x x x

"पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर
चमक रही, मचल रही, दमक रही चाँदनी
दूर उधर, बुर्जी पर उछल रही चाँदनी ।"[2]

नागार्जुन जी की प्रारंभिक रचनाओं में किंचित रहस्य भावना का भी समावेश था । इसलिए जब कवि आकाश मण्डल में संचरणशील तारों की गतिविधियों को टकटकी लगाकर देखता है तो उसे ऐसा लगता है, मानों ये विरहाकुल तारे किसी की तलाश में इधर-उधर भटक रहे हैं -

"एक दूसरे से विरहित हो,
सबके सब चुपचाप खड़े हैं
जाने इन पर किस दुर्गम दुर्वासा के अभिशाप पड़े हैं
तितर-बितर हैं, अलग-अलग हैं
जाने चिंतित हैं कि सजग हैं
कौन वस्तु वह, कौन व्यक्ति वह
जिसको खोज-खोज कर हारे,
फीके - फीके से ये तारे ।"[3]

---

1. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, पृ0 25.
2. आजकल पत्र, जून, 1946.
3. खिचड़ी विप्लव देखा हमने : नागार्जुन, विप्लव, पृ0 76.

पावस ऋतु के प्रारम्भ में 'बलाका' पक्षी आकाश में तैरते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों ये पावस के आगमन की सूचना देने के लिए हर्षोन्मत्त होकर उड़ रहे हों। जैसे ही बलाका द्वारा पावस की सूचना प्रसारित कर दी जाती है, वैसे ही क्षण भर बाद आषाढ़ी बूँदें बिखेरते काले-काले बादल इधर-उधर उड़ने लगते हैं -

"हाथी जैसे झूम-झूम कर, काले बादल उड़े जा रहे
विरही कालिदास के मन में, मेघदूत के ध्यान आ रहे
पाकर आषाढ़ी बूँदों को, बिना गुँथी ही मुक्तावलियाँ
झीलों में खिलखिला उठी हैं
स्वर्ण कमल की अविकच कलियाँ।"[1]

आकाश मण्डल में क्रीड़ा करते हुए बादलों के टुकड़े नागार्जुन का मन खींच लेते हैं और कवि उनकी विभिन्न मुद्राओं के प्रति आत्मविभोर हो उठता है -

"नभ में चौकड़ियाँ भरे चलें, शिशु घन कुरंग
खिलवाड़ देर तक करें भले, शिशु घन कुरंग
लो, आपस में गुँथ गए खूब, शिशु घन कुरंग
लो, घटा जाल में गए डूब शिशु घन कुरंग
लो, बूँदें पड़ने लगीं वाह, शिशु घन कुरंग
लो, कब की सुधियाँ जगीं, आह शिशु घन कुरंग।"[2]

उनकी 'जयति - जयति, जय सर्वमंगला' शीर्षक कविता में पूस मास की धूप की पृष्ठभूमि में निम्न मध्यवर्गीय जीवन की विवशता को बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। यही प्रकृति जीवन -

---

1. सरस्वती, सितम्बर 1944, श्री शोभाकान्त जी की पाण्डुलिपि से,
2. आज के लोकप्रिय कवि नागार्जुन: सं0डॉ0 प्रभाकर माचवे, पृ0 52-53.

संघर्षों की कटुता के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुई है -

"पूस मास की धूप सुहावन, घिसे हुए पीतल सी पांडुर
पूस मास की धूप सुहावन, स्तनपायी नीरोग घोर छवि
शिशु के गालों जैसी मनहर, पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है घिर रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भभार से अलस शिथिल हैं अंग-अंग
मुँह पर उसके मटमैली आभा
सब कुछ है पर कोयला नहीं है, कैसे काम चलेगा बोलो
चावल नहीं सिझा सकती है, रोटी नहीं सेंक सकती है
भाजी नहीं पका सकती है, पूस मास की धूप सुहावन

x x x

फौरन उठकर जाना होगा
जहाँ कहीं से एक अठन्नी लानी होगी
वर्ना फिर इस चूल्हे के मुँह पर मकड़ी का जाला होगा ।"[1]

डॉ0 रणजीत इसे "प्रकृति के रूमानी आकर्षण के बीच जीवन यथार्थ का उभार कहते हैं"।[2]

कुछ भी हो, कवि प्रकृति-दर्शन में इतना सराबोर नहीं हो जाता कि वह जीवन की कड़ुवाहट को बिल्कुल भुला दे । वह तो जीवन संघर्ष में जूझता हुआ प्रकृति की आराधना करता है । डॉ0प्रभाकर माचवे ने उनकी इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखा है-"प्रकृति उनके लिए अपने अधूरे सपनों का नीड़ कभीनहीं रही । यहाँ पलायन कर इस धरती के दु:ख - दर्द को भूल जाने की बात उन्होंने कभी मन में नहीं

---

1. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, पृ0 158.
2. हिन्दी की प्रगतिशील कविता;डॉ0रणजीत, पृ0 296.

ठानी । इसलिए चाहे प्राकृतिक दृश्य हो या प्राकृतिक विषयों पर मानवीकरण का आरोपण हो, सर्वत्र वे अपने आस-पास के पूरे जीवन और जगत की विसंगतियों और विद्रूपताओं को भूल नहीं पाए हैं । एक दुःस्वप्न की तरह वह सब वर्गभेद, वर्ग-संघर्ष , वर्गगत शोषण-प्रपीड़न उनकी कल्पना को रंगता जाता है । इसलिए उनकी कविता सीधी, खुरदरी, प्रत्यक्ष दृष्टा की जमीन से उपजी है, उसमें तथाकथित संभ्रान्त संस्कार नहीं है ।[1]

नागार्जुन जी को प्रकृति से प्रेम होने के कारण उन्होंने प्रतीकों का चयन अधिकांशतः प्राकृतिक क्षेत्र से किया है । समाज द्वारा शोषित और पराधीन नारी-समाज के लिए नागार्जुन ने 'तालाब की मछलियाँ' प्रतीक का प्रयोग किया है ।[2]

एक कविता 'शान्ति का मोर्चा' में कवि ने 'गीधों' का प्रतीकात्मक प्रयोग साम्राज्यवादी पूँजीपतियों के लिए किया है-

"दानव वह है चाह रहा है एकांगी जो सोना बटोरता
गीधों को ही आता है लाशें अगारना ।"[3]

अपनी 'अरुणोदय' रचना में कवि ने प्राकृतिक उपादानों को प्रतीक रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

"जय अरुणोदय,
जय सिंदूरी किरण सुहानी

---

1. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नागार्जुन:सं०डॉ०प्रभाकर माचवे,पृ०-11
2. तालाब की मछलियाँ;नागार्जुन,पृ० 41.
3. हंस : अंक अक्टूबर, 1950.

उछल रही है तुझे देखकर नई जवानी
बुरे ग्रहों का अंत निकट है
सदा बहार बसन्त निकट है
शान्तिपूर्ण सुखमय जीवन की खातिर यह संघर्ष हमारा
कैसे भला रूकेगी युग की गंगा की धारा ।"[1]

यहाँ 'अरूणोदय' और 'सिन्दूरीकरण' लाल क्रान्ति के लिए, बुरे ग्रह - शोषकों के लिए, सदा बहार वसन्त - समाजवादी व्यवस्था के लिए, तथा युग की गंगा की धारा का प्रयोग इतिहास की गति के लिए प्रतीकात्मक रूप में किया गया है ।

निष्कर्ष :

कवि नागार्जुन जी की प्रकृति के प्रति विभिन्न कल्पनाएँ हैं । कभी वे उस चीज को दूसरे दृष्टिकोण सेदेखते हैं, कभी दूसरे । किन्तु प्रकृति के प्रति असीम राग होते हुए भी कवि का दृष्टिकोण पलायनवादी नहीं है । वह जीवन-संघर्षों से भागकर प्रकृति की गोद में मुँह नहीं छिपाते । इसलिए उनके अधिकांश प्रकृति-चित्रण मानव जीवन के क्रिया - व्यापारों के साथ जुड़कर ही अंकित हुए हैं । उनके प्रकृति-चित्रण पर सामाजिक जीवन के यथार्थ का हर्ष और विषाद अपनी छाप छोड़ जाता है । 'मलयेन्द्र शुक्ल' के शब्दों में, "नागार्जुन प्रकृति के सहज सौन्दर्य से भी प्रभावित हैं, किन्तु उन्होंने प्रकृति के छायावादी गायकों की तरह जादुई चमत्कार को ही ध्यान में नहीं रखा । उसका जो इस जीवन जुड़ा है, उस पर अपेक्षाकृत ज्यादा बल दिया है ।"[2]

---

1. तालाब की मछलियाँ :नागार्जुन, पृ० 83
2. मलयेन्द्र शुक्ल : कविता का आधुनिक परिप्रेक्ष्य, पृ० 150.

नागार्जुन के प्रकृति-चित्रण में आंचलिक - यथार्थ को सर्वोपरि स्थान मिला है। उन्होंने प्रकृति के सामान्य रूपों की अपेक्षा प्रकृति के विशिष्ट रूपों पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित किया है। प्रकृति के ये विशिष्ट रूप विशिष्ट स्थानों से सम्बन्धित हैं और वहाँ की पृष्ठभूमि मेंही उन्हें अंकित किया गया है। प्रकृति कवि की प्रेरणा स्रोत रही है और वह प्रकृति की सुन्दरता से अधिक उसके उपयोगितावादी रूप पर अधिक मुग्ध हुआ है। प्रकृति का उपयोग अलंकरण के लिए भी किया गया है, किन्तु अधिकांश प्रकृति-चित्रण पर कविके हृदय की निश्छल भावनाओं की छाप दिखाई देती है। वह प्रकृति को मनुष्य की सहचरी के रूप में सुख-दुःख अनुभव करते हुए चित्रित करता है और प्रकृति के माध्यम से मानव-जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का भी उद्घाटन करता है। नागार्जुन के प्रकृति-चित्रण में उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण सर्वत्र मुखरित होता है। ऊपर-ऊपर से साधारण दिखने वाले प्रकृति बिम्ब भी बहुत गहरे अर्थ की व्यंजना कर जाते हैं। प्रकृति उनके यहाँ आलम्बन भी है और उद्दीपन भी। पर अधिकांशतः उन्होंने प्रकृति का उपयोग मनुष्य - स्वभाव की सांकेतिक व्यंजना करने के लिए किया है। प्रकृति मनुष्य - जीवन का अभिन्न अंग बन गई है।

xxxxxxxxxxx

xxxxxxxxx

xxxxxxx

xxxxx

xxx

x

अ ष्ट म - अ ध्या य

डॉ0 रामविलास शर्मा, नरेन्द्र शर्मा, तथा शैलेन्द्र आदि की रचनाओं में प्रकृति - चित्रण

प्रगतिवादी कवियों की एक लम्बी सूची है और लगभग सभी ने किसी न किसी स्तर पर प्रकृति को अपने काव्य का विषय बनाया है । इस अध्याय में सभी की प्रकृति - परक रचनाओं का विश्लेषण कर पाना कठिन साध्य है और ऐसा करना बहुत समीचीन भी न होगा । इसलिए मैने यहाँ प्रगतिवाद के तुलनात्मक रूप से अधिक ख्यातिलब्ध कवि डॉ० रामविलास शर्मा, नरेन्द्र शर्मा और शैलेन्द्र की प्रकृति परक रचनाओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखा है ।

(क) डॉ० रामविलास शर्मा के काव्य में प्रकृति-चित्रण :

शर्मा जी मूलतः प्रकृति के बारीक स्पंदनों के बहुत गहरे और अनूठे कवि हैं । वे प्रकृति को लोगों के जीवन और लोगों को प्रकृति के जीवन में भाग लेते हुए महसूस करते हैं । वे अनवरत अध्ययन, चिन्तन और भीतर की खोज में लीन रहते हैं । प्रकृति को उनकी कविता से अलग करना कविता को शब्द सेअलग करने की तरह होगा । प्रकृति के चिरंतन राग, उसके समयुगीन रूपायन उससे जुड़े लोक-संविदन और कवित्व की मार्मिकता के कारण वे उन कवियों में हैं जो "कल" भी रह जायेगें । प्रकृति उनके व्यक्तित्व में इतनी संश्लिष्ट और घनीभूत हो गई है कि जहाँ एक ओर मौसम, फल, पहाड़, हवा, नदी पर बात करते हुए पूरा संसार उनमें जन्म लेता है, वहीं जीवन के राग-रंग, शोषण, अनुभव वगैरह सब कुछ वे प्रकृति की भाषा में ही व्यक्त करते हैं । उनके काव्य में उनके सारे अनुभव रूपात्मक होकर आये हैं और सारे रूप अनुभवात्मक होकर । प्रकृति बिम्बों की इतनी अधिक

विलक्षणता और मार्मिकता की दृष्टि से हिन्दी कविता में उनका कोई जोड़ नहीं है ।[1]

रामविलास शर्मा जी ने प्रकृति को सजीवद्दृश्यों के साथ उपस्थित किया है । सुन्दर तथा सक्षम कल्पना के माध्यम से उन्होंने प्रकृति को उतारा है । कवि के दृश्यों में चित्रमयता प्रतीत होती है । इस दृष्टि से उनकी निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"वर्षा से धुलकर निखर उठा नीला-नीला
फिर हरे- हरे खेतों पर छाया आसमान
उजली कुआँर की धूप अकेली पड़ी हार में
लौटे हैं इस बेला सब अपने घर किसान ।"[2]

इस कविता में ग्रामीण प्रकृति के चित्रों को कवि ने बहुत ही सुन्दर कल्पनाओं के माध्यम से चित्रित किया है ।

शर्मा जी की प्रकृति-परक रचनाओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि मानों वे एक सच्चे किसान की दृष्टि से प्रकृति को निहार रहे हों । खेत-खलिहान, उनमें उगने वाले ज्वार-बाजरे, मिट्टी की सोंधी सुगन्ध, आम के बगीचे और उनकी छायातले विश्राम करती गाएँ-सभी कुछ शर्मा जी की कविताओं में अंकित हुआ है । पूरा ग्रामीण परिवेश उभर आता है -

"पागुर करती छाँही में, कुछ गम्भीर अधखुली आँखों से
बैठी गायें करतीं विचार
सूनेपन का मधुगीत आम की डाली में
गाती जाती मिलकर ममाखियाँ लगातार

---

1. हिन्दी साहित्य : डॉ0भोलानाथ, पृ0 423
2. रूपतरंग : रामविलाश शर्मा, पृ0 ।

भर रहे मकाई ज्वार बाजरे के दाने
चुगती चिड़ियाँ पेड़ों पर बैठी झूल-झूल
पीले कनेर के फूल सुनहरे पीले फूले
लाल-लाल झाड़ी कनेर की, लाल फूल
विकसी फूटें, पकती कचेलियाँ बेलों में
दो ले आती ठंडी बयार, सोंधी सुगन्ध ।"[1]

ग्रीष्म ऋतु में जब सूरज आसमान में तपता है, तो उसकी तपन कीपरवाह किए बिना सोमा चमार अपने अबोध बच्चों के साथ खेत की कटाई में जुट जाता है । उसने इस खेत को जोता-बोया और अपने पसीने से सींचा था । कवि की सहानुभूति इस खेत-मजदूर के साथ है । साथ ही यह पीड़ा भी कि प्रकृति की मार झेलने वाला यह मजदूर अपने मेहनत की कमाई फसल बिचौलियों के कारण घर नहीं ले जा पाता-

"अभी दोपहरी में, पर जब आकाश को
चाँदी का सा पात किए तप रहा
छोटा सा सूरज सिर पर वैशाख का
काले धब्बे से बिखरे वे खेत में
फटे अँगोछों में, बच्चे भी साथ ले
ध्यान लगा सोमा चमार है बीनते
खेत कटाई की मजदूरी इन्होंने
जोता, बोया, सींचा भी था खेत को ।"[2]

खेत - खलिहान कवि को बहुत प्रिय हैं क्योंकि इनका अस्तित्व किसान-मजदूर की मेहनत पर टिका हुआ है । फागुन में

---

1. हिन्दी साहित्य : डॉ0भोलानाथ, पृ0 423-424 से उद्धृत.
2. रूपतरंग : रामविलास शर्मा : सिलहार नामक कविता से, पृ0 8.

लहराते हुए खेत, पकी फसल की झूमती हुई बालें, उसी किसान - मजदूर की मेहनत का फल है । कवि की दृष्टि प्रकृति - दृश्यों को चीरकर उसकी गहराई में प्रवेश करती है और उनदृश्यों के विधाता किसान - मजदूरों के प्रति अपना समर्पण भाव प्रदर्शित करती है -

"बरस रहा है जब बागों में खेतों में जीवन
किसने दिया इन्हीं खेतों में प्राण विसर्जन ?
किसकी मिट्टी पर यह खेतों की हरियाली ?
किसकी लाल लहू की फागुन में यह लाली ?
ओ मेरे साथी ! मेरे जाने पहचाने
वज्र हड्डियों से बन गए अन्न के दाने ।"[1]

शर्मा जी की ग्रामीण प्रकृति से सम्बन्धित अनेक कविताएँ हैं, जिनमें कवि ने पूर्ण तन्मयता और अनुभूति के साथ चित्रों को उपस्थित किया है । 'वैसवाड़ा' कविता में वैसवाड़े का प्राकृतिक सौन्दर्य इन पंक्तियों में मूर्त हो उठा है -

"एक घनी अमराई सा यह दृश्य अवध का
जहाँ सतत बहती है गंगा
सई लोन नदियों के जल से भींज गई है
दुनिया में अनुपम हैं, यहाँ शरद की साँझें ।"[2]

दक्षिण भारत की प्रकृति को मूर्त करने वाली कवितायें हिन्दी में बहुत कम हैं किन्तु शर्मा जी ने दक्षिण के प्राकृतिक सौन्दर्य को अपनी कविताओं में बड़ी सुन्दर रेखाओं के साथ उतारा है । दक्षिण की

---

1. रूपतरंग : किसान कवि और उसका पुत्र नामक कविता से, पृ0 12.
2. वही, रामविलास शर्मा, पृ0 3.

प्रकृति से सम्बन्धित कविताओं में 'केरल एक दृश्य' कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है -

"एक घनी हरियाली का सा सागर
उमड़ पड़ा है केरल की धरती पर
तरुथानों में खोये से हैं निर्झर
सुन पड़ता है केवल उनका मृदु स्वर ।"[1]

x x x

नील गगन से भी गहरा है नीला यह समुद्र का जल
डूबे हैं जिसमें छः मन्दिर, ऊपर एक बचा केवल
आँगन के ये वृक्ष ध्वस्त से, आँधी पानी सह-सहकर
अडिग देखते हैं समुद्र की ओर अभी ऊँचा सिरकर ।[2]

इन पंक्तियों में कवि की यह विशेषता रही है कि उन्होंने प्रकृति को सजीव दृश्यों के साथ उपस्थित किया है । सुन्दर तथा सक्षम कल्पना के माध्यम से उन्होंने वहाँ की जीवन प्रकृति को उतारा है । कवि के दृश्यों में चित्रमयता प्रतीत होती है । साधारणतया बादल का छाना किसान के लिए शुभ लक्षण माना जाता है । न केवल किसान, बल्कि समूची धरती को हरा-भरा करने में बादलों को देखकर कवि का मन नाच उठता है, किन्तु शर्मा जी बादलों के केवल उदार पक्ष को ही नहीं देखते - वे उन आशंकाओं में भी डूब जाते हैं, जो बाढ़ की सम्भावना को जन्म देती हैं । वे बादलों की त्योरी देखकर सहम जाते हैं -

"बादल
बादामी पलके हैं

---

1. रूपरंग : रामविलास शर्मा, केरल एक दृश्य नामक कविता से, पृ0-3.
2. वही : कृष्णा तट पर विजयवाड़ा नामक कविता से, पृ0 85.

उतरते आषाढ़ की
झिलमिला रहे हैं
जिनमें
आँसू के कण
और आशंका बाढ़ की ।"[1]

प्रकृति कवि के लिए निर्जीव नहीं है । वह मनुष्य की तरह हाव-भाव व्यक्त करती है । बरगद के नीचे मयूर नाचता है, तो धरती झूम उठती है और उसका हरा आँचल दूर-दूर तक लहराने लगता है-

"बरगद तले
हो जाता है नृत्य विभोर
पंख पसारकर मोर
झूम उठती है धरती
और लहराता है आक्षितिज हरा आँचल ।"[2]

कवि प्रकृति का प्रतीकात्मक उपयोग करती है । नदी की बाढ़ से पलाश का वन थरथराने लगता है ; किन्तु उसे एक छोटी सी चिड़िया उसे चुनौती मानकर उसका सामना करती है और देखते - देखते नदी को पार कर लेती है । यह दृश्य कवि की आँखें खोल देता है । मानों उसे जीवन की नई राह मिल गई हो । उसका कल्पित भय मिट जाता है । उसे अनुभव होता है कि संकल्पशक्ति बड़ी चीज है । इस संकल्प शक्ति के सहारे बड़े से बड़ा मुश्किल काम भी आसान किया जा सकता है -

"नदी झूमती है
और बहने लगती है

---

1. बादल : रामविलास शर्मा, पृ0 20.

थरथराते पलाशवन के बीच
एक चिड़िया
चहचहाती हुई लाँघ जाती है
बेखौफ, सुलगता हुआ समूचा आकाश
एक अनाम बंध
दबे पाँवों
सिमट आई है बाँहों में ।"[1]

किसी तिल तूअर के लहलहाते खेत के उस पार सूर्यास्त का दृश्य कवि को बाँध लेता है । ऐसा लगता है, जैसे कोई सुर्खाब अपने पंख समेट कर मन्थर गति से आसमान में तैररहा हो । धीरे-धीरे ढलते सूर्य का यह दृश्य भी कवि एक खेत की मेड़ पर खड़े होकर ही देखता है-

"तिल तूअर के हरे पीले लहलहाते
खेत के उस पार, दूर
नीले पर्वतों की चोटियों पर
जम रही है, बादलों की बर्फ
क्षितिज की कुंकुम सतह पर
पर समेटे पीठ मोड़े
तैरते सुर्खाव की धीमी गति से
ढल रहा है सुनहला सूरज ।"[2]

वर्षा ऋतु के बहुतेरे चित्र देखने को मिलते हैं, किन्तु उन चित्रों में शर्मा जी के चित्र अपनी विशिष्टता के कारण सहज ही पहचाने

---

1. ऋतुबंध : रामविलास शर्मा, पृ० 8
2. वही, पृ० 25.

जा सकते हैं । शर्मा जी साहस और शौर्य के कवि हैं । वे बादलों से अधिक उस धरती के साहस पर मुग्ध होते हैं, जो अपनी प्यास बुझाने के लिए बादलों की गठरियाँ खोलकर उनसे पानी स्वत: खींच लेती है । कवि चातक की तरह माँगने पर विश्वास नहीं करता है, वह अपने अधिकार और आवश्यकता की लड़ाई स्वयं लड़ने पर भरोसा करता है। उसकी दृष्टि में बादलों की गठरियाँ खोलना जरूरी है, तभी धरती की तरह आगे बढ़कर अपना हक छीनना पड़ेगा -

"आसान नहीं है सैकड़ों मीटर गहरे
रेगिस्तानी कुएँ से खींच लेना
पानी का एक डोल
लेकिन कलेजा देखो धरती का
खींच लाती है अनन्त आकाश से
वर्षा का जल
बादलों की गठरियाँ खोल ।"[1]

ऐसा ही एक चित्र नदी और कुएँ के पारस्परिक संवाद में देखा जा सकता है, जहाँ कुआँ खीजकर उत्तर देता है कि बादल बेईमान हैं । वे झूठे आश्वासन तो देते हैं,पर उन्हें पूरा नहीं करते । बादल शोषक वर्ग का प्रतीक हैं । अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से वे जरूरतमन्द गरीब और बेसहारा लोगों को फँसाते जरूर हैं ; पर उनकी जरूरतें पूरी करने की योजना क्रियान्वित नहीं करते -

"उतरते आषाढ़ में
एक नदी ने कुएँ से पूछा...

---

1. बादल : रामविलास शर्मा, पृ0 13.

क्या हाल है आपके यहाँ पानी का
खीजकर कुएँ ने दिया जवाब
घिरते हैं पर बरसते नहीं
कोई हिसाब नहीं है बादलों की बेईमानीका ।"[1]

इमली के वृक्ष पर तेज हवा का स्पर्श चील की नुकीली चोंच की तरह गड़ता है । तभी उसकी पत्तियाँ नन्हीं-नन्हीं बूँदों की तरह थरथराती हुई जमीन पर गिरने लगती हैं । बिना भय के कोई किसी की सुनता ही नहीं है -

"इमली की फुनगियों पर आ बैठती है हवा
चील की तरह पंख पसार
और टहनियों पर रगड़ती है नुकीली चोंच
अचानक, ढुलक जाती है पत्तियों से
भयभीत परिन्दों - सी थरथराती
अनगिनत नन्हीं-नन्हीं बूँदें ।"[2]

प्रकृति के सामान्य रूपों के अतिरिक्त कवि ने मनुष्य निर्मित बाग-बगीचों की ओर भी दृष्टिपात किया है । बड़े अमीरों के बंगलों में बने लॉन का सौन्दर्य उन्हीं तथाकथित शिष्ट परम्पराओं का पालन करता दिखाई देता है, जो उन बंगलों में रहने वालों की तहजीब को याद दिलाता है । सूरजमुखी का फूल कवि को उन अमीरों के अर्दली की तरह अभिवादन करता हुआ प्रतीत होता है -

"बंगले के बाहर,
खूबसूरत हरा कच्चा लान

---

1. बादल : रामविलास शर्मा, पृ० 23.
2. वही, पृ० 39.

मुस्कुराते हुए गुलाब
शर्माते हुए डेहलिया
और अर्दली की तरह अभिवादन करता
सूरजमुखी का फूल ।"[1]

प्रकृति का हर रूप वर्तमान सामाजिक परिवेश के साथ जोड़कर चित्रित करने में शर्मा जी खूब माहिर हैं । तेज हवा उन्हें ऐसी लगती है, जैसे कोई बौरायी हुई मतवाली अधुनातन लड़की ; यूकेलिप्टस ऐसे काँपता है, उस लड़की से - जैसे कोई रक्तचाप का रोगी । और गर्मी की दोपहर गर्भिणी गाय की तरह नीम की छाया में जुगाली करती प्रतीत होती है । इन प्रकृति - बिम्बों में समाज की ताजा स्थिति के बिम्ब भी साथ-साथ उभरते चलते हैं -

"बाल बिखराए, सीटियाँ बजाती
सन्निपात ग्रस्त लड़की सी
दौड़ती आ रही है आँधी
काँप रहा है थर-थर रक्तचाप के रोगी-सा
सड़क के किनारे खड़ा भयाक्रान्त यूकेलिप्टस
नीम की छाँह में
पसरकर बैठी गर्भिणी गाय सी
जुगाली करती हुई अलसायी
गर्मी की दोपहर ।"[2]

प्रकृति और सौन्दर्य अलग-अलग लोगों पर अलग-अलग प्रभाव डालता है । शर्मा जी को चाँद पेट्रोमैक्स की तरह दिखाई देता

---

1. ऋतुगंध , रामविलास शर्मा पृ० 18.
2. वही, पृ० 37.

है - जिसकी दूधिया रोशनी में धरतीके वृक्ष स्नान करते प्रतीत होते हैं । प्रकृति के साथ आधुनिक जीवन के विभिन्न उपकरणों को सम्मिलित कर देने से चित्रण में नयापन आ जाता है -

"ताड़ के झुरमुट पर
लटक रहा है पेट्रोमैक्स - सा पूरा चाँद
और दूधिया रोशनी में नहा रहा है
सागोन, आम और महुआ का छतनार जंगल ।"[1]

किसी जंगल में सागोन के घने वृक्षों से छनकर आती हुई धूप दूब पर ऐसी लगती है-जैसे कोई खरगोश अपना भोजन तलाश कहा हो । हवा गन्ध वहन करती है और वह भी इस तरह जैसे बकरियों का झुण्ड कोई गड़रिया खदेड़ रहा हो । शर्मा जी प्रकृति के चित्रदलित -शोषित किसान-मजदूरों की जिन्दगी के साथ जोड़कर खींचते हैं ।प्रकृति उनके यहाँ जानदार प्राणियों की तरह जीवन का संगीत प्रवाहित करती है, मन में जीने की चाह जगाती है और आगे बढ़ने का सन्देश देती है-

"घने सागोन दरख्तों से,
छनकर आती चितकबरी धूप
कुतर रही है खरगोस सी
ढलानों पर यहाँ-वहाँ उग आई दूब
दूर से आरही है अलमस्त हवा, हाँकती हुई
बकरियों के रेवड़ सी जंगली फूलों की गन्ध ।"[2]

यही धूप जब शाम होने लगती है तो सहमे हुए खरगोस सी दीखती है । खरगोश जीवन का प्रतीक है । अन्धकार रूपी भेड़िए

---

1. ऋतुगंध , पृ0 2।

से डरकर वह दुबकने की कोशिश कर रहा है। सन्नाटा बूढ़े गिद्ध की तरह अपने पंख फड़फड़ाकर वातावरण को और भी भयानक बना रहा है। सायंकाल का चित्रण करते-करते कवि की दृष्टि समाज में व्याप्त भय और उत्पीड़न की ओर मुड़ जाती है। यही भय वह प्रकृति-चित्रों के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है -

"दुबक गई है
सहमे खरगोश-सी ढलती धूप
करीब की छतनार झाड़ियों में
जंगल से निकल, भेड़ियों के झुण्ड सा
खूंखार अंधकार, धुस आया है बस्ती में
पहाड़ी दुर्ग के, वीरान बुर्ज पर बैठा सन्नाटा
बूढ़ा गिद्ध सा, फड़फड़ाता है पंख।"[1]।

कवि निरा संघर्ष की प्रेरणा देने वाले चित्रों तक ही अपने को सीमित नहीं रखता। उसका हृदय कोमल है और वह लोक-संस्कृति की पृष्ठभूमि में भी प्रकृति छवियों का अंकन करने में दक्ष है। निम्नलिखित चित्र में यही बात है -

"दिशा दुलहनियों ने ओढ़ी, चूनर सुहाग-सी साँझ रे
नील नयन में हल्का काजल, दिया किसी ने आँज रे
क्षितिज शामियाने पर उड़ते, तोते बन्दनवार से
बादामी पलकों सी बदली, झुकी रूप के भार से।"[2]

उगता हुआ सूर्य कवि को ज्योतिलिंग की तरह दिखाई देता है जिसके उदय होने से आसपास के बादल मानों उसका अभिनन्दन

---

1. ऋतुगंध: रामविलास शर्मा, पृ0 27.
2. वही, पृ0 21.

करने के लिए उसे अर्घ्य दे रहे हों । सूर्य प्रकाश का प्रतीक है, जिसके फैलने से अंधकार मिट जाता है । सूर्योदय शर्मा जी के यहाँ कोई सामान्य घटना नहीं है । सूर्योदय उनकी दृष्टि में उस क्रान्ति-चेतना का वहन करता है, जो सारी दुनिया से अन्याय और अनाचार का अंधेरा मिटाने में सक्षम है -

"ज्योतिर्लिंगहै, उगता हुआ आधा सूर्य
उसके इर्द - गिर्द, मँडराते बैंजनी बादल
आक् पुष्पों का जैसे पुनीत अर्घ्य ।"[1]

हवा और बादलों को सम्मिलित रूप से अंकित करने के लिए कवि एक रूपक चुनता है और उसे ऐसा लगने लगता है, मानों तेज हवाएँ भीड़ भरे लोगों की तरह बादलों रूपी जगन्नाथ जी के रथ को खींच रही हों । धीरे-धीरे बादल खिसकते चले जा रहे हैं पर न बादल दृष्टि से ओझल होते - न हवाएँ थमने का नाम लेतीं । सारा दृश्य पुरी की रथ यात्रा की तरह लगने लगता है । उदाहरण के लिए इस चित्र की चार पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"बादल है जगन्नाथ का विशाल रथ
खींच रहा है जिसे जय-जय नाद गुँजाता
हवाओं का भारी हुजूम, बन गया है आकाश
पुरी का, भीड़ भरा राजपथ ।"[2]

शर्मा जी ने बादलों के सर्वाधिक चित्र खींचे हैं । उन्होंने बादलों की विभिन्न मुद्राओं को कलम बन्द किया है । सन्ध्या के समय

---

1. बादल ; रामविलास शर्मा, पृ0 30.
2. वही, पृ0 88.

बादलों का रंग सिंदूरी और हल्का पीताभ हो जाता है । ऐसा लगता है, बादलों के इन टुकड़ों को आकाश में तैरते हुए देखकर मानों किसी अघोरी तांत्रिक ने सिद्धि प्राप्त करने के उद्देश्य से मंत्रोच्चार के बाद नींबुओं के अधकटे टुकड़े हवा में उछाल दिए हों -

"सिन्दूर लगे अधकटे नींबू है साँझ के बादल
जिन्हें फेंक दिया है, आकाश में
मंत्रोच्चार के बाद, किसी अघोरी तांत्रिक ने ।"[1]

श्यामवर्णी बादलों पर सूर्य का बिम्ब ऐसा लगता है, मानों किसी भैंस पर सफेद बगुला सवार हो -

"क्या तुमने, भैंस की पीठ पर सवार
बगुला देखा है ? वह देखो
साँवले बादल पर सवार, सफेद सूर्य ।"[2]

और कभी यही बादल जब मटमैले रंग का हो जाता है, तो ऐसा लगने लगता है, जैसे कोई मैकेनिक दिनभर काम करने के बाद थका-हारा सब्जी मण्डी से लौट रहा है -

लौट रहा है साँस की सब्जी मण्डी से
मटमैले मलेशिया कपड़ों में, बेचारा मैकेनिक बादल ।"[3]

कभी-कभी बादल कवि को ऐसे लगते हैं, जैसे वे बरसात के बँधुआ मजदूर हों जो अपनी कावड़ी में समुद्र से जल ढोकर नदियों

---

1. बादल : रामविलास शर्मा, पृ0 28.
2. वही , पृ0 29
3. वही ; पृ0 38.

और तालाबों को भरने का कार्य कर रहे हों -

"बरसात के बँधुआ मजदूर हैं बादल
जो समुद्र से कावड़ ढो-ढोकर
भर देते हैं लबालब नदियाँ-कुएँ तालाब ।"[1]

और कभी कभी यही बादल ऐसे लगने लगते हैं, मानों वे समुद्र द्वारा अंतरिक्ष में फेंके गए उपग्रह हों जो पृथ्वी का चक्कर काट-काट कर मौसम की सूचनाएँ प्रसारित करने का कार्य कर रहे हों -

"समुद्र द्वारा, अंतरिक्ष में फेंका गया
एक उपग्रह है बादल, जो देता है
मौसम की सूचनाएँ, काटते हुए लगातार पृथ्वी के चक्कर ।"[2]

इन सभी चित्रों से ऐसा लगता है कि कवि के मानस-पटल पर दीन-दुःखी मजदूरों की दयनीय स्थिति नाचती रहती है और वे उसी तरह की उत्प्रेक्षाएँ करते भी हैं । आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों को भी वे इसकी परिधि में समेट लेते हैं ।

निष्कर्ष :

रामविलास शर्मा एक सच्चे प्रगतिशील कवि हैं । उनकी प्रगतिशील चेतना प्रकृति-चित्रों में भी साफ-साफ देखी जा सकती है । प्रकृति की विभिन्न मुद्राओं का अंकन करते समय वे उनमें जीवन घोल देते हैं । प्रकृति का मानवीकरण कर देते हैं । कभी-कभी उसे लोक-संस्कृति से जोड़कर उसकी प्रभविष्णुता बढ़ा देते हैं । कहीं - कहीं प्रकृति का

---

1. बादल : रामविलास शर्मा, पृ0 40.
2. वही , पृ0 90.

प्रतीकात्मक उपयोग भी करते हैं । पर सर्वत्र उनकी दृष्टि मानव-जीवन से सम्पृक्त रहती है । शोषित - त्रसित किसान-मजदूर की छवि उनकी आँखों के सामने घूमती रहती है । इसलिए प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण करते समय वे जो उत्प्रेक्षाएँ करते हैं, उनमें से अधिकांश शोषित वर्ग के जीवन-सन्दर्भों से ली गई होती हैं । उनका प्रकृति-चित्रण समाज निरपेक्ष नहीं रह पाता । मनुष्य-समाज की व्यथा-कथा से वह ओत-प्रोत रहता है । वस्तुत: वे मानव-जीवन के कवि हैं । प्रकृति उसी की अभिव्यक्ति का साधन बनकर आती है । ऐसा बहुत कम होता है कि वे केवल प्रकृति-सौन्दर्य में ही खो जाते हों । इसीलिए उनके प्रकृति-चित्रण में टटकापन रहता है, उसमें आधुनिकताबोध दिखाई पड़ता है और लगता है कि कोई प्रगतिशील कवि है जो प्रकृति को निहार रहा है ।

(ख) नरेन्द्र शर्मा के काव्य में प्रकृति-चित्रण :

प्रकृति मानव की आदिम सहचरी है तथा आदिकाल के प्रथम पुरुष ने जब अपने चक्षुपटल खोले होंगे तब उसको सर्वप्रथम प्रकृति की अनूठी छवि ही दृष्टिगोचर हुई होगी और इस प्रकार मानव का प्रकृति के साथ चिर साहचर्य स्थापित हो गया होगा । प्राचीन से अर्वाचीन कवियों तक ने प्रकृति के सुन्दर, विराट् और भयंकर रूपों का विशद वर्णन किया है । इस प्रकार काव्य में प्रकृति दृश्यों के चित्रण की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है और अधुनातन कवियों तक ने उसे हर्ष के साथ अपनाया है ।

नरेन्द्र जी में प्रकृति के आनुषंगिक अवलोकन की एक लालसा सदैव रहती है । उसके वैभव की गोद में उनकी आँखों को सुख

मिलता है ।' नरेन्द्र शर्मा के काव्य में प्रकृति को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है और उनकी प्राय: सभी काव्य कृतियों में प्रकृति चित्रण के न्यूनाधिक उदाहरण अवश्य मिलते हैं ।

वस्तुत: आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण करते समय प्रकृति का यथा तथ्य चित्रण ही किया जाता है और कवि प्राकृतिक दृश्यों एवं वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण, आकृति एवं आसपास की परिस्थितियों का संश्लिष्ट वर्णन करता है । नरेन्द्र जी ने भी अपनी काव्य-कृतियों में बिम्ब-ग्रहण प्रणाली को ही विशेष रूप से अपनाया है और सन्ध्या, रात्रि, चाँदनी, प्रात: एवं दोपहर में प्रकृति के विविध दृश्यों तथा पेड़, पौधों, पर्वतों, बादलों, ऋतुओं एवं महीनों के आकर्षक चित्र अंकित किए हैं । उदाहरणार्थ - 'पलाशवन' कविता संग्रह की 'बीती रात' कविता में कवि ने प्रात: काल का वर्णन करते हुए कहा है -

"तारे चूने लगे, फूल ज्यों झरते शेफाली से
अस्ताचल पर गिरा चाँद ज्यों पका आम डाली से
झीना हुआ चाँद तारों से नभ का नील दुकूल !
कलियाँ जागीं, चिड़ियाँ जागीं, जाग उठी मलयानिल,
शरमा रही उषा, शरमाती आँखों से आँखें मिल ;
डूबा शुक्र-सुबह का सपना - नभ नयनों में झूल ।"[1]

इसी प्रकार 'मिट्टी और फूल' की 'एक रात' कविता में नरेन्द्र जी चाँदनी रात का चित्र अंकित करते हुए कहते हैं -

"गंगा की धारा से लगते दूर - दूर तक बादल
नीलम के तट, स्निग्ध दूधिया लहरों का वक्षस्थल !

---

1. पलाशवन : नरेन्द्र शर्मा, बीती रात नामक कविता से, पृ0 19।

गोदी में तिर रहा इन्दु सिर धरे इन्द्रधनु-मंडल ।"[1]

प्रकृति के अनेक मनोहारी चित्रों की अवतारणा कवि नरेन्द्र शर्मा के काव्य में हुई है । कवि प्रकृति में एक अत्यन्त स्निग्ध कोमलता का आभास पाता है । उसकी भावुकता, कोमलता एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति प्रकृति को और भी रम्य बना देती है । कवि ने संध्या प्रभात, मध्याह्न के दृश्यों, पर्वतों, मेघों, वृक्षों, ऋतुओं एवं महीनों के भव्य चित्रों को उरेहा है । चाँदनी रात का एक चित्र दृष्टव्य है-

"दूध धुला आकाश दीखता, लिपी फेन से धरती,
सुघर चाँदनी लिपे-पुते में, पाँव न धरती डरती ।"[2]

इसी प्रकार पूर्णिमा के चाँद का सौन्दर्य कवि ने इस प्रकार अंकित किया है -

"जग में तो पूर्ण पुष्प-सी यह पूनों, मन आज खिन्न क्यों ?
आकर सुहासिनि किरनों ने मग में सुहावने अम्बर से
पग-पगर पर तरू-तरू के नीचे, रच दी छाया-प्रकाश-जाली ।
ऊपर तरू-उर में पैठ रहीं सुधि-सी ही आ चंचल किरणें
शीतल शशि-कर छू पुलकित हो, हिलती तरू की डाली-डाली ।"[3]

ऋतु चित्रों में बरसात के चित्र सर्वाधिक खींचे गये हैं । पर्वत प्रदेश में पावस का दृश्य कुछ और ही छटा बिखेरता है । सारा वन प्रान्त तेज

---

1. नरेन्द्र शर्मा का काव्य एक विश्लेषण :डॉ0दुर्गाशंकर मिश्र, पृ0 88.
2. साहित्य पीयूष : डॉ0रामशरण दास गुप्त, पृ0 249.
3. प्रवासी के गीत : नरेन्द्र शर्मा, पृ0 43.

बौछार और हवा के झोंकों में काँप-काँप उठता है। पशु-पक्षी अपने-अपने कोटरों में छिपने के लिए भाग खड़े होते हैं -

"घिर आए उमड़ - घुमड़ बादल
पर्वत-प्रदेश मे ऋतु पावस
ढँक गया व्योम, छिप गया सूर्य
हो गई दिवस में ही मावस
कर साँय-साँय चल पड़ी पवन
काँपा पल में पर्वत का वन
पशु-पक्षी खोज खोह - कोठर
भागे ले धुप - धुप करता मन।"[1]

कवि का दार्शनिक मन ऋतु-संधि का चित्रणकरते समय यथार्थपरक हो उठता है। वह पतझर और उसके बाद आने वाले वसन्त केक्रम को भली-भाँति जानता है। इसीलिए वह जीवन से निराश नहीं होता। पर यह बड़ा विचित्र लगता है कि एक ही समय पर पृथ्वी पतझर की वेदना झेलती है और आकाश वासन्तिक वैभव का सुख भोगता है। कवि की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक है। वह नभ का प्रयोग उच्च वर्ग के लिए और भूतल का उपयोग निम्नवर्ग के लिए करना चाहता है, वस्तुत: वसन्त कभिगरीब के घर नहीं, सुविधा-सम्पन्न लोगों के घरों में ही आता है। गरीब की जिन्दगी तो पतझर की तरह सूखी और नीरस ही बीतती है। समाज की इसी कड़वी सच्चाई को कवि ने प्रकृति - बिम्बों की सहायता से उभारा है -

"पतझर - बसन्त का क्रम अनन्त !
भू पर पतझर, नभ में वसन्त !

---

1. पलाशवन : नरेन्द्र शर्मा, कौसानी नामक कविता से,

सुर तरू पर आये नव पल्लव
भूतल पर झरते अश्रु - बिन्दु ।
नीलाम्बर में छिटका - प्रकाश
भूतल पर नभ का महासिन्धु ।[1]

नरेन्द्र शर्मा की काव्य - कृतियों में प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी कई स्थलों पर सफल प्रयोग हुआ है । उनके इस प्रकार के वर्णन में अधिक रम्यता है, मानस को झकझोर देने वाली वेदना है और मन को प्रसन्न कर देने वाली मस्ती है । उन्होंने उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण करते समय अपनी उक्तियों में नवीनता का समावेश किया है । 'प्रभातफेरी' में एक स्थल पर उन्होंने प्रकृति में निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हुए कहा है -

"ऊषा संध्या मेरी छाया, मुझसे लाली लेते पाटल
मेरे गायन, कल-कूजन से, चंचल चिड़ियों की चहल-पहल
मुझसे ले मीठी मुस्कानें, खिलती हैं डालों में कलियाँ
मुझसे मस्ती ले उठती जल में लहरों की रंगरलियाँ ।"[2]

इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है, मानों प्रकृति उद्दीपन का कार्य न कर रही हों ; बल्कि स्वयं कवि प्रकृति को उद्दीप्त कर अपनी भावनाओं के अनुरूप उसे स्वरूप प्रदान कर रहा हो ।

वस्तुत: उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन करते समय कवियों ने प्राय: संयोगावस्था एवं विरहावस्था दोनों का ही वर्णन किया है । नरेन्द्र जी की कृतियों में भी दोनों प्रकार के चित्र मिलते हैं । नायक-नायिका की संयोगावस्था में प्रकृति उनका उल्लास द्विगुणित

---

1. उत्तरजय : नरेन्द्र शर्मा, नियति चक्र नामक कविता से, पृ0 13.
2. नरेन्द्र शर्मा का काव्य एक विश्लेषण : डॉ0दुर्गाशंकर मिश्र, पृ0 89.

प्रकृति उनका उल्लास द्विगुणित कर देती है और नायक खुली हवा और खिली धूप देखकर अपनी नायिका से कहता है -

"खुली हवा है, खिली धूप है, दुनिया कितनी सुन्दर रानी !
आओ सारस की जोड़ी से निकल चलें हम दोनों प्राणी ! "[1]

मनुष्य का मन बड़ा विचित्र है । उसे जो वस्तुएँ संयोगावस्था में सुखदायिनी प्रतीत होती हैं, वे ही वियोगावस्था में पीड़ा वर्द्धिनी जान पड़ती है और नरेन्द्र जी की काव्यकृति "प्रवासी के गीत" में तो सर्वत्र ही इसी प्रकार की प्रकृति का चित्रण हुआ है । अतएव मिलन की मधुर घड़ियों में जो प्रकृति आनन्ददायक जान पड़ती थी, वही विरह में क्रूर बन जाती है और जिस संध्या में नायक एवं नायिका मिलन के समय फूले नहीं समाते थे, वही संध्या अब विरह में दु:ख और निराशा लेकर आती है -

"गृहणियों के हेतु ले धनधान्य आती
हो नगर की ओर जब गोधूलि बेला
देख पाओ यदि कदाचित क्षितिज तट पर
कहीं मिटता धूलि का बादल अकेला
सुधि न लाना इस प्रवासी चिर पथिक की
व्यर्थ भर लाना न लोचन ।"[2]

'धीरे बह री प्रात: समीर' एक 'विरह-गीत' है । कवि प्रभातकालीन समीर से धीरे-धीरे चलने का अनुरोध करता है क्योंकि विरही ने प्रिया की स्मृति में रो-रोकर रात व्यतीत की थी । वह

---

1. पलाशवन ~~प्रवासी के गीत~~ : नरेन्द्र शर्मा, पृ० 11 (खुली हवा नामक कविता से)
2. प्रवासी के गीत : नरेन्द्र शर्मा, पृ० 19.

अभी सोया है, कहीं ऐसा न हो कि उसके चलने से वह जग जाये और उसके हृदय की ज्वाला उसके झोंकों से जल उठे -

"धीरे बह री, प्रात: समीर ! बुझती चिनगारी जल न उठे !
रो-रोकर रात बिता विरही
सोया है क्षण भर, धीरे चल
पंखा झल-झल ज्यों जगा रही
प्राची का उर-अँगार घायल ?
शीतल समीर उसको भाए जिसका घायल उर जल न उठे ।"[1]

'मिट्टी और फूल' की एक कविता 'अपने से' में कवि ने भादों की रात को उस काली सर्पिणी के समान माना है जिसने सूर्य को ही निगल लिया है और आकाश में छिटके कुछ तारे इस रात्रि रूपी नागिन के मुख के झाग जैसे प्रतीत होते हैं -

"निगल गई पच्छिम में रवि को नागिन सी यह साथिन तेरी
उगल रही फुफकार मारकर भर भादों की रैन अँधेरी
छिटक गए हैं झाग, दीखते जो तारे दो चार रे ।"[2]

मनोकामिनी नामक कथा-काव्य के 'वासरमास' नामक अध्याय में बारहमासा प्रणाली को अपनाकर ऋतुओं के सुन्दर चित्र अंकित किए गए हैं । उनके इस ऋतु वर्णन में पर्याप्त नवीनता के दर्शन होते हैं-

"गया यों मधुमास, आया मधुर माधवमास
और मिठबोली बनी सौरभ-भरी वातास ।
शिशिर में थी जो जरा की शुष्क ठंडी साँस

---

1. प्रवासी के गीत : नरेन्द्र शर्मा, पृ0 48.
2. नरेन्द्र शर्मा का काव्य एक विश्लेषण :डॉ0दुर्गाशंकर मिश्र,पृ0 90

बनी मुग्धा कुमारी की अब मधुर नि:श्वास ।
बह रहा वातास – गिरि वन मेंमधुर वातास
पी रहे तरू सहस साँसों में प्रिया की श्वास ।"[1]

नरेन्द्र शर्मा जी ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की सहायता से प्रकृति के मनोहर चित्र अंकित किए हैं, पर उनके इस वर्णन में नवीनता है क्योंकि उन्होंने प्राचीन कवियों की भाँति परम्परा-युक्त उपमानों को ही ग्रहण नहीं किया बल्कि उपमानों के क्षेत्र में भी वृद्धि की है । 'सुवर्णा' कथाकाव्य से निम्न अवतरण दर्शनीय है –

"तिमिर वंदिनी स्वर्ण उषा-सी बंधन में अभिराम
शून्य देवता के चरणों में अर्पित नयन अकाम । ।"

और भी

नवें दिन की रात में भी भीष्म सूर्यप्रभात के ज्यों
खड़े सम्मुख पौत्र पांडव मेघ पश्चाताप के ज्यों
खड़े थे श्रीकृष्ण, मुख मुस्कान थी सौदामिनी-सी
भीष्म मुख मार्तण्ड पर माया बनी जो यामिनी सी ।"[2]

कवि कहता है कि नवें दिन की रात्रि में भीष्म, प्रभात-कालीन सूर्य के समान दिखाई दे रहे थे और उनके पौत्र पांडव मेघ के समान दिखाई दे रहे थे । श्रीकृष्ण जी के मनोहर मुख पर बिजली के समान मुस्कान थी और वही मुस्कान भीष्म के सूर्य मुख पर रात्रि की काली छाया के समान दिखाई दे रही थी ।

प्रात: अधिकांश कवियों ने प्रकृति के कोमल रूप का ही

---

1. मनोकामिनी : नरेन्द्र शर्मा, वासरमास नामक अध्याय से, पृ0 55
2. नरेन्द्र शर्मा का काव्य एक विश्लेषण : डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र, पृ0 91.

अलंकृत वर्णन किया है, परन्तु नरेन्द्र जी ने अपनी काव्य कृतियों में कहीं-कहीं प्रकृति के कठोर रूप का भी आलंकारिक चित्रण किया है । यहाँ 'पलाशवन' की कविता 'ज्येष्ठ का मध्यान्ह' की निम्नलिखित पंक्तियाँ दर्शनीय हैं -

"ज्यों घेर सकल संसार, कुंडली मार
पड़ा हो अहि विशाल
आक्रान्त धरा की छाती पर
गुमसुम बैठा मध्यान्ह - काल ।
मध्यान्ह काल ज्यों अहि विशाल
केन्द्र में सूर्य
शोभित दिनमणि से गर्वोन्नत ज्यों भीमभाल ।
कर गरल पान सब विश्व शान्त
तृण तरू न कहीं भय से हिलते
जीवनी शक्ति जैसे परास्त हो महामृत्यु से, पड़ी क्लान्त ।
अधबुझी चिताओं के मसान के ही समान सर्वत्र शान्ति
डिगती न तनिक तिलभर भी जो ज्यों भीषण भूधर दुर्निवार ।"[1]

नरेन्द्र जी प्रकृति में मानव रूप, मानव गुण, मानव क्रिया-कलापों एवं भावना का आरोप कर प्रकृति को सचेतन रूप में भी देखते हैं । अतएव उनकी कृतियों में प्रकृति सजीव - सी जान पड़ती है और मानवीकरण के आकर्षक चित्र भी दृष्टिगोचर होते हैं । उदाहरणार्थ 'बहुत रात गए' कविता संग्रह में संकलित 'दिशा निशा' नामक कविता की निम्न पंक्तियों में प्रातः काल का मानवीकरण किया गया है-

"किरण बुहारी, उठा अँधेरा, पोंछा झाड़ दिये तारे
धूम बिछाती हुई धरा पर, गई दिवा द्वारे-द्वारे

---

1. नरेन्द्र शर्मा, ज्येष्ठ का मध्यान्ह नामक कविता से, पृ0-60

उठो सुहागिन नार, बुहारो घर, आँगन, मोरवा बारी
गाती रही दिवा, निद्रा से नाता तोड़ो संसारी ।"[1]

कवि नरेन्द्र के प्रकृति चित्रण की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता प्राकृतिक परिवेश में लोकजीवन की झाँकी का प्रस्तुतीकरण है और यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो नरेन्द्र जी की कई कृतियों में ग्राम-जीवन के यथार्थ एवं मनोरम चित्र दृष्टिगोचर होते हैं । उदाहरणार्थ - 'मिट्टी और फूल' की कविता 'गाँव की धरती' का यह अंश दर्शनीय है -

"सिर धरे कलेऊ की रोटी लेकर कर में मट्ठा की मटकी
घर से जंगल की ओर चली होगी बटिया पर पग धरती
कर काम खेत में स्वस्थ हुई होगी तलाब में उतर नहा
दे प्यार बैल को, फेर हाथ, कर प्यार, बनी माता धरती ।[2]

नरेन्द्र शर्मा की काव्य कृतियों में गाँव की जीवन-दायिनी मिट्टी के प्रेम भी प्रकट किया गया है और मिट्टी की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए भूमिपूजा का महत्व सिद्ध किया गया,-

"मुझ से बनते हैं महल और ये खड़ी मुझी पर मीनारें
मैं करवट लेती - ढह जाते हैं दुर्ग चीन की दीवारें
हाँ, बुद्धि जीव आदर्श मुग्ध मानव भी मेरी ही कृति है
पैगम्बर और सिकन्दर का मुझ से अथ है इति है ।"[3]

प्रकृति का श्रृंगारपरक रूप चित्रित करते समय कवि प्राकृतिक उपादानों को सजीव नायक-नायिका बनाकर प्रस्तुत करता है।

---

1. नरेन्द्र शर्मा का काव्य : एक विश्लेषण, डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र, पृ0 94.
2. वही, पृ0 95
3. वही, पृ

जैसे निम्नलिखित चित्र में जहाँ आम के सैकड़ों पत्ते माधवी का चुबंन कर रहे थे और माधवी अपने प्रिय के पाश में शिथिल सी हो गई थी -

"पी रहे दोनों परस्पर श्वास - सुरभि - झकोर
बँध गए भुज-पाश में जैसे समय के छोर ।
चूमते थे आम के सौ पात माधवी को
शिथिल था प्रिय-पाश में ज्यों माधवी का गात ।"[1]

इसी प्रकार निम्नांकित चित्र में छाया के थकने, तरूओं के सोने और वन - प्रान्त के अलसाने का दृश्य मानवीय क्रिया-कलापों के अनुरूप चित्रित किया गया है -

"दिन भर घूम-घूम थककर
लम्बी हो लेट गई छाया
तरू खड़े सो रहे और
वन-प्रांतर सारा अलसाया ।"[2]

प्रकृति-सौन्दर्य का अंकन करने के लिए कवि सामाजिक जीवन से भी उपमान ग्रहण करता है । जैसे - नदियों के लिए मैली धोती का सा फैलाव, अथवा चाँदी की गलियाँ आदि । उदाहरण के लिए चार पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"फैली थीं मैली धोतीं-सी
वन में जो बरसाती नदियाँ
लगतीं अब मरकत-महलों के
बीच छिकीं चाँदी की गलियाँ ।"[3]

---

1. मनोकामिनी : नरेन्द्र शर्मा, पृ० 6. 2. वही, पृ० 35
3. पलाशवन : नरेन्द्र शर्मा, पृ० 11.

प्रात:काल सूर्योदय का दृश्य अत्यन्त मनभावन होता है। क्रमश: प्राची दिशा में रंग परिवर्तन होता जाता है। जब पौ फटती है, तब हल्का रक्ताभ वर्ण होता है, फिर धीरे-धीरे वह पीताभ होता जाता है और अन्तत: शुभ्र वर्ण में बदलकर प्रकाश-किरणें सारी धरती से अंधकार की छाया को मिटा देती हैं -

"हेम -मन्दिर सदृश उदयाचल रहा दिख दूर
नीलमणि के खंभ, दिखता कहीं - हिम कर्पूर।
किरणपंखी - सा खुला नभ में कनक - आलोक।
नीलगिरि नीचे, खिला ऊपर सुवर्ण अशोक।
किरण किसकी परस से जिसके मिटा तम-दोष ?"[1]

संध्या के बीतने पर रात्रि का प्रहर प्रारम्भ होता है। ऐसा लगता है, जैसे चन्द्रमा अंगारों के गुम्बज की तरह धरती से आकाश की ओर उठता जा रहा हो। पीपल के पत्तों पर चमकती हुई संध्या की अन्तिम कांति धीरे-धीरे मिटती जाती है। प्रकृति का यह गत्यात्मक बिम्ब बहुत जीवन्त लगता है -

"वह अंगारों के गुम्बद-सा
उठ रहा चाँद भूतल पर से
संध्या की अन्तिम कान्ति-किरन
उड़ गई चपल पीपल पर से।"[2]

---

1. मनोकामिनी : नरेन्द्र शर्मा, पृ० 19.

2. वही, पृ० 35.

सामान्यतया पृष्ठभूमि या वातावरण सृष्टि के रूप में प्रकृति का वर्णन कवि की अपनी विशिष्टता से युक्त होता है और प्रकृति का वह चित्रण जो हमारी भावनाओं को संकेत प्रदान करता है तथा हमें जिसमें सजीव वातावरण मिलता है, अत्यन्त सुन्दर होता है । यह पृष्ठ-भूमि वाली प्रकृति हमें यह अनुभव नहीं होने देती है कि हम अकेले हैं । वह हममें घुलीमिली रहती है तथा ऐसा जान पड़ता है कि प्रकृति का कण-कण हमारे समान होकर हमारा साथ दे रहा है । कवि नरेन्द्र का ध्यान पृष्ठभूमि या वातावरण सृष्टि के रूप में भी प्रकृति चित्रण की ओर गया है और उनकी काव्य कृतियों में इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन के अनेक सुन्दर उदा-हरण मिलते हैं । यथा -'प्यासा निर्झर' की 'निशा अँधियारी' कविता इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है ।

निस्तब्ध एवं अँधेरी निशा में जबकि सरयू की धारा मौन होकर बहरहीथी, राजा दशरथ द्वारा अँधेरे में श्रवणकुमार की अनजाने में हत्या हो गई और वृद्ध दम्पति द्वारा शापित दशरथ को उस अँधेरी रात के अंतिम प्रहर में सम्पूर्ण संसार बुझे हुए मरघट तथा आकाश रक्त स्नात कापालिक के समान प्रतीत होने लगा -

"बुझा हुआ मरघट अवनीतल, जगमग कापालिक अम्बर
भोर नहीं, अभिशाप्त-मनुज मन गगन दारूण दिग्दाह ।"[1]

इसी प्रकार पूर्व दिशा में फैल रही अरूणिमा अब शापित एवं आत्मग्लानि से पीड़ित राजा दशरथ की दारूण दिग्दाह के सदृश प्रतीत

---

1. नरेन्द्र शर्मा का काव्य एक विश्लेषण : डॉ0दुर्गाशंकर, मिश्र, पृ0 92.

हुई और जैसी निस्तब्धता एवं अँधेरी रात्रि में श्रवण का वध हुआ था, वैसे ही कालरात्रि में राजा दशरथ ने पुत्र वियोग से प्राण त्यागे। अतएव दो पृष्ठों की इस छोटी सी कविता "निशा अँधियारी" में अँधेरी रात का सम्पूर्ण वातावरण पीड़ा से घनीभूत जान पड़ता है।

नरेन्द्र जी की स्फुट कविताओं में भी वातावरण या पृष्ठभूमि सृष्टि के रूप में प्रकृति का आकर्षक चित्रण किया गया है, यहाँ 'पलाशवन' की 'चाँदनी' कविता दर्शनीय है -

"चाँदनी आज कितनी सुन्दर
सम दृष्टि हुई छवि की सब पर
जिसने जग के दृग पलकों में सुख का सपना साकार किया ?
राकेश गगन के आँगन में
मेरे शशि तुम मेरे मन में
भावों से भर भव का अभाव किसने संसार सँवार दिया ?"[1]

सामान्यतया नरेन्द्र जी ने प्रकृति चित्रण की उपदेशात्मक प्रणाली की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया, परन्तु उनकी काव्य कृतियों में कहीं-कहीं प्रकृति के प्रति रहस्यात्मक भावना के दर्शन अवश्य होते हैं। उदाहरणार्थ : 'अग्निशस्य' की एक कविता 'सान्ध्यबेला' में कवि ने अज्ञात-सत्ता की अनुभूति का वर्णन करते हुए कहा भी है -

"सिन्धु तल पर खेलते, जैसे अतल के कनक सपने
लहरियों पर सान्ध्य चितवन कनक कन बन लगी कँपने
कामतनया कनक तन नारी सदृश यह सांध्यबेला
हँस रहा हृदयस्थ, कोई शुक्रतारा - सा अकेला।"[2]

---

1. पलाशवन : नरेन्द्र शर्मा, चाँदनी नामक कविता से, पृ० 7
2. नरेन्द्र शर्मा का काव्य एक विश्लेषण : डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र, पृ० 93.

नरेन्द्र जी के 'कदलीवन' में संकलित कविताओं में तो मुख्यतया प्रकृति-चित्रण में आध्यात्मिकता या रहस्यात्मकता के ही दर्शन होते हैं और कवि ने 'रूपकताल, विलम्बित लय में, कोई अम्बर में गाता है, 'मनहर मंगल गान' नामक उक्ति द्वारा प्रकृति के कण-कण में किसी चेतन सत्ता का आभास होना स्वीकारा है । साथ ही प्रश्न, ताड़ का जोड़ा, पुकार एवं तरु विशाल आदि कविताओं में तो स्पष्टतया प्रकृति में व्याप्त अव्यक्त सत्ता के ही संकेत प्राप्त होते हैं । एकउदाहरण दृष्टव्य है -

"हर तरू विशाल लगता है जैसे गोपुर हो परमेश्वर का ।
लघु बीज और पादप विशाल, हरियाला जल, पल्लवित ज्वाल
मृत्तिका-मूल, तन आल व्याल, वह शाखाओं का शिखर जाल
हर पत्र-पत्र में दिखता है नवरूप दिव्य सर्वेश्वर का ।"[1]

नरेन्द्र शर्मा का प्रतीक विधान भी उत्कृष्ट है और उन्होंने प्रतीक रूप में भी प्रकृति का चित्रण किया है तथा उनकी कृतियों में प्रतीकात्मक दृष्टि से प्रकृति का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है । उदाहरणार्थ, 'प्रभातफेरी' की 'चमेली' नामक कविता में चमेली के माध्यम से किसी नायिका का वर्णन करते हुए कहा गया है -

"कहीं खिली है विजन विपिन में, चंचल चारू चमेली
चन्द्रकला से है उज्ज्वलतर, विश्व सत्य से शुचितर, सुन्दर
सरल-स्नेह-साकार मोहिनी मेरी मधुर सहेली
x x x
गंध अंध हो आया मधुकर क्या लोगे अलि, बोली सुन्दर
स्नेह हास सी हँसी रसीली यौवन भरी नवेली ।"[2]

---

1. नरेन्द्र शर्मा का काव्य एक विश्लेषण: डॉ0 दुर्गाशंकर मिश्र, पृ0 93.
2. वही.

नरेन्द्र जी की कृतियों में मानव की प्रेम, वासना, श्रृंगार दुःख, असन्तोष, वेदना, विद्रोह, क्रान्ति एवं देशभक्ति आदि भावनाओं का प्रतीकात्मक पद्धति में चित्रण करते समय प्रकृति का सहयोग लिया गया है। 'पलाशवन' की 'पलाश' नामक कविता में प्रतीकों का अत्यन्त सार्थक प्रयोग हुआ है क्योंकि लाल रंग के पलाश की छटा रूस की लाल क्रान्ति की स्मृति कराती है -

"पतझर की सूखी शाखों में लग गई आग, शोले लहके
चिनगी सी कलियाँ खिलीं और हर फुनगी लाल फूल दहके
सूखी थी नसें, बहा उनमें फिर बूँद-बूँद कर नया खून
भर गया उजाला डालों में खिल उठे नए जीवन प्रसून
अब हुई सुबह, चहकी कलगी, दमके मखमली लाल शोले
फूले टेसू-बस इतना ही समझे पर देहाती भोले
लो डाल-डाल से उठी लपट ! लो डाल-डाल फूले पलाश
यह है वसन्त की आग, लगा दे आग जिसे छू ले पलाश
लग गई आग ; वन में पलाश ; नभ में पलाश, भू पर पलाश
लो, चली फाग; हो गई हवा भी रंगभरी छूकर पलाश
आते यों, आएँगे फिरभी वन में मधुऋतु पतझार कई
मरकत प्रवाल की छाया में होगी सब दिन गुंजार नई ।"[1]

इन पंक्तियोंमें पलाश के सौन्दर्य का अंकन यद्यपि बसन्त के आगमन के सन्दर्भ में किया गया है, तो भी उसमें एक ऐसी गति है, जो कवि की क्रान्ति-चेतना को मुखरित करती है । मानव - संवेदना के इस कवि ने सामाजिक - क्रान्ति की आवश्यकता पर बल दिया है । जन-जागृति का स्वर मुखरित किया है और अपनी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है।

---

1. पलाशवन : श्री नरेन्द्र शर्मा, पलाश नामक कविता से, पृ0-1.

निष्कर्ष :

नरेन्द्र शर्मा ने प्रकृति-सौन्दर्य से मुग्ध होकर उसकी विविध मुद्राओं को अपनी कविता में अंकित किया है। प्रकृति के कोमल रूपों के प्रति उनका आकर्षण अधिक रहा है, फिरभी उसके परूष रूप की उन्होंने अनदेखी नहीं की। प्रकृति शर्मा जी के यहाँ सजीव रूप में उपस्थित हुई है। वह श्रृंगार का विषय भी बनी है और उसने क्रान्ति का बिगुल भी बजाया है। प्रकृति का सम्बन्ध जीवन-संघर्ष के साथ जोड़कर कवि ने अपनी प्रगतिशील चेतना का परिचय दिया है। वे प्रकृति को आलम्बन, उद्दीपन प्रतीक, अलंकरण, पृष्ठभूमि आदि सभी रूपों में चित्रित करते हैं, उनका हर चित्रण स्वस्थ मानवीय रागों से ओत-प्रोत रहता है। उनके चित्रण में उल्लास है, आशा है, और प्रगतिशील सौन्दर्य बोध है।

(ग) शैलेन्द्र के गीतों में प्रकृति-चित्रण :

प्रकृति माँ है, प्रेयसी है, सहचरी है, नारी है, वह पुरूष की प्राण है। ईश्वर या परमसत्ता की अपनी छाया और माया है। प्रकृति और मानव के सम्बन्ध की प्राचीनता इस जड़ और चेतनमय जगत् की उत्पत्ति का इतिहास है।

बालक सहज ही मिट्टी, पानी, तितली और फूलों से प्यार करने लगता है, चन्द्रमा और सूर्य को विस्मित आँखों से देखता है। प्रकृति से ही उसका मस्तिष्क ज्ञान-विज्ञान ग्रहण करता है।

दार्शनिक दृष्टि से भी प्रकृति और मानव का सम्बन्ध स्थायी है, चिरन्तन है। प्रकृति में सत्य, शिव एवं सुन्दर तीनों निहित हैं।

शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक - तीनों ही दृष्टियों से प्रकृति मानव का पोषण कर उसे विकसित करती है ।

शैलेन्द्र जी मूलत: फिल्मी गीतकार हैं ; किन्तु उनके गीतों में जो साहित्यिक सौन्दर्य है,उसे देखते हुए उन्हें हिन्दी की प्रगतिशील आन्दोलन से जुड़ रहे हैं ; समाज के उपेक्षित और शोषित जन-समूह के पक्षधर रहे हैं और मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि से अनुप्राणित रचनाएँ लिखते रहे हैं । उनके प्रकृति - परक गीतों में भी उनकी प्रगतिशील चेतना स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है ।

शैलेन्द्र जी के गीतों में प्रकृति के आलम्बन,उद्दीपन, उपमान, मानवीकरण एवं प्रतीक रूप ही प्राय: हमें मिलते हैं । उनके चित्रपट काव्य में षड्-ऋतु में पावस, शरद एवं बसन्त का सर्वाधिक चित्रण हुआ है । ग्रामीण जन-जीवन के मन पर सावन के आवन की प्रतिक्रिया एवं हर्षोल्लास का सजीव चित्रण शैलेन्द्र जी ने अपनी लेखनी से अंकित किया है ।

"हरियाला सावन ढोल बजाता आया
धिन तक-तक मन के मोर नचाता आया ।"[1]

सावन एक संगीतकार की तरह ढोल बजाता हुआ आता है, जिसकी थाप पर प्राणियों का मन - मयूर थिरक उठता है । प्रकृति का यह जीवन्त रूप लोक-जीवन की पृष्ठभूमि में अंकित किया गया है । यह गीत "दो बीघा जमीन" चित्र में पूरबी लोकधुन पर आधारित है,जो जनमानस के उत्साह एवं आनन्द को मुखरित कर उसे मूर्त रूप प्रदान करता है।

---

1. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ० रवीन्द्र भारती, पृ० 181

शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक - तीनों ही दृष्टियों से प्रकृति मानव का पोषण कर उसे विकसित करती है ।

शैलेन्द्र जी मूलत: फिल्मी गीतकार हैं ; किन्तु उनके गीतों में जो साहित्यिक सौन्दर्य है,उसे देखते हुए उनके हिन्दी की प्रगतिशील आन्दोलन से जुड़ रहे हैं ; समाज के उपेक्षित और शोषित जन-समूह के पक्षधर रहे हैं और मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि से अनुप्राणित रचनाएँ लिखते रहे हैं । उनके प्रकृति - परक गीतों में भी उनकी प्रगतिशील चेतना स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है ।

शैलेन्द्र जी के गीतों में प्रकृति के आलम्बन,उद्दीपन, उपमान, मानवीकरण एवं प्रतीक रूप ही प्राय: हमें मिलते हैं । उनके चित्रपट काव्य में षड्-ऋतु में पावस, शरद एवं बसन्त का सर्वाधिक चित्रण हुआ है । ग्रामीण जन-जीवन के मन पर सावन के आवन की प्रतिक्रिया एवं हर्षोल्लास का सजीव चित्रण शैलेन्द्र जी ने अपनी लेखनी से अंकित किया है ।

"हरियाला सावन ढोल बजाता आया
धिन तक-तक मन के मोर नचाता आया ।"[1]

सावन एक संगीतकार की तरह ढोल बजाता हुआ आता है, जिसकी थाप पर प्राणियों का मन - मयूर थिरक उठता है । प्रकृति का यह जीवन्त रूप लोक-जीवन की पृष्ठभूमि में अंकित किया गया है । यह गीत "दो बीघा जमीन" चित्र में पूरबी लोकधुन पर आधारित है,जो जनमानस के उत्साह एवं आनन्द को मुखरित कर उसे मूर्त रूप प्रदान करता है।

---

1. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ० रवीन्द्र भारती, पृ० 18।

आकाश में बादलों की गर्जना संगीतमय वातावरण की सृष्टि कर देती है । मन - मयूर नाच उठता है । वर्षा की फुहारों में वह गुदगुदी होती है कि तन-मन राग-रंग में नहा जाते हैं । प्रकृति यहाँ उद्दीपन का कार्य करती है -

"बागड़ बम-बम बाजे डमरू
नाच रे मयूर झुन - झुना के घुँघरू
आसमाँ में आज देखो सात रंग छाये
बादल गरजे मेघा बरसे चहुँ ओर सावन लहराये
भँवरा झूमें फूल चूमें - बाँधे प्रीत की डोर"[1]

चातक, मयूर, पपीहा, कोयल, दादुर क्या सभी प्राणिमात्र टकटकी लगाकर ग्रीष्म-काल से ही बादलों की बाट जोहते हैं । बरखा का प्रथम दिन भयंकर ग्रीष्म और उमस के बाद मन - प्राणों को शीतलता प्रदान करता है ।

हिन्दी चलचित्र काव्य में शरद-सुषमा अथवा शरद ऋतु का चित्रण शरद ऋतु के सर्वमान्य प्रतीकों यथा - चन्द्रमा, चाँदनी, नीलगगन, रात्रि, शरद पूर्णिमा आदि के माध्यम से किया गया है । शब्द - सम्राट शैलेन्द्र के शब्दों में एक वियोग का दृश्य प्रस्तुत है, जहाँ प्रकृति उद्दीपन की भूमिका निभा रही है -

"सुना तू मन की बीन पर ये आँसुओं की रागिनी
कि जल उठा है चन्द्रमा सुलग रही है चाँदनी ।"[2]

---

1. चित्रपट काव्य : रवीन्द्र भारती, पृ0 182.
2. वही, पृ0 184.

यहाँ एक विरहिन की मनोदशा का चित्रण है, चन्द्रमा वियोग को उद्दीप्त कर हृदय को विरहाग्नि से जला रहा है। इसी प्रकार शरदकालीन वैभव का एक अन्य चित्र इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"वो चाँद खिला, वो तारे हँसे, ये रात अजब मतवारी है
समझने वाले समझ गये, ना समझे वो अनाड़ी है।
चाँदी की चमकती राहें, वो देखो झूम-झूम के गायें
किरणों ने पसारी बाहें, कि अरमा नाच-नाच लहरायें
चन्दा की चाल मस्तानी, है पागल देखो रात की रानी
किरनों ने चुनरिया तानी, बहारें किस पे आज दीवानी,
तारों का जाल ले - ले दिल निकाल
पूछो न हाल मेरे दिल का..... चाँद खिला।"[1]

यहाँ चाँदनी रात का आलम्बन रूप में मादक चित्रण है। ऐसी शुभ्र चन्द्रिका और मदमस्त प्रकृति का संकेत भी जो न समझ पाये, वह तो अनाड़ी ही होगा। प्रकृति तो प्राणीमात्र को प्यारी लगती है। वह सबसे प्रेमकर जड़ और चेतन को आनन्द प्रदान करती है। चाँदनी की पार्श्वभूमि में कवि ने मन की मादकता और आल्हाद का भी चित्रण किया है। वर्णन आलंकारिक होने के साथ-साथ हृदयग्राही भी है। उद्दीपन रूप में भी चाँदनी रात का जनमानस पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अमूर्त के लिए मूर्त उपमायें दी गई हैं।

कितनी मर्यादा, कितना स्नेह, शील और अंतरंग-प्रणय की निर्भीकता कवि के कथन में है और अब चन्द्रमा को गवाह बनाने वाले

---

1. शंकर शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ०रवीन्द्र भारती, पृ० 199.

शैलेन्द्र का इस जगत में कहीं पता नहीं है, अब तो शेष है शैलेन्द्र का चलचित्र काव्य और उसके गीत सिर्फ यादें ···· यादें····· यादें । बादल और चाँद (शरद और वर्षा) उसकी प्रिय ऋतुएँ थीं, जिनका उन्होंने भरपूर चित्रण किया । हर बार नई सूझ, नई कल्पना एवं नई बात कही, किसी भी कल्पना को उन्होंने दोहराया नहीं है । यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है, जो उन्हें अन्य गीतकारों से विशिष्टता प्रदान करती है ।

शैलेन्द्र जी का उद्‌देश्य मात्र प्रकृति-चित्रण नहीं रहा है, फिरभी उन्होंने अपने गीतों में प्रकृति को सम्मानजनक स्थान दिया है । पृष्ठभूमि के रूप में और अन्य मान्य रूपों में मधु-मास का वर्णन लगभग सभी गीतकारों के काव्य में पर्याप्त रूप से मिलता है । ऐसा कौन कवि हो सकता है, जिसके हृदय पर प्रकृति की, ऋतुओं की या परिवर्तन की छाप नहीं पड़ी हो । वर्षा में सावन के बसन्त में चैत या फाल्गुन के गुण गाये जाते हैं । काव्य -ऋतुओं में पावस, शरद और बसन्त ही प्रमुख है । प्रस्तुत है कवि 'शैलेन्द्र' का एक बसन्त गीत -

> "केतकी, गुलाब, जूही, चम्पक बन फूले
> ऋतु बसन्त अपना कंत, गोरी गरवा लगाये
> अंगना में बैठ आज पी के संग झूले
> चित चुराय, हँसत जाय ।"[1]

आलम्बन रूप में बसन्त - बहार का चित्रण हैं, ऋतुराज बसन्त के आगमन के उपलब्ध में केतकी, गुलाब, जूही आदि वन में खिल गए हैं, आलम्बन के साथ प्रकृति का युगल प्रेमियों के माध्यम से उद्‌दीपन रूप भी

---

1. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ०रवीन्द्र भारती, पृ० 203.

प्रस्तुत है, जो हृदयग्राही है। ऋतुराज का ही दूसरा चित्र देखिए-

"रंग-रंगीली पगिया बाँधे आये हैं ऋतुराजा
डालियों में कलियाँ बजाये तालियाँ
नाचत झूमत आया मेरे मन मदन छाया
कुहू-कुहू रहत कोयलिया, छुप-छुप बजाये बँसिया
सब सखि लाल गुलाल उड़ाओ
झाँझी मँजीरे, मृदंग बजाओ
पीली पगिया केसरिया बाग पहने है ऋतुराजा।"[1]

इन पंक्तियों में ऋतुराजा वसन्त के आगमन का वर्णन है। बसन्त पीले रंग की पगड़ी बाँधकर और केसरिया रंग का वस्त्र पहनकर आ गया है जिसे देखकर वन में कोयल बोलने लगी है और वृक्षों की डालियों में खिली हुई कलियाँ तालियाँ बजा-बजाकर खुश हो रही हैं। सारा चित्रण लोकसांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अंकित किया गया है। एक अन्य चित्र भी इसी प्रकार का है -

"बागों में बहारों में इठलाता, गाता आया कोई
नाजुक-नाजुक कलियों के दिल को धड़काता आया कोई
फूलों के हार, लेके बहार
करने को कोई मेरे सोलह सिंगार।"[2]

शैलेन्द्र के प्रकृति-परक गीतों में लोकजीवन की सांस्कृतिक झाँकी और लोकधुन पर आधारित उनके गीतों की लय-विशेष रूप से उल्लेखनीय बिन्दु हैं। वे लोक गीतकार थे। लोकजीवन से उनका गहरा सम्बन्ध था। लोक-जीवन के सुख-दु:ख उन्हें संवेदित करते थे, इसलिए लोक-निरपेक्ष गीतों

---

1. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ०रवीन्द्र भारती, पृ० 213.
2. शंकर शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य: डॉ०रवीन्द्र भारती, पृ० 220

की कल्पना कम से कम शैलेन्द्र जी के सम्बन्ध में तो की ही नहीं जा सकती ।

शैलेन्द्र जी स्वयं हिन्दू समाज की नासूर समस्याओं को अत्यन्त दारूण एवं करूण समझकर नई हवाओं, विचारों एवं आदर्शों का प्रतिनिधित्व अपने गीतों के माध्यम से करते हैं । उनके काव्य में हमें प्रगतिशीलता के दर्शन होते हैं । उनके कवि ने सदैव रूढ़ियों, पुरातन परम्पराओं एवं सड़े गले अन्ध विश्वासों के विरूद्ध विद्रोह का स्वर बुलन्द किया है ।

उन्होंने जहाँ सामाजिक वैषम्य और तद्जन्य विसंगतियों को वाणी दी है, वहाँ प्रगतिशीलता तो उनके काव्य का आधार स्तंभ ही है-

"तू जिन्दा है तो जिन्दगी की जीत पर यकीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर ।"[1]

ये उनके गैर फिल्मी गीत की पंक्तियाँ हैं जो उन्होंने फिल्मी जगत में आने से पूर्व रेल मजदूरों के आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए लिखीं थीं । इनमें जिन्दगी जीने की लालसा और धरती के प्रति उनका अटूट स्नेह स्पष्ट दिखाई देता है ।

शैलेन्द्र एक अच्छे और सच्चे कवि ही नहीं, सही माने में सच्चे इंसान थे । उन्होंने सदैव आत्मा के गीत गाये ; किन्तु उन्होंने स्वयं को इस संसार में एक मुसाफिर ही समझा -

"वहाँ कौन है तेरा मुसाफिर जायेगा कहाँ ।"[2]

उनके काव्य में अद्भुत रस के कई उदाहरण मिल जाते हैं-

---

1. क्रान्ति पर्व : सुदर्शन सोबती, पृ० 62.
2. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य, पृ० 10.

"ऊपर गगन विशाल, नीचे गहरा है पाताल
धन्य - धन्य है वाह मेरे मालिक
कैसा किया कमाल ।"[1]

इन पंक्तियों में उनकी भावना उदात्त है । वे ऊपर वाले की रचना को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं और कह रहे हैं कि मालिक तूने कितने कमाल का काम किया है कि ऊपर तो विशाल गगन का निर्माण कर किया है और नीचे अथाह सागर का निर्माण कर दिया है ।

ये पंक्तियाँ सीधी-सादी होते हुए भी गहरेअर्थ को वहन करती हैं । आकाश और पाताल की कल्पना अमीर और गरीब की खाई की ओर संकेत करती है । कवि की प्रतीकात्मकता सहज सम्प्रेषणीय है और उससे समाज के वर्ग-वैषम्य की स्पष्ट व्यंजना हो रही है । वे इस वर्गभेद से दु:खी भी हो रहे हैं । अन्य प्रगतिशील कवियों की तरह ये निरीश्वर-वादी हैं । वह सृष्टि के पीछे, प्रकृति के विभिन्न रूपों के पीछे किसी अज्ञात सत्ता का अनुभव करता है । उसकी यह जिज्ञासु प्रवृत्ति और परोक्ष सत्ता पर उसकी आस्था, अनेक गीतों में प्रतिबिम्बित हुई है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"वो कौन हँसता है फूलों में छिपकर
बहार बेचैन है किससे मिलकर
कहीं गुन-गुन कहीं रूनझुन
कि जैसे नाचे जमीं ।"[2]

---

1. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ० रवीन्द्र भारती, पृ० 10.
2. वही.

इन पंक्तियों में शैलेन्द्र जी पूरी तरह से विस्मय युक्त है। वह यह जानना चाहते हैं कि इन फूलों को पीछे से कौन संचालित कर रहा है, जो ये निरन्तर मुस्कुराते रहते हैं ; और कहीं जो भौरों की गुनगुनाहट व चिड़ियों की चहचहाने की आवाज सुनाई देती है, वह वास्तव में किसके द्वारा संचालित हो रही है ।

शैलेन्द्र जी ने अपने चलचित्र गीतों के माध्यम से जागृति, आस्था एवं विश्वास का शंखनाद किया है । जनमानस में हलचल पैदा की है और क्रान्ति-दर्शी स्वप्नों को वाणी दी है । उनके गीतों में मानवता की महिमा और श्रम की गरिमा के साथ-साथ दर्शन होते हैं । उनका मूल स्वर आस्था एवं विश्वास का स्वर है -

"कहने को जीवन बहता पानी है
लेकिन इसकी धार तो देखो
पिसती हुई चट्टान को देखो
बहते हुए पहाड़ को देखो
लाखों गीत, हजारों नगमें
निकले इस कल-कल, छल-छल से
सावन-भादों, गेहूँ - धान
सभी कुछ तो है इस बहते जल में ।"[1]

शैलेन्द्र जी ने इन पंक्तियों में जीवन को बहते हुए पानी के समान स्वीकार किया है जो पूरी तरह निर्मल एवं स्वच्छ रहता है ; परन्तु जिस तरह बहता हुआ जल चट्टानों एवं पहाड़ों को काटता हुआ

---

1. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ० रवीन्द्र भारती, पृ० 14.

चलता है, उसी तरह से इस शरीर से भी सब कुछ हो सकता है, उन्होंने यह भी संकेत किया है ।

संघर्ष की प्रेरणा दी है । दीन-हीन जनों के अन्दर सोई हुए असीम शक्ति को उभारा है । उनके अन्दर साहस और शौर्य भरने की कोशिश की है ।

धरती, आसमान, हवा के झोंके और खिले हुए पुष्पों आदि में कवि को विलक्षण सौन्दर्य की अनुभूति होती है । वह प्रकृति - सुन्दरी के इस अद्भुत श्रृंगार से हतप्रभ रहजाता है । उसका जिज्ञासु मन बार-बार उस शक्ति को जानने के लिए व्याकुल हो उठता है, जिसके कारण यह प्राकृतिक वैभव भिन्न-भिन्न रंग-रूपों में अपनी छटा विखेरता है । ऐसे प्रकृति-चित्रण रहस्य भावना से ओत-प्रोत दिखाई देते हैं । उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत किया जा सकता है -

"हरी भरी वसुन्धरा पर नीला-नीला ये गगन
जिंस पारें बादलों की पालकी उड़ा रहा पवन
रंग भरी चमक रही, उमंग भरी
ये किसने फूल-फूल पर किया सिंगार
ये कौन चित्रकार है ।"[1]

ईश्वर रूपी जादूगर अपनी माया का विस्तार, प्रकृति के माध्यम से ही करता है । इसीलिए प्रकृति-नारी के आकर्षण में, कवि-पुरूष युग-युग से बँधता चला आया है । वह मायाविनी पुरूष को अपने

---

1. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ0 रवीन्द्र भारती, पृ0 115.

विभिन्न रूपों का दर्शन कराती है -

"लो भोर हुई पंछी निकले, तलाश में दाने-दाने की
इंसां भी लो घर से निकला, धुन रोटी दाल कमाने की
सूरज के उगते ही देखो, दुनियाँ में कैसी आग लगी
क्या कोई भी तदबीर नहीं, इस आग में आग लगाने की
चक्कर खाती दुनियाँ के संग, हम सब क्यों चक्कर खाते हैं
ठोकरखाना और ठुकराना क्या रीत है यही जमाने की
ये दौड़-धूप, रेलम-पेली, पर कल का कोई ठिकाना नहीं
ऐ हरदम आ आवाज लगा, यह बेला गगन जगाने की ।"[1]

इन पंक्तियों में शैलेन्द्र जी ने मनुष्य जीवन को प्रकृति के साथ जोड़कर एक अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि की है । जिस तरह से भोर होने पर पंछी अपने नीड़ से बाहर निकलते हैं, उसी तरह से महानगरों में व्यक्ति भी भोर होते ही अपने घर से अथक परिश्रम करने के लिए निकल पड़ता है । महाममरों की विषम और मशीनी जीवन का इंसान भी एक पुर्जा मात्र बनकर रह जाता है ।

जीवन की क्षण भंगुरता से बेखबर आदमी अपनी भौ तिक जरूरतें पूरी करने के लिए प्राकृतिक नियमों का खुला उल्लघंन करता हुआ दिखाई पड़ता है । कवि इस भाग-दौड़ से क्षुब्ध होकर स्वस्थ चिन्तन की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करता है और जन-जागृति के गीत गाता है ।

शैलेन्द्र जी स्वयं रेल-मजदूर रहे हैं, शोषण की चक्की में पिसे हैं, गरीबी और अभावों में पले हैं, जीवन के साथ उन्होंने आद्यन्त संघर्ष किया है, किन्तु कभी हार नहीं मानी । माटूंगा की रेल वर्कशाप में

---

1. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ0रवीन्द्र भारती, पृ0 128.

उन्होंने लोहे से लोहे को काटा है । मशीनों कोअपना खून और पसीना 'ग्रीस' की तरह देकर चलाया है । घाटकों पर की रेल मजदूरों की चालों में रहकर आन्दोलनों का नेतृत्व किया है । यही सब भोगा हुआ यथार्थ उनके काव्य में चित्रित है ।

"रात के हमसफर थक के घर को चले
झूमती आ रही है सुबह प्यार की
देखकर सामने रूप की रोशनी फिर
लुटी जा रही है सुबह प्यार की
सोने वालों को हँसकर जगाना भी है
रात के जागतों को सुलाना भी है
देती है जागने को सदा साथ ही
लोरियाँ गा रही है सुबह प्यार की ।"[1]

'चन्द्रमा' रात्रि पाली का और 'सूर्य' दिन पाली का मजदूर है । वे मजदूर जो रात पाली करके लौट रहे हैं उन्हें सुबह लोरियाँ गाकर सुलायेगी और सोने वालों को जगाएगी ।

शैलेन्द्र' जी ने अधिकांशतः जीवन यथार्थ को ही अपने गीतों के माध्यमसे जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है -

"तितली उड़ी उड़के चली
फूल ने कहा आ जामेरे पास
तितली कहे मै चली आकाश ।"[2]

---

1. शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : डॉ0रवीन्द्र भारती, पृ0 128.
2. वही, पृ0 139.

यहाँ तितली का आलम्बन लेकर शैलेन्द्र जी व्यक्ति मात्र को समझाना चाहते हैं कि जिस तरह तितली पूर्णरूपेण स्वच्छन्द रहकर खुले आकाश में विचरण करना चाहती है, उसी तरह व्यक्ति को भी किसी के आधीन न रहकर, स्वतन्त्र रूप से जीना चाहिए ।

निष्कर्ष :

शैलेन्द्र जी की गीतमाला में लोक-जीवन की झलक और जन - सामान्य के सुख - दु:ख का एहसास निरन्तर बना रहता है । वे शोषित और पीड़ित जन- समुदाय के सच्चे हितैषी के रूप में अपनी गीत - रचना करते हैं । प्रकृति उनके गीतों में प्राण फूँक देती है । प्रकृति का उपयोग उन्होंने विभिन्न रूपों में किया है । कभी वह आलम्बन बनकर आती है, तो कभी उद्दीपन । प्राय: प्रकृति के माध्यम से कवि ने गहरे जीवन-बोध की रचनाएँ प्रस्तुत की है । ऐसे स्थलों में प्रकृति का प्रतीकात्मक और व्यंजनागर्भी अर्थ मर्म को छू लेता है । उनके यहाँ प्रकृति मनुष्य जीवन का अभिन्न हिस्सा बनकर चित्रित हुई है । उसका सौन्दर्य मानवीय सौन्दर्य के साथ मिलकर तदाकार हो गया है । कवि की प्रगतिशील चेतना प्रकृति के माध्यम से जन-जागरण का महत्वपूर्ण कार्य करती है । उनके प्रकृति-गीत सही अर्थों में जन-गीत कहे जा सकते हैं । उनमें आस्था और विश्वास का स्वर गूँजता है और वे मानवीय अस्मिता का बोध कराते हैं ।

xxxxxxx
xxxxx
xxx
x

नवम - अध्याय

उपसंहार

प्रकृति मानव की आदिम सहचरी है । जन्मकाल से ही मानव प्रकृति की गोद में पलता और बड़ा होता है । जीवन दृष्टि की भाँति प्रत्येक कवि की प्रकृति-विषयक चेतना भी उसकी अपनी होती है । प्रकृति का भिन्न-भिन्न रूपों में सिंहावलोकन और उसके चित्रण के लिए प्रत्येक कवि स्वतन्त्र होता है, इसीलिए विभिन्न युगों में विभिन्न कवियों का प्रकृति के प्रति भिन्न-भिन्न दष्टिकोण रहा है ।

छायावादी कवि प्रकृति से ही सब कुछ कहना, सुनना चाहता है, प्रकृति को ही देखना चाहता है और उसी में रम जाना चाहता है । उसी के माधुर्य पर निछावर हो जाना चाहता है, परन्तु प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति के साथ-साथ हलहचाते किसानों, श्रमिकों एवं मध्यमवर्गीय पारिवारिक परिवेश की विसंगतियों में भी सौन्दर्य का अन्वेषण किया है । उन्होंने सदैव रूढ़ियों, पुरातन परम्पराओं एवं सड़े-गले अंधविश्वासों के विरूद्ध विद्रोह का स्वर बुलन्द किया है । उनकी समाज सापेक्ष दृष्टि का प्रभाव उनके प्रति-चित्रण में भी देखा जा सकता है ।

प्रगतिवाद के सभी प्रमुख कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । वे प्रकृति के कोमल रूप से भी आकृष्ट हुए हैं ; और उसके पुरूष रूप से भी । उनके काव्य में प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन अलंकरण, प्रतीक आदि सभी रूप देखे जा सकते हैं, किन्तु प्रकृति के जिस किसी भी रूप का वे स्पर्श करते हैं, उनकी दृष्टि में प्रगतिशील विचारधारा का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष पुट अवश्य मिल जाता है । प्रगतिवादी कवियों के लिए प्रकृति संसार से थके-हारे लोगों का विश्राम स्थल नहीं है । प्रकृति की विभिन्न मुद्राओं में वे किसी अज्ञात सत्ता का आभास नहीं पाते ।

प्रकृति उनके लिए कोई रहस्य भी नहीं है ; वे प्रकृति को सहज भाव से स्वीकार करते हैं । उनके यहाँ प्रकृति मानव-जीवन का अभिन्न हिस्सा बनकर आती है । मानव - निरपेक्ष प्रकृति का चित्रण प्रगतिवादी कवियों ने प्राय: नहीं किया । पंत, दिनकर, केदार, सुमन, अंचल, नागार्जुन, रामविलास, नरेन्द्र और शैलेन्द्र आदि की प्रकृति - परक प्रगतिशील रचनाओं में समाज की छाया बराबर अपने पंख फैलाए रहती है ।

प्रगतिवादी प्रकृति-चित्रण की मुख्य विशेषताएँ :

प्रगतिवादी काव्य में चित्रित प्रकृति का स्वरूप परम्परागत प्रकृति-चित्रण से कई अर्थों में भिन्न है । संक्षेप में प्रगतिवादी प्रकृति-चित्रण की मुख्य विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है -

(क) प्रकृति का प्रतीकात्मक उपयोग : प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति को प्राय: मानव जीवन के परिपार्श्व में ही चित्रित किया गया है । प्रकृति के आलम्बन रूप का चित्रण करते समय भी कवि समाज की ज्वलन्त समस्याओं को नहीं भूल पाता । पंत जैसा छायावादी कवि भी जब प्रगतिशील दृष्टि से प्रकृति का अवलोकन करता है, तो उसकी दृष्टि में जमीन-आसमान का अन्तर आ जाता है । प्रकृति का यह सुकुमार कवि प्राचीन मान्यताओं और अंध - विश्वासों को तिलांजलि देकर नवीनता का आह्वान करते थकता नहीं है -

"द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र
हे त्रस्त, ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण
हिमतापपीत, मधुवातभीत
तुम वीतराग, जड़ पुराचीन ।"[1]

---

1 युगपथ : युगान्त. पृ0 12

वह कोयल को आमंत्रित करता है कि वह अपने गीतों से क्रान्ति की आग लगावे, जिसमें जीर्ण-शीर्ण परम्पराएँ, जलकर राख हो जाएँ, और एक नई समाज - व्यवस्था आराम ले अपना स्वरूप ग्रहण कर सके-

"गा कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस - भ्रंश जग के जड़ बन्धन
पावक पग धर आवे नूतन ।"[1]

यही बात बाबा नागार्जुन भी पीपल के पत्तों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं । यहाँ पीपल के पत्तों का प्रयोग प्रतीक के रूप में किया गया है । वस्तुतः कवि पुरातन परम्पराओं की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाना चाहता है और उनके स्थान पर नए पन की आकांक्षा करता है -

"खड़ - खड़ - खड़ खड़ करने वाले
ओ पीपल के पीले पत्ते
अब न तुम्हारा रहा जमाना
शकल पुरानी, रंग पुराना
सीख पुरानी, ढंग पुराना
आज गिरो, कल गिरो, कि परसों
तुमको तो अब गिरना ही है ।"[2]

आज हमारे समाज का रूप इतना विकृत हो चुका है कि यह कहना हास्यास्पद लगने लगा है कि भारत सारी सृष्टि का सिरमौर है ।

---

1. युगपथ : युगान्त, पृ० 12.
2. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने नामक काव्य संग्रह की, पीपल के पत्ते नामक कविता से, पृ० 19.

आर्थिक - सामाजिक विसंगतियों ने आम आदमी का सुख चैन समाप्त कर दिया है । सब कुछ उजड़ा सा प्रतीत होता है । लगता ही नहीं है कि यह उन्नत सांस्कृतिक परम्पराओं वाला भारत है । अपने मन की इस पीड़ा को कवि प्रकृति-बिम्बों के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है-

"ऊँघती रहतीं लिए श्रृंगार उजड़ा वीथिकाएँ
टहनियों में, झाड़ियों में व्यक्त पतझर की व्यथाएँ
शुष्क मुरझाए कुसुम, वीरान है सारा बगीचा
था जिसे निज रक्त से कितनी बहारों ने न सींचा
श्वेत पादों पर कमल की जल न सरसी का छलकता
है वही प्यारा चमन - कोई भला कह आज सकता ।"[1]

<u>{ख} मार्क्सवादी विचारधारा की झलक :</u> प्रगतिवाद मार्क्सवादी जीवन दृष्टि से अनुप्राणित काव्यधारा है । इस धारा के प्रकृति-चित्रण में भी मार्क्सवादी विचारधारा की झलक कहीं स्पष्ट, तो कहीं अस्पष्ट रूप में सर्वत्र देखी जा सकती है, यही कारण है कि सुमन जी को प्राकृतिक दृश्यों में भी लाल सेना का दृश्य दिखाई देता है और वे पूरे उत्साह के साथ उसका अभिनंदन करते हैं -

"युगों की सड़ी-रूढ़ियों को कुचलती
जहर की लहर सी लहरती मचलती
अँधेरी निशा में मसालों सी जलती
चली जा रही है बढ़ी लाल सेना
कुहू की निशा में उदित पूर्णिमा सी
जिधर दृग उधर फट रही कालिमा सी
क्षितिज पे उषा की तरूण लालिमा सी

---

1. मेरी श्रेष्ठ कवितायें : अंचल में संग्रहीत, लाल चूनर नामक कवि काव्य संग्रह की विपर्यय नामक कविता से, पृ० 90.

चली जा रही है बढ़ी लाल सेना ।"[1]

केदार की भी मार्क्स दर्शन के प्रति अटूट-निष्ठा है । वे प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों में मार्क्स-चेतना का आरोपण कर लेते हैं । गेहूँ का खेत लाल फौज बन जाता है और अपने अधिकारों के लिए हिम्मत के साथ जूझने का मन बना लेता है -

"आर-पार चौड़े खेतों में
चारों ओर दिशाएँ घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है
ताकत से मुट्ठी बाँधे है
नोकीले भाले ताने है
हिम्मत वाली लाल फौज का
मर मिटने को झूम रहा है ।"[2]

(ग) लोक - संस्कृति का पुट : प्रगतिवादी कवि लोक-जीवन के कवि हैं । उनके काव्य में लोक-जीवन रचना-बसा है । उनके प्रकृति-चित्रों में भी लोक-संस्कृति की अमिट छाप दिखाई देती है । केदार के यहाँ खेत और खलिहान किसानों के साथ मिलकर फागुन की मस्ती में झूम उठते हैं और हवा के झोंके संगीत की मीठी तान छेड़ देते हैं । पक्षी फाग गाने लगते हैं-

"आसमान की ओढ़नी ओढ़े
धानी पहने फसल घँघरिया
राधा बनकर धरती नाची
नाचा हँसमुख कृषक सँवरिया

---

1. पर आँखें नहीं भरी : सुमन, चली जा रही है बढ़ी लाल सेना नामक कविता से, पृ० 24.
2. युग की गंगा, पृ० 21.

मातीं थाप हवा की पड़ती
पेड़ों की बज रही ढुलकिया
जी भर फाग परवेऊ गाते
ढरकी रस की राग गगरिया ।"[1]

(घ) जन-जागृति का सन्देश : प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति के माध्यम से जन-जागरण का सन्देश दिया गया है, आशा और विश्वास की प्रेरणा दी गई है तथा वर्ग-संघर्ष को शब्द-बद्ध किया गया है । अन्याय और अनाचार की जंजीरें तोड़कर दिनकर की प्रकृति सूर्य की तरह अपना आलोक विकीर्ण करती हुई पदार्पण करती है । वे ललकार कर कहते हैं कि-

"हटो तमीचरों कि हो चुकी समाप्त रात है
कुहेलिका के पार जगमगा रहा प्रभात है
लपेट में समेटता, रूकावटों को तोड़के
प्रकाश का प्रवाह आ रहा दिगन्त फोड़ के ।"[2]

डॉ० रामविलास शर्मा भी लोगों को बतला देना चाहते हैं कि पूँजीपति बेहद बेईमान हैं । नदी और कुएँ के पारस्परिक संवाद में कुँआ खीजकर उत्तर देता है कि बादल झूठे आश्वासन तो देते हैं,पर उन्हें पूरा नहीं करते । यहाँ बादल शोषक वर्ग का प्रतीक है । अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से वे जरूरतमंद, गरीब और बेसहारा लोगों को फँसाते जरूर हैं, पर उनकी जरूरतें पूरी करने की योजना क्रियान्वित नहीं करते -

"उतरते आषाढ़ में
एक नदी ने कुएँ से पूछा ...
क्या हाल है आपके यहाँ पानी का

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, खेत का दृश्य नामक कविता से, पृ० 3।
2. सामधेनी : जवानियाँ शीर्षक कविता से, पृ० 82.

खींजकर कुँए ने दिया जवाब
घिरते हैं, पर बरसते नहीं
कोई हिसाब नहीं है बादलों की बेईमानी का ।"[1]

शैलेन्द्र जी तो स्वयं रेल मजदूररहे हैं, शोषण की चक्की में पिसे हैं, गरीबी और अभावों में पले हैं । जीवन के साथ उन्होंने आद्यन्त संघर्ष किया है, किन्तु कभी हार नहीं मानी । माटूंगा की रेल "वर्कशाप" में उन्होंने लोहे को लोहे से काटा है । मशीनों को अपना खून और पसीना 'ग्रीस' की तरह देकर चलाया है । घाटकों पर की रेल मजदूरों की चव चालों में रहकर आन्दोलनों का नेतृत्व किया है । वे सुबह का गीत गाकर जागरण का सन्देश प्रसारित करते हैं -

"रात के हमसफर थक के घर को चले
झूमती आ रही है सुबह प्यार की
देखकर सामने रूप की रोशनी फिर
फिर लुटी जा रही सुबह प्यार की
सोने वालों को हँसकर जगाना भी है
रात के जागतों को सुलाना भी है
देती है जागने को सदा साथ ही
लोरियाँ गा रही है सुबह प्यार की ।"[2]

प्रगतिशील कवि अनीति के विरुद्ध शंखनाद करता है । उसकी गर्जना सिन्धु की उत्ताल तरंगों की तरह चतुर्दिक फैल जाती है । उसकी भुजा फड़कने लगती है । वह संघर्ष के लिए कमर कसकर तैयार हो जाता है।

---

1. बादल : रामविलास शर्मा, पृ0 23.
2. शैलेन्द्र औरचित्रपट काव्य:डॉ0रवीन्द्र भारती,पृ0 128.

प्रलय की उसे जरा भी परवाह नहीं है । वह तो प्रकृति के एक-एक कण से जीने का सन्देश प्राप्त करता है -

"संग्राम सिन्धु लहराता है
सामने प्रलय घहराता है
रह-रह कर भुजा फड़कती है
बिजली सी नसें कड़कती हैं ।"[1]

कवि विजय के प्रति आश्वस्त हैं । वह जानता है कि यही समय है, जब अन्याय का डटकर विरोध किया जाना चाहिए । स्वतन्त्रता कीराह पर चलने वालों का आह्वान करता हुआ कवि कहता है कि -

"मंगल मुहूर्त्त, रवि ! उगो हमारे क्षण ये बड़े निराले हैं
हम बहुत दिनों के बाद विजय का शंख फूँकने वाले हैं
मंगल मुहूर्त्त तरूगण ! फूलों, नदियों अपना पयदान करो
जंजीर तोड़ता है भारत, किन्नरियों ! जय-जय गान करो ।"[2]

गुलामी का जीवन जीते-जीते समाज तंग आ चुका है, अब वह एक क्षण भी इस अन्याय को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है । उसे अपनी सोई हुई शक्ति का अंदाज हो गया है । वह एकजुट होकर न्याय के लिए संघर्ष करने को तत्पर है । सुमन जी को चारों ओर क्रान्ति का सन्देश सुनाई पड़ता है -

"आज विदेशी बहेलिये को, उपवन ने ललकारा
कातर - कंठ क्रौंचिनी चीखी, कहाँ गया हत्यारा
कण-कण में विद्रोह जग पड़ा, शान्ति-क्रान्ति बन बैठी
कोकिल कुहुक उठी, चातक की चाह आग सुलगाएँ

---

1. रश्मि रथी : तृतीय सर्ग, पृ० 44-45.
2. नीम के पत्ते : दिनकर, पृ० 14.

शान्ति-स्नेह-सुख-हंता-दंभी पामर भाग न जाए
सन्ध्या-स्नेह-संयोग-सुनहला चिर वियोग सा छूटा
युग तमसा-तट खड़े मूक कवि का पहला स्वर फूटा ।"[1]

(ङ) प्रकृति का सचेतन रूप : प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति जड़ रूप में नहीं, बल्कि सचेतन प्राणियों की तरह हाव-भाव प्रदर्शित करते हुए चित्रित की गई है । कवि प्रकृति के साथ हँसता-रोता है और सुख- दुःख की बातें करता है। प्रकृति उसे जीने की प्रेरणा देती है । प्राकृतिक दृश्यों में उसे जीवन के लक्षण दिखाई देते हैं । इसीलिए धूप का एक टुकड़ा देखकर केदार का मन पुलकित हो उठता है -

"धूप नहीं, यह
बैठा है खरगोश पलंग पर
उजला, रोएँदार, मुलायम
इसको छूकर
ज्ञान हो गया है जीने का
फिर से मुझको ।"[2]

और तो और पत्थर जैसा जड़ प्राकृतिक पदार्थ भी कवि के सम्पर्क में आकर द्रवित हो उठता है -

"पत्थर भी बोलते हैं
जब चिड़ियों का झुण्ड
बैठ जाता है उन पर
और वे चहकती हैं आपस में
पत्थर के ये बोल

---

1. विश्वास बढ़ता ही गया : सुमन, आज देश की मिट्टी बोल उठी है, नामक कविता से, पृ0 42
2. फूल नहीं रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 50.

मुझे मीठे लगते हैं
और हृदय में रस भरते हैं
अँगूरों से निकला
मीठा-मीठा, ताजा-ताजा ।"[1]

कुल मिलाकर प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति का जीवन्त चित्रण किया गया है । उसके माध्यम से प्राय: जीवन का सन्देश दिया गया है । सामान्य रूपों से अधिक उसके आंचलिक रूपों की ओर कवियों का झुकाव रहा है । अपने पास-पास के प्राकृतिक सौन्दर्य को पूरी आत्मीयता के साथ उद्घाटित किया गया है । प्रकृति के सार्वभौमिक और उदात्त रूपों की तुलना में उसके चिरपरिचित किन्तु उपेक्षित रूपों को अधिक आदर मिला है । अधिकांशत: प्रकृति अपने प्रकृत रूप में न आकर मानव जीवन के हर्ष-विषाद और उसके इरादों को अभिव्यक्ति देने के लिए प्रयुक्त हुई है । प्रकृति चित्रों के साथ मनुष्य-जीवन की व्यथा-कथा भी घुल-मिल गई है । हरी घास का दृश्य केदार को इसीलिए आकृष्ट करता है क्योंकि वह जीवन को एक दिशा देता है -

"हरी घास का बल्लम
गड़ा भूमि पर
सजग खड़ा है
छह अंगुल से नहीं बड़ा है
मन होता है
मै उखाड़कर इसे मार दूँ
कुण्ठा को गढ़ में पछाड़ दूँ
जहाँ गड़े है भूले मुरदे
वहाँ गाड़ दूँ ।"[2]

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृ0 48

प्रगतिवादी काव्य में मनुष्य को प्राथमिक महत्व दिया गया है, प्रकृति का स्थान उसके बाद आता है। पर जब-जब कवि प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत होता, वह पूरी तन्मयता से उसका चित्र खींचता है। प्रकृति - सौन्दर्य कवि को छलता नहीं है, बल्कि उसकी दृष्टि और दिशा को एक नया संस्कार देता है। वह प्रकृति के माध्यम से जीवन के गम्भीर प्रश्नों का हल खोजने का प्रयास करता है। प्रकृति उसके जीवन का साधन बनकर आती है, साध्य नहीं। यही कारण है कि प्रगतिवादी प्रकृति - चित्रण जीवन के अधिक निकट आ गया है और मनुष्य के लिए उसकी अर्थ-वत्ता बढ़ गई है।
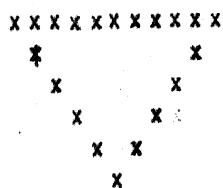
सन्दर्भ - ग्रन्थ सूची

(क) काव्य ग्रन्थ -

1. अपराजिता : रामेश्वर शुक्ल अंचल, भारतीय साहित्यप्रकाशन 286 चाणक्यपुरी, सदर मेरठ-1, प्रथम संस्करण
2. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने : नागार्जुन, वाणी प्रकाशन 4697/5, 21एदरिया गंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
3. इन आवाजों को ठहरा लो : रामेश्वर शुक्ल अंचल, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण
4. उत्तरजय : नरेन्द्र शर्मा, रामचन्द्र एण्ड कम्पनी, दरियागंज दिल्ली, प्रथम संस्करण
5. उर्वशी तथा अन्य श्रृंगारिक कवितायें : रामधारी सिंह दिनकर, स्टार पाकेट बुक्स 41/5बी आसफ अली रोड, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण
6. ऋतुगंधा : रामविलास शर्मा, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट दिल्ली, प्रथम संस्करण
7. कुरुक्षेत्र : दिनकर, उदयाचल प्रकाशन; पटना, द्वितीय संस्करण
8. काव्य संग्रह द्वितीय भाग : रामेश्वर शुक्ल अंचल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण
9. कोयला और कवित्व : रामधारी सिंह दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथमसंस्करण
10. काव्य संकलन : राज्य सरकार के प्राधिकार से प्रकाशित उत्तर प्रदेश शासन
11. खिचड़ी विप्लव देखा हमने : नागार्जुन, संभावना प्रकाशन, हापुड़, प्रथम संस्करण

11. खिचड़ी विप्लव देखा हमने : नागार्जुन, संभावना प्रकाशन : हापुड प्रथम संस्करण।

12. गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, मोतीलाल नेहरू नगर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

13. ग्राम्या : सुमित्रानन्दन पंत, भारती भण्डार:लीडर प्रेस, प्रयाग, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण

14. जीवन के गान : शिवमंगल सिंह सुमन, आत्माराम संस; कश्मीरी गेठ दिल्ली, संस्करण 1981

15. ज्योति पुरूष : रामेश्वर शुक्ल अंचल, कौशाम्बी प्रकाशन : दारागंज, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

16. तुमने कहा था : नागार्जुन, वाणी प्रकाशन : दिल्ली प्रथम संस्करण

17. तालाब की मछलियाँ : नागार्जुन, अनामिका प्रकाशन, पटना प्रथम संस्करण

18. त्यागपथी : रामेश्वर शुक्ल अंचल, साहित्यकार संघ : नया बैरहना, इलाहाबाद-संस्करण 1986

19. द्वन्द्वगीत : रामधारी सिंह दिनकर, अजंता प्रेस लि0: पटना-4, द्वितीय संस्करण

20. धूप और धुआँ : रामधारी सिंह दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली-प्रथमसंस्करण

21. नींद के बादल : केदारनाथ अग्रवाल, हिन्दी धनमन्दिर लि0 बम्बई-प्रथम संस्करण

22. नागार्जुन चुनी हुई रचनायें : नागार्जुन, वाणी प्रकाश : 4697/5, 21ए दरियागंज, नईदिल्ली-प्रथम संस्करण

23. नीम के पत्ते : रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन: आर्य कुमार रोड, पटना-4, द्वितीयसंस्करण

24. नील कुसुम : रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन: आर्यकुमार रोड, पटना-4 त्रतीय संस्करण

25. पलाशवन : नरेन्द्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस-प्रयाग, द्वितीय संस्करण.

26. प्रवासी के गीत : नरेन्द्र शर्मा, भारतीय भंडार:लीडर प्रेस प्रयाग चतुर्थ संस्करण.

27. प्रलय सृजन : शिवमंगल सिंह सुमन, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6, संस्करण 1969.

28. प्यासी पथराई आँखें : नागार्जुन, यात्री प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथमसंस्करण.

29. प्रणभंग : रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एण्ड संस्स कश्मीरी गेट, दिल्ली-प्रथम संस्करण.

30. पर आँखें नहीं भरी : शिवमंगल सिंह सुमन, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6, संस्करण 1987.

31. फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन : 743, मोती लाल नेहरू नगर, इलाहाबाद-2, द्वितीयसंस्करण

32. बादल : रामविलास शर्मा, साहित्यवाणी, पुराना अल्लापुर इलाहाबाद-प्रथम संस्करण.

33. मुट्ठी बन्द रहस्य : नरेन्द्र शर्मा, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट: दिल्ली प्रथम संस्करण.

34. मनोकामिनी : नरेन्द्र शर्मा, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, 23दरियागंज नई दिल्ली-प्रथम संस्करण.

35. मुक्ति तिलक : रामधारी सिंह दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण

36. मेरी श्रेष्ठ कवितायें : रामेश्वर शुक्ल अंचल, शैवाल प्रकाशन: चंद्रावली कुटीर, दाऊदपुर : गोरखपुर - प्रथम संस्करण.

37. युग की गंगा : केदारनाथ अग्रवाल, हिन्दी ग्रन्थमन्दिर लि0 बम्बई-प्रथम संस्करण.

38. युगवाणी : सुमित्रानन्दन पंत, राजकमल प्रकाशन दिल्ली षष्ठ संस्करण.

39. युगान्त : सुमित्रानन्दन पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद चतुर्थ संस्करण

40. रश्मिरथी : दिनकर, उदयाचल प्रकाशन: आर्य कुमार रोड पटना-4, 1974 संस्करण

41. रेणुका : रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन आर्य कुमार रोड पटना-4, चतुर्थ संस्करण.

42. रसवन्ती : रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, आर्य कुमार रोड, पटना-4, चतुर्थ संस्करण.

43. विन्ध्य हिमालय : शिवमंगल सिंह सुमन

44. विश्वास बढ़ता हीगया : शिवमंगल सिंह सुमन, रामपुरी संचालक कश्मीरी गेट दिल्ली. द्वितीय संस्करण

45. वाणी की व्यथा : शिवमंगल सिंह सुमन, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट दिल्ली, प्रथम संस्करण.

46. शीलजयी : रामेश्वर शुक्ल अंचल, कौशाम्बी प्रकाशन: दारागंज, इलाहाबाद-6 प्रथम संस्करण.

47. सतरंगे पंखों : नागार्जुन, यात्री प्रकाशन, कलकत्ता-प्रथम संस्करण

48. संचयिता : रामधारी सिंह दिनकर, भारतीय ज्ञानपीठ, बी/45-47 कनॉट प्लेस, नई दिल्ली, तृतीयसंस्करण

49. सामधेनी : दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, संस्करण-1975

50. हिल्लोल : शिवमंगल सिंह सुमन, रामपुरी संचालक, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट दिल्ली-संस्करण1972.

51. हे राम : रामधारी सिंह दिनकर, नेशनल पब्लिसिंग हाउस दरियागंज, नई दिल्ली - प्रथम संस्करण

52. हुंकार : रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, आर्य कुमार रोड, पटना-4, संस्करण 1940.

53. हारे को हरिनाम : रामधारी सिंह दिनकर, नेशनल पब्लिसिंग हाउस दरियागंज, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण

ख) सहायक ग्रन्थ :

1. आधुनिक कवि : रामेश्वर शुक्ल अंचल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण

2. आधुनिक काव्य संग्रह : सं0श्री नारायणअग्निहोत्री, साहित्य रत्नालय, श्रद्धानंद पार्क, कानपुर संस्करण 1987.

3. आज के लोकप्रियहिन्दी कवि नागार्जुन : सं0डॉ0प्रभाकर माचवे, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली प्रथम संस्करण

4. क्रान्ति पर्व : सुदर्शन सोवती, इस्कस प्रकाशन, भगतसिंह मार्ग नई दिल्ली- संस्करण 1987.

5. केदार व्यक्तित्व एवं कृतित्व : सं0 श्री प्रकाश, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद-प्रथम संस्करण

6. दिनकर के काव्य में जीवन दर्शन : डॉ0विनोद बालाशर्मा, सामयिक प्रकाशन, जटवाड़ा दरियागंज, नई दिल्ली - प्रथम संस्करण

7. दिनकर के काव्य में युग चेतना : डॉ0 पन्ना, उषा पब्लिसिंग हाउस, जोधपुर-जयपुर प्रथम संस्करण ।

8. दिनकर का काव्य : डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, दि मैकेमिलन ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण

9. दिनकर एक पुनर्मूल्यांकन : विजेन्द्र नारायण सिंह, परिमल प्रकाशन: मोतीलाल नेहरू नगर, इलाहाबाद-2, प्रथम संस्करण.

10. दिनकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व : सं0जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, प्रवीण प्रकाशन: 1/1073 महरौली नई दिल्ली - प्रथम संस्करण

11. दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेमचेतना : डॉ0मधुबाला; तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली- प्रथम संस्करण

12. नरेन्द्र शर्मा का काव्य एक विश्लेषण : डॉ० दुर्गाशंकर मिश्र, हिन्दी साहित्य भंडार, चौपटियाँ रोड लखनऊ-3, प्रथम संस्करण

13. नए प्रतिनिधि कवि नागार्जुन : डॉ०हरिचरण शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर-संस्करण 1984

14. नई कविता : विश्वंभरनाथ मानव, लोकभारतीय प्रकाशन द्वितीय संस्करण

15. प्रगतिवादी काव्य साहित्य : डॉ०कृष्णलाल हंस, म०प्र० हिन्दी अकादमी, भोपाल संस्करण 1971.

16. प्रगतिवादी काव्य : उमेशचन्द्र मिश्र, ग्रन्थम रामबाग कानपुर संस्करण 1966.

17. पंत का प्रगतिवादी काव्य : प्रमिला त्रिवेदी, अनादि प्रकाशन 609कटरा, इलाहाबाद - प्रथम संस्करण

18. प्रगतिवादी कविता :कल और आज : डॉ०रतन कुमार पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी - प्रथम संस्करण

19. पंत और काला कांकर : कुँवर सुरेश सिंह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग प्रथम संस्करण.

20. महाकवि दिनकर : उर्वशी तथा अन्य कृतियाँ : विमल कुमार जैन; एस चान्द्र, एण्ड कं० लि० रामनगर, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण

21. युगचारण दिनकर : डॉ० सावित्री सिन्हा - नेशनल पब्लिसिंग हाउस नई दिल्ली - प्रथम संस्करण

22. युगचेतना दिनकर और उनकी उर्वशी : डॉ० राजपाल शर्मा, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण

23. रामधारी सिंह दिनकर : मन्मथनाथ गुप्त, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली प्रथम संस्करण.

24. लोक और आलोक : केदारनाथ अग्रवाल, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण.

25. शंकर शैलेन्द्र और चित्रपट काव्य : शंकर शैलेन्द्र, डॉ० रवीन्द्र भारती ; अनीता प्रकाशन : गीतांजलि व बेताल मार्ग उज्जैन म०प्र० प्रथमसंस्करण.

26. साहित्य पीयूष : डॉ०रामशरणदास गुप्त, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा-संस्करण 1981.

27. साहित्यिक निबन्ध : डॉ०वेदप्रकाश अभिताभ; जवाहरलाल शर्मा सदर बाजार-मथुरा

22. साहित्य एक परिचय : डॉ०त्रिभुवन सिंह, विजयप्रकाश; हिन्दीप्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन, वाराणसी. विद्यार्थीसंस्करण

23. सुमित्रानन्दन पंत : सं०डॉ०इन्द्रनाथ मदान, लोकभारती प्रकाशन, 158 महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1 प्रथम संस्करण

24. हिन्दी साहित्य : डॉ०भोलानाथ ; हिन्दी परिषद प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग -

25. हिन्दीसाहित्य का इतिहास : डॉ०हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ०रामनिवास गुप्त ; मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक 34-1 मॉडल टाउन रोहतक, हरियाणा - प्रथम संस्करण

26. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास : डॉ०कृष्णलाल हंस, ग्रंथम, रामबाग कानपुर प्रथम संस्करण.

27. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ०जयकिशन खण्डेलवाल : विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा-नवम् संस्करण

28. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ०रामचन्द्र शुक्ल ; नागरी प्रचारिणी सभा काशी - बारहवाँ संस्करण.

29. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं०डॉ०नगेन्द्र; नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दरिया गंज दिल्ली-प्रथम संस्करण.

30. हिन्दी साहित्य का इतिहास : श्री शरण, डॉ०आलोक रस्तोगी; प्रेम प्रकाशन मन्दिर, बल्लीमारान दिल्ली-6 प्रथम संस्करण.

31. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण : किरण कुमारी गुप्ता, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग.

32. हिन्दी की प्रगतिशील कविता : डॉ० रणजीत, हिन्दी साहित्य संसार : प्रगतिशील प्रकाशन, संस्करण 1971.

33. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम : डॉ० रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन-दिल्ली प्रथम संस्करण.

(ग) पत्र पत्रिकाएँ

(1) आजकल

(2) सरस्वती

(3) हंस